अंक 290 वर्ष 59

भाषा

मई–जून 2020

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

Skill India

सत्यमेव जयते

भाषा

मई–जून 2020

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक)–16

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

परामर्श मंडल
श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गंगा प्रसाद विमल
डॉ. नरेंद्र मोहन
प्रो. श्याम आर. असोलेकर
श्री राहुल देव
प्रो. एम. वेंकटेश्वर
डॉ. मिलन रानी जमातिया

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **59** **अंक : 3 (290)**
मई–जून 2020

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या
संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा
मई–जून 2020

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय

आलेख

1.	उन्मुक्त मन की रागात्मकता एवं मंगलमयी जनपक्षधरता	डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी	09
2.	काव्य-नाटककार न्यामतसिंह जैन	डॉ. रामनिवास 'मानव', डी. लिट्	15
3.	तीन दशक की समकालीन हिंदी आलोचना	डॉ. वी. रामकोटी	19
4.	प्रवाद पर्व : राम के लोकतंत्र की अभिनव प्रस्तुति	डॉ. दादूराम शर्मा	22
5.	अ-कश्मीरी भाषी हिंदी कवियों की रचनाओं में विस्थापन की सहसंवेदना	डॉ. महाराजकृष्ण भरत 'मुसा'	31
6.	नागार्जुन का खंडकाव्य 'भूमिजा' एक लोकदृष्टिपरक	डॉ. अंबिली टी	35
7.	नंदीवाला समाज की बोली का क्रिया अध्ययन	प्रो. सविता कृष्णात पाटील	38
8.	'एक कहानी यह भी'-वार अपनों के थे, सो घाव ज्यादा रिसते थे	डॉ. ऋचा शर्मा	41
9.	स्वनिम की अवधारणा	रहमतुन्निसा बेगम	44
10.	सोशल बनाम परंपरागत हिंदी मीडिया का भाषिक-सामाजिक संदर्भ	अंजुम शर्मा	47
11.	आदिवासी साहित्य की पहली आत्मकथा 'जंगल से आगे'	श्रीमती रंजीता साव	50

हिंदी कहानी

12.	जीवट	योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'	56
13.	अधूरी कहानी	हरपाल सिंह 'अरुष'	59
14.	लकीरें	शमा खान	67

हिंदी कविता

15.	नई सुबह की तैयारी	सत्यनारायण भटनागर	72
16.	शब्द नि:शब्द	मोहन परमार	73
17.	जल जंगल ज़मीन से आगे	योगेश्वर कौर	74

अनूदित खंड

कहानी

18. भोरहरी में टहलना (असमिया कहानी) — कुल शइकीया, अनुवाद : महेंद्रनाथ दुबे — 75

19. बुधिया (असमिया कहानी) — अनुवाद : भूपेंद्र राय चौधरी — 84

20. पिता के लिए एक भेंट (तेलुगु कहानी) — कोतापल्लि उदय बाबु, अनुवाद : श्रीपेरंबुदुरू नारायण राव 'श्री नारा' — 89

कविता

21. नथरोई दी वादी (डोगरी/हिंदी) — पद्मा सचदेव, अनुवाद : कृष्ण शर्मा — 94

परख

22. दोहा से दोहा - ग़ज़ल तक (दोहों से दोहा - ग़ज़लों तक/ज़हीर कुरेशी) — डॉ. मधुसूदन साहा — 96

23. श्लेषालंकार स्वरूप और विस्तार- एक परिचय (श्लेषालंकार स्वरूप और विस्तार /काव्य शास्त्र/ मधुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ) — डॉ. रंजना अरगडे — 101

24. जीवन-प्रवाह में हार-जीत दोनों किनारों को छूती हास्य व्यंग्य कहानियाँ (पिअरका फुलवा/ कहानी संग्रह/ बलदेव त्रिपाठी) — डॉ. रमेश तिवारी — 105

25. जिंदगी को चाहिए दोनों ही- कुछ कोलाहल, कुछ सन्नाटा (कुछ कोलाहल, कुछ सन्नाटा/ कविता संग्रह) / गुर्रमकोंडा नीरजा) — प्रवीण प्रणव — 108

संपर्क सूत्र — **112**

सदस्यता फार्म

निदेशक की कलम से

शिक्षा और संस्कृति दोनों परस्पर संबद्ध हैं। शिक्षा संस्कृति का आधार और उन्नायक है तो संस्कृति शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। दोनों को अलग करना संभव नहीं है। शिक्षा का संबंध ज्ञानार्जन, विषय-बोध, पदार्थों के तत्वों का ज्ञान, संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का ज्ञान और उसकी उपयोगिता का आकलन करने के साथ ही मनुष्य के विवेक को प्रबुद्ध करना भी है।

शिक्षा एक ओर मुनष्य की चिंतनशक्ति को प्रबुद्ध करके उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराती है और उसके जीवन का लक्ष्य बताती है, दूसरी ओर मनुष्य की आंतरिक शक्ति का विकास करके उसके आत्म-चिंतन, आत्मबोध और तत्वज्ञान की ओर प्रवृत्त करती है। भारतीय संस्कृति में स्वाध्याय को बहुत महत्व दिया गया है। यद्यपि स्वाध्याय का अर्थ है वेद का स्वशाखानुकूल अध्ययन किंतु आजकल स्वाध्याय से तात्पर्य है - पढ़े हुए विषयों का बार-बार पठन, मनन-चिंतन, अभ्यास और उसके सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना साथ ही सरसता की अनुभूति के साथ ही उसको हृदयंगम करना। वस्तुतः तत्वज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मबोध की प्रक्रिया का नाम स्वाध्याय है। स्वाध्याय का साक्षात् संबंध आत्मचिंतन से है। आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानना, उसके गुणों को आत्मसात् करना और आत्मिक आनंद को प्राप्त करना, यह स्वाध्याय का वास्तविक प्रयोजन है। हमारे शास्त्रीय ग्रंथों में स्वाध्याय पर इतना अधिक बल दिया गया है कि इसे संसार का सबसे बड़ा तप बताया गया है।

स्वाध्याय पर गंभीरता से विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि स्वाध्याय ही वह प्रक्रिया है जो मनुष्य को मनुष्यता और उससे भी आगे ले जाकर देवत्व या देवता का स्वरूप प्रदान करती है। व्यक्ति और समाज के सुधार की यही प्रारंभिक प्रक्रिया है। जब आत्मचिंतन की प्रक्रिया प्रारंभ की जाती है तो उससे विचारों की शुद्धि, भावों की शुद्धि और उदात्त गुणों के आधान का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी को संस्कार, संस्कृति या परिष्कार कहते हैं। इसी रूप में शिक्षा, संस्कृति की आधारशिला बनती है।

संस्कृति का साक्षात् संबंध संस्कारों से है। संस्कार, परिष्कार, शुद्धि या संशोधन संस्कृति है। संस्कृति के उन्नयन की यही प्रक्रिया है। संस्कृति न केवल व्यक्ति का परिष्कार करती है, अपितु समाज, राष्ट्र और विश्व को शुद्ध एवं पवित्र बनाती है। भारतीय परंपरा में उच्च संस्कृति स्वार्थपरक न होकर परार्थपरक होती है। इसमें मानवमात्र के कल्याण की प्रवृत्ति होती है। विश्व-बंधुत्व या 'वसुधैव कुटुंबकम्' का भाव जागृत होता है और लोकहित एवं विश्वहित की कामना होती है। विविध विषयों से संबंधित आलेखों से समन्वित 'भाषा' का प्रस्तुत अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। सुधी पाठकों के सुझाव आमंत्रित हैं।

रमेश कुमार पांडेय

प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

आपने लिखा

भाषा पत्रिका का नवंबर-दिसंबर 2019 का अंक प्राप्त हुआ- एतदर्थ संपादक जी और संपादक मंडल को अनेकानेक धन्यवाद एवं बधाई। कोई भी पत्रिका अपनी गौरवशाली प्रतिभा तब तक उजागर नहीं कर सकती जब तक वह तटस्थतावादी धरातल पर तलस्पर्शी दृष्टिकोण से साहित्यानुशीलन का विकास न करे। प्रसन्नता का विषय है कि लेखकों के साथ-साथ भाषा परिवार का सकारात्मक सक्रिय सहयोग पत्रिका से मिल रहा है जिसकी परिणति समय से अंकों का प्रकाशन तथा दूरस्थ लेखकों की सहभागिता एवं समरस दृष्टि से संपादत्व निर्वहन है। 29 लेखकों की रचनाओं में से मात्र चार ही लेखक दिल्ली से इस अंक में प्रतिनिधित्व करने में सफल रहे हैं- यह पारदर्शिता के साथ-साथ निष्पक्षता, तटस्थता एवं कर्तव्य परायणता का साक्ष्य अपने आप में है।

पत्रिका अपनी अभीष्ट प्राप्ति की ओर द्रुतगति से अग्रसर है। हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के अंतर्संबंध विशेषांक में विविध आयामी विवेचन विश्लेषण के साथ-साथ सांस्कृतिक वैविध्य, भाषाओं का वैशिष्ट्य परस्पर लंबन, मानवीय मूल्य, भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मनोविश्लेषणात्मक तथ्यान्वेषण, मूलभूत एकता, तुलनात्मक व्याकरण, साम्य-वैषम्य, विविध परिप्रेक्ष्य आदि विषयक आलेख समग्र अनुशीलन के जीवंत दस्तावेज प्रमाणित हुए हैं। हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं में- संस्कृत, मराठी, मैथिली, बांग्ला, नेपाली, असमिया, मलयालम, तमिल, मणिपुरी आदि भाषाओं के साम्य और वैषम्य पर भी गवेषणात्मक शैली में विश्लेषित किया गया है। निदेशक की कलम से समन्वयवादी और सामंजस्यवादी वृत्ति ही भाषाई संप्रेषणीयता को ऊर्जा प्रदान करेगी- यह संदेश भी विचारणीय है।

भाषा विषयक तुलनात्मक विवेचन ऐतिहासिक परिदृश्य का बोध कराने में सक्षम सिद्ध हुआ है जिसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया गया है। विविध भाषाओं के अंतर्संबंध को मद्देनज़र रखते हुए भाषाओं में निहित धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक आदि विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन वास्तव में शोधपरक दृष्टिकोण का परिचायक और भाषाई तादात्म्यीकरण का द्योतक सिद्ध हुआ है। यह अंक शोध विषयक सामग्री से भरपूर है। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी अनंत शुभकामनाएँ।

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय,
8/29 ए, शिवपुरी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश-202001

संपादकीय

आज का युग वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, विश्वग्राम अथवा साइबरकैफे का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी के रथ पर सवार होकर तथाकथित आर्थिक उदारीकरण की ध्वजा फहराता हुआ यह युग नई संभावनाएँ और नई चुनौतियाँ लेकर आया है। वैश्वीकरण की प्राचीन भारतीय अवधारणा में 'लोकमंगल' और 'लोकरक्षण' का भाव समाहित था जो 'वसुधैवकुटुंबकम', -सर्वेभवन्तुसुखिनः' तथा 'कर्णवन्तुविश्वमआर्यम' की सुगंध से सुवासित था। आज का वैश्वीकरण संपूर्ण विश्व को गलाकाट स्पर्धा से भरा बाज़ार बनाने में जुटा है। वह बाज़ार जो मानव सभ्यता के प्रारंभ में मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही अपने जीवन की सफलता मानता था आज उसने आधुनिकता और वस्तुओं की चकाचौंध से तथा अंतहीन लालसाओं से मनुष्य को भ्रमित कर डाला है। इस बाजारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने अनेक यक्ष प्रश्न हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं। जिसमें सबसे बड़ा प्रश्न मनुष्यता की संवाहक एवं संरक्षक संस्कृति और साहित्य के अस्तित्व का है क्योंकि जो समाज अथवा राष्ट्र अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों का उत्तर न देकर उनसे आँखे चुराता है उसे समय की आंधियाँ नष्ट कर देती हैं।

आज हमारी संस्कृति के समक्ष गंभीर चुनौती उपस्थित हुई है, इसे सांस्कृतिक संकट कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। संस्कृति पर संक्रमण के बादल मंडरा रहे हैं। धर्म, आध्यात्मिकता, नैतिकता, भावुकता आदि में निरंतर अवमूल्यन होता जा रहा है। परिवर्तनशील परिस्थितियाँ भारतीय संस्कृति के समक्ष प्रश्न-चिह्न लगाती हुई दिख रहीं हैं। पश्चिमी संस्कृति को साथ लेकर चलने के कारण हमारी चिंतन-धारा दिनोंदिन शुष्क होती जा रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति, उत्तर-आधुनिकता तथा बाजारवाद हमारे जीवन और समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रहे हैं। मानवीय संवेदना के क्षितिज पर मीडिया, कंप्यूटर और प्रौद्योगिकी हावी हो गए हैं। भारतीय मानस, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य विदेशी प्रतिबद्धता आवृत मुक्ति के लिए छटपटा रहे हैं। संस्कृति किसी काल विशेष अथवा व्यक्ति विशेष के बंधनों में जकड़ी हुई नहीं होती, अपितु वह स्वतंत्र एवं विकासशील जीवन की मौलिक प्रवृत्ति होती है। भारतवर्ष ने इस संस्कृति को ही धर्म माना है। अतः जब हम कहते हैं कि भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है तो इसका अर्थ कोई विशिष्ट मज़हब, कोई विशिष्ट मत अथवा कोई विशिष्ट धर्म न होकर केवल संस्कृति होता है। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि वास्तविक भारत को समझना है तो उसे राजनीति अथवा अर्थनीति के चश्मे से न देखकर उसे सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखना होगा। भारतीयता की सच्ची अभिव्यक्ति उसकी संस्कृति के माध्यम से ही होगी। त्याग, सहिष्णुता और कर्तव्यप्रधान जीवन भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

हमारे यहाँ सांस्कृतिक प्रगति की लगभग आठ हजार वर्षों की अविकल धारा है। इस विरासत में मानव सभ्यता एवं मानव जाति के प्राचीनतम और दुर्लभ ग्रंथ है। हमारे पास साहित्य, कला और संगीत की विपुल एवं समृद्ध परंपरा है। भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही हिंदी भाषा एवं साहित्य भी निरंतर प्रवाहमयी रहा है तथा संस्कृति के अनुरूप ही इसका स्वरूप स्थान, समय और युगीन संदर्भों के अनुसार बदलता रहा है और अपने को युगानुकूल एवं ग्राह्य बनाता रहा है।

हिंदी साहित्य के चिंतन की परंपरा भारतीय चिंतन की परंपरा का ही एक अंश है, जो अत्यधिक समृद्ध और प्राचीन है। भारत जैसी अविच्छिन्न साहित्यिक परंपरा विश्व में बहुत ही कम राष्ट्रों के पास है। भारत के सांस्कृतिक प्रवाह से निरंतर पुष्ट होती हुई हिंदी भाषा एवं साहित्य की अविरल धारा भारतीय जन मानस को सदियों से आप्लावित करती रही है।

प्रस्तुत अंक में पूर्व की भाँति विविध स्तंभों के अंतर्गत सामग्री दी गई है। भाषा के अंकों के बारे में प्राप्त सम्मतियों से हमें आगामी अकों को और बेहतर बनाने का संबल मिलता रहा है। पत्रिका के विषय में आपके विचार सदैव स्वीकार्य एवं स्वागतयोग्य हैं।

(डॉ. राकेश कुमार)

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का तीक्ष्ण शर-विधृत-क्षिप्रकर, वेग-प्रखर,
शतशेलसंवरणशील, नील नभगर्ज्जित-स्वर

'सूर्यकांत त्रिपाठी', 'निराला'

☆ ☆ ☆

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकस का कस खोलो,
किसने कहा, युद्ध की बेला चली गई, शांति से बोलो?
किसने कहा, और मत वेधो हृदय वह्नि के शर से,
भरो भुवन का अंग कुंकुम से, कुसुम से, केसर से?

रामधारी सिंह 'दिनकर'

☆ ☆ ☆

वह विराट या हेम घोलता, नया रंग भरने को आज।
'कौन'? हुआ यह प्रश्न अचानक, और कुतूहल का था राज़।

जयशंकर प्रसाद

☆ ☆ ☆

जहाँ अभिषेक-अंवुद छा रहे थे, मयूरों से सभी मुद पा रहे थे,
वहाँ परिणाम में पत्थर पड़े यों, खड़े ही रह गए सब थे खड़े ज्यों।

मैथिलीशरण गुप्त

आलेख

उन्मुक्त मन की रागात्मकता एवं मंगलमयी जनपक्षधरता

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

यह मानते हुए भी कि "कवि कितना भी कह डाले, लेकिन अनकहा अधिक रह जाता है" शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने इतना कुछ और इतने रूपों में कहा है कि उनकी छवि एक विविधवर्णी एवं बहुआयामी कवि की है। उनकी कविता का आकाश अगर इंद्रधनुषी आभा लिए हुए है तो इसलिए कि उसमें 'कालिदास की शेष कथा कहने' का दायित्व-बोध है, 'हिमगिरि के उर का दाह दूर करने' का संकल्प है, 'सर सरिता, नद, निर्झर झरने' तथा 'युग का नमक अदा करने' की सदिच्छा है, 'हर धमनी में गंगा-जमुना का प्रवाह' और 'श्वासों में मलय पवन लहराने' की कामना है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि सुमन की कविता की परिधि कितनी व्यापक और कितनी विस्तृत है। उसमें एक लंबी कालावधि के भाव-बोधों की समाहिती है तो नित नवीनता से परिचालित होते रहने की अदम्य लालसा भी है। यहाँ यह स्मरणीय है कि सुमन जी का रचना-काल विभिन्न वादों एवं आंदोलनों के उदय-अस्त का काल भी है। इसके बावजूद उनकी कविता किसी विशेषवाद अथवा विचारधारा तक सीमित नहीं है तो इसलिए कि उनकी कविता को कोई बंधन स्वीकार नहीं है। उसे तो बस 'शिप्रा की तरह तरल, सरल बहनें की आकांक्षा है। प्रगति और प्रवाह से ही उसकी प्रतिबद्धता है। सुमन ने यह स्पष्टतया कहा भी है- मैं किसी विशेष चिंतनधारा या वाद से न तो अपने को जोड़ता हूँ, न जोड़ना चाहता हूँ। यदि प्रवृत्ति की दृष्टि से देखा जाय तो मैं मूलतः रोमांटिक हूँ- अपने संपूर्ण विद्रोही, स्वतंत्र और रागात्मक अर्थों में। आगे चलकर मुझे प्रगतिवादी धारा का कवि कहा गया। वस्तुतः मैंने सशस्त्र क्रांति की राष्ट्रीयता के द्वार से प्रगतिवाद में प्रवेश पाया, फिर भी उसके बाद में मैं बँध नहीं पाया-या वह मुझे बाँध नहीं पाया। इसलिए जैसे परिवेश बदलते गए, मैं सहज भाव से अपनी बात कहता गया। (सुमन समग्र, खंड दो, पृष्ठ-5) यहाँ यह कहना अनावश्यक नहीं होगा हि सहजता में प्रस्फुटित सुमन जी की उन्मुक्त मन ही रागात्मकता एवं मंगलमयी जनपक्षधरता का भास्वर विधान ही उनकी कविता का पाथेय है। इसे लेकर ही उन्होंने प्रेम-रोमांस तथा लोक चेतना के मार्ग पर दीर्धावधि तक यात्रा की है।

छायावादी रोमानियत और संस्कारशीलता से अपनी काव्य-यात्रा प्रारम्भ करने वाले शिवमंगल सिंह 'सुमन' में उन्मुक्त मन की राग-भावना, उत्कंठा और व्यग्रता आजीवन बनी रही। यदि ऐसा नहीं होता तो कवि अपनी परवर्ती कविताओं में इनकी पुनरावृत्ति नहीं करता। रागात्मकता, जिज्ञासा, विस्मय और संभ्रम की जो धारा सुमन जी ने अपने प्रथम काव्य संग्रह 'हिल्लोल' में प्रवाहित की थी वर्षों बाद उसका अंतः सलिला के रूप में 'पर आँखे नहीं भरी' में प्रकट होना यह सूचित करता है कि कवि प्रेम, सौंदर्य और मांसलता के आकर्षण से कभी मुक्त नहीं हुआ। मुक्ति उसके लिए संभव भी नहीं थी क्योंकि उसके मन-मस्तिष्क पर जयशंकर प्रसाद की मादकता और कमनीयता, महादेवी की टीस और वेदना, निराला की स्वच्छंदता और रोमांटिकता तथा

पंत की सुकुमारता और मसृणता का ऐसा अमिट प्रभाव अंकित था जो रह-रहकर अँगड़ाई लेता और कवि को उसी धारा में अवगाहन हेतु विवश करता था। इसी की परिणति है कि 'जीवन के गान' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' के बाद सुमन जी' पर आँखे नहीं भरी' की प्रेम और उन्माद की कविताएँ रचते हैं। उसे वे अपनी प्रणय-व्यंजना की बेलौस उपलब्धि बताते थकते भी नहीं हैं। (संदर्भ- सुमन समग्र, खण्ड दो, पृष्ठ 9)। जाहिर है- 'जीवन के गान' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' में समष्टि की यात्रा के बाद कवि का व्यष्टि की ओर लौटना, जगती के सुख-दुख और संघर्ष-गान के पश्चात् निजी मनोभावों की अभिव्यक्ति करना पाठक के मन में प्रश्न की संभावनाओं को जन्म तो देगा ही जिसका उत्तर सुमन ने इस रूप में दिया है- मुझसे पूछा जा रहा है कि लोकोन्मुखी चेतना का मार्ग छोड़कर मैं सहसा प्रेम-रोमांस के इस पुराने मार्ग पर क्यों लौट आया? क्योंकि विषमता तो ज्यों की त्यों थी और समस्याएँ समाप्त नहीं हुई थीं बल्कि और बढ़ रही थीं। यह तर्क कदाचित सही हो, परंतु भारतवर्ष में नव स्वतंत्रता का विहान एक विशिष्ट आनंद और उल्लास का आह्लाद लेकर आया था। इसलिए मेरा कवि एक क्षण के लिए स्वप्नों को ही सत्य मान बैठा था। अतः क्रांति के कारण रुकी दबी मूल प्रेम सौंदर्य की आंतरिक गूँज कविता की बाँसुरी से फूट पड़ने को विह्वल हो उठी थी।" (वही, पृष्ठ 10) इसी में आगे वे यह भी कहते हैं कि "प्रेम-व्यंजना के बावजूद मेरे व्यक्तित्व में समानांतर लोकोन्मुख साधना-सरस्वती की तरह अंतवर्ती ही सही प्रवाहित रही और पूरे वेग से प्रवाहित हो रही थी।" उपर्युक्त इन दोनों कथनों का निष्कर्ष यह है कि सुमन की काव्य-सरिता रागात्मकता और लोकचेतना के दो उपकूलों के भीतर प्रवाहित हुई है। समय-समय पर अन्य भाव-लहरियों ने भी अपनी उपस्थिति से सबको चमत्कृत करने का प्रयास किया है। कभी उनमें इतनी प्रबलता और उत्तालता रही है कि उन्हें ही मुख्यधारा मान लेने का संभ्रम भी पैदा हुआ है।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के यहाँ नवीन पथ के अन्वेषण और अनुसंधान की व्यग्रता और आकुलता इतनी तीव्र है कि उनमें अनुसरणात्मक प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। यह उनकी उस साधना से संभव हुआ है जिसमें वे अपने जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा के क्षणों में प्राणों को मथकर शब्द-नवनीत निःसृत करते हैं। तभी लोकमंगल और साधना के स्वरों के साथ यौवन, सौंदर्य और प्रेम के गीतों का संगम हो सका है। जीवन के यौवन-पट से प्रिय को झाँक लेने का आवेग उमड़ पड़ा है। मन की हिल्लोल तरंगायित हो उठी है। जोश, खुमारी और मस्ती के मार्ग पर चलने वाले को दुनिया चाहे जो भी नाम दे लेकिन वह तो अपने को दीवाना ही कहलाना पसंद करता है। इसके अलावा उसका और कोई परिचय हो भी नहीं सकता-

हम दीवानों का क्या परिचय?
कुछ चाव लिए, कुछ चाह लिए
कुछ कसकन और कराह लिए
कुछ दर्द लिए, कुछ दाह लिए
हम नौसिखिए, नूतन पथ पर चल दिए, प्रणय का कर विनिमय
हम दीवानों का क्या परिचय?
(सुमन समग्र, खंड एक पृ.19)

युवामन की भावुकता और प्रणय की रागमयी अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति के काव्य 'हिल्लोल' में सुमन ने मौज-मस्ती भरे प्रयोगशाील व्यक्तित्व का जो परिचय दिया है उसे जान-समझकर भी दुनिया जब विस्मित होती है, कौतूहल और आश्चर्य प्रकट करती है तथा प्रणय-सिंधु की अथाहता और प्रिय-मिलन की चाह की कुश-कंटकों वाली राह की पीड़ा से अनजान बनती है तब कवि यह पूछे बिना नहीं रहता-

मेरे इस दीवानेपन पर तुझको क्यों होती हैरानी,
परिणाम यही होता जिसके उर में संचित आगी-पानी।
(वही, पृष्ठ 39)

जीवन की हलचल में कवि अकेला है और उसे किसी की तलाश है। 'कोकिल कूजित मधुवन' में प्रेयसी के स्मित आनन की खोज उसकी छायावादी भावुकता की सूचक है। 'अपने हित आँसू बरसाने वाले' को नहीं भूल पाने की कसक और पीड़ा है। उसके आरंभिक काव्य-संसार में प्रेम की मादकता, विरह-मिलन की मधुर स्मृतियाँ, हदय की पीड़ा और वेदना, अवसाद और उत्तप्त कामना, अनुनय और उपालंभ, इसरार और इकरार की अधिकता है। इतने के बावजूद उसकी कविता का चरित्र छायावादोत्तर गीतधारा ही नहीं छायावादी

की वायवीयता, रहस्यावरण और एक खास किस्म की फंतासी से भिन्न चल रही यथार्थ वादी रूमानी प्रवृत्ति से संबद्ध था।" (सुमन समग्र, खंड दो, पृष्ठ 6)। सुमन जी की कविता में अभिव्यक्त प्रेम, सौंदर्याकर्षण, साहचर्य, अनुनय, उपालंभ, व्यग्रता, आग्रह और आलोड़न छायावादी अमूर्तता और रहस्यमयता की अपेक्षा मानवीय मांसलता एवं ऐंद्रियता तथा मस्ती और आवेग लिए हुए हैं। उसमें व्यक्तिवादी मानसिकता उतनी नहीं है जितनी फक्कड़ाना प्रवृत्ति। इसी आधार पर सुमन जी यह उद्घोष कर सके हैं- हम भेदभावमय जगती के सब भेद मिटाने वाले है। उन्हें सुख-संसार की अपेक्षा भी नहीं है- 'मुझको न सुख-संसार दो'। वे महाकवि सुमित्रानंदन पंत की भाँति अब प्रिया के श्यामल कुंतल में उलझने से भी अपने को मुक्त रखना चाहते हैं- 'सुंदरी मुझको बंदी न करो/अपने कुंचित कच जालों में।' जाहिर है रोमांस, खुमारी, मादकता और कमनीयता का कवि जग-जीवन का संघर्ष देखता है। घात-प्रतिघात, पीड़ा और कष्ट का अनुभव करता है। जग की पीड़ाएँ उसे व्यथित और बेचैन करती हैं। यही कारण है कि प्रेयसी से स्नेह की आकांक्षा और अभिलाषा के क्षणों में भी वह जग की व्यथा-कथा कहना नहीं भूलता-

जग-पीड़ा अन्तर्निहित किए
बन दुखी हृदय की हूक उठूँ
तेरे उपवन का पंछी मैं
जब जग-मधुवन में कूक उठूँ
तब मेरी कूक-हूक में तुम अपना संगीत मिला देना
इतना तो नेह निभा देना।

(सुमन समग्र, खंड-एक, पृष्ठ 26)

'हिल्लोल' का प्रणयी कवि अपनी यौवनाकांक्षा और चिर अतृप्ति की भूमि से थोड़ा खिसकते हुए जब दलित-शोषित मानवता के उद्धार की बात करने लगता है तब उसकी काव्य-रचना की नई दृष्टि का आभास मिलना शुरू हो जाता है। 'हिल्लोल' की ही परवर्ती कविताओं में उसकी उद्दाम प्रणयानुभूति चिर शोषितों के साथ संवेदना और सहानुभूति के रूप में परिवर्तित दृष्टिगत होती है। उसकी कविता दुखी, असहाय और उपेक्षितों-वंचितों का स्वर बनना चाहती है। उसकी वाणी आशा और आह्लाद का संदेश सुनाना चाहती है। उसकी प्रेम-विरह की आग अभावग्रस्त जीवन में प्रकाश-पर्व के रूप में प्रज्जवलित होने के लिए मचलती नज़र आती है। ऐसे क्षणों में उसे प्रेम की चाह का कोई स्वर नहीं सुनाई पड़ता। प्यार और पीड़ा की आह की ध्वनि धीमी पड़ जाती है- *जग-जीवन के संघर्षण में नहीं सुनाई पड़ता चाहें/धीमी सी पड़ गई प्रिये है, प्यार और पीड़ा की आहें।* (वही, पृष्ठ 54)। चिर शोषित-दलित और असहायों पर हो रहे अत्याचारों के दमन-दलन हेतु वह जिस विस्तृत पथ पर चलना चाहता है वह अत्यंत कंटकाकीर्ण और कठिनाई भरा है। साहसी और दृढ़व्रती ही उस पर चल सकता है। अकेले के लिए वह मार्ग और भी जोखिम भरा है। इसलिए वह प्रिया के संग-साथ की अपेक्षा रखता है। वह उसे साहसी बनकर साथ निभाने का आमंत्रण देता है-

विस्तृत-पथ है मेरे आगे उस पर ही मुझको चलना है
चिर शोषित असहायों के संग अत्याचारों को दलना है,
साहस हो तो आओ तुम भी मेरा साथ निभा दो थोड़ा
अगर नहीं तो अब तो मैंने उस जीवन से ही मुख मोड़ा।

(वही, पृष्ठ सं. 55)

यहाँ शिवमंगल सिंह 'सुमन' जिस जीवन से मुख मोड़ने का संकेत दे रहे हैं वह निश्चित ही प्रेम और रोमांस का जीवन है। समय बदल रहा है। देश-काल में परिवर्तन की आहट सुनाई दे रही है। क्रांति-क्रांति की प्रतिध्वनि से सारी धरती गूँज उठी है। नव निर्माण की चिनगारी घर-घर सुलगने लगी है। कवि इस जन-जागरण से प्रसन्न होकर पूछ बैठता है-

टूटी-फूटी झोपड़ियों से
उठता यह कैसा कोलाहल?
क्या पतित-पददलित युग-युग के
कुछ आज हो उठे हैं चंचल?
जल-थल-अंबर में फैल रहा
यह कैसा हाहाकार प्रबल?
किसका विनाश करने निकला
यहाँ इंकलाब का दावानल?

(सुमन समग्र, खंड एक, पृष्ठ 76)

यहाँ शिवमंगल सिह 'सुमन' का जनक्रांति के रूप में प्रगतिवादी काव्य-चेतना का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। 'हिल्लोल' की 'जागरण' शीर्षक अंतिम कविता से ही वे गगनचारी काल्पनिक भावनाओं तथा रागात्मक अनुभूतियों को गौण स्थान देते हुए जीवन और जगत की वास्तविकता में प्रवेश करते हैं। वे व्यक्तिवादिता से ऊपर उठकर समाज की नई शक्तियों के साथ एकात्मकता का अनुभव करते हैं। 'हिल्लोल' के काल में जहाँ उन्हें बस यह चेतना प्राप्त हुई थी कि- *देखो वे नंगे भिखमंगे/आए हैं नूतन वेष लिए/अब तक ही जर्जर जगती में/नवयुग का नव-संदेश लिए।* तथा श्रमिक वर्ग के सामूहिक संघर्ष में ही मानव-स्वतंत्रता का मूल मंत्र मानते हुए भी उन्होंने उससे अपना संबंध बस इतना ही जोड़ा था कि- *आओ उठो देरी न करो/उनका स्वागत करना होगा/सुख-शांति, स्नेह, समभावों से/जग का अंचल भरना होगा।* वहीं अपने दूसरे काव्य-संग्रह 'जीवन के गान' तक आते-आते उनमें संघर्ष का एक अंग होने तथा उसमें सक्रियता के साथ भाग लेने की प्रवृत्ति का विकास दिखाई देने लगता है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने स्वयं इस बात को स्वीकार भी किया है-"जीवन के गान' में मुझे इतनी चेतना और मिली है कि मैं भी इस संघर्ष का एक अंग हूँ और उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए, उसका अभिन्न अंग बनने के लिए मैं सजग हो उठा हूँ और यह उद्‌गार कि 'मेरा पथ मत रोको रानी', 'आज कवि कैसी निराशा', 'विद्रोह करो, विद्रोह करो', उस संघर्ष में कूद पड़ने के पहले के संकल्प- विकल्पों के द्योतक हैं। प्रत्यक्ष है कि अभी मेरी वाणी उस संघर्ष को सक्रिय स्वरूप नहीं प्रदान कर सकी है, अतएव 'जीवन के गान' का अंतिम गीत है- 'अभी कहाँ मैं गा पाया हूँ अपने जीवन गान'। अब तक तो यह एक गायक की स्वर-साधना मात्र थी, वास्तविक गायन की तो अब प्रतीक्षा करनी चाहिए। संघर्ष की गत्यात्मक वास्तविकता के जीवन-चित्र तो अब मैं उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा। (सुमन समग्र-खंड एक 'जीवन के गान' कुछ कहना आवश्यक था इसलिए,'पृष्ठ 383) सचमुच उसके बाद के अपने काव्य-संग्रहों 'प्रलय-सृजन', 'विश्वास बढ़ता ही गया' आदि में उन्होंने कल्पना और स्वप्न लोक से नीचे उतरकर यथार्थ की धरती पर जो अपने पाँव रखे तो उनकी गत्यात्मकता का केंद्र संघर्षशीलता ही थी। उन्हें सागर की अपार शक्ति का बोध तो था ही माँझी के हाथों की ताकत का भी बोध था जिसके बल पर वह सातों समुद्र पार करता रहा है इसीलिए वे तूफानों की ओर पतवार घुमाने की बात कहते हैं-

सागर की अपनी क्षमता है
पर माँझी भी कब थकता है
जब तक साँसों में स्पंदन है
उसका हाथ नहीं रुकता है
इसके ही बल पर कर डाले
सातों सागर पार
तूफानों की ओर
घुमा दो
नाविक!
निज पतवार।

(वही, पृष्ठ 183)

छायावादोत्तर काल स्वतंत्रता-संघर्ष की तीव्रता का काल भी है। राष्ट्रीय भावनाओं का उत्कर्ष यहाँ कुछ ज्यादा ही दृश्यमान है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' के 'हिल्लोल' का अनगढ़ भावुक युवामन जब 'जीवन के गान' में प्रवृत्त होता है तब उसकी काव्य-चेतना में राष्ट्रीयता की भावना का उफान बहुत जोर मारता है। उनकी रूमानी भावना गांधी से होती हुई सशस्त्र क्रांति तक जा पहुँचती है। उनके मन-मस्तिष्क पर गांधी का प्रभाव कोई बहुत बड़ी निशानी बनाता उसके पहले ही वे चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह आदि की क्रांतिकारी विचारधारा में अवगाहन करते दृष्टिगत होते हैं। उनका रूमानी आरंभ अंततः राष्ट्रीयता में विनिमज्जित हो जाता है जिसे वे एक स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मानते हैं- "मेरे मन पर सबसे पहले गांधी का प्रभाव पड़ा था, लेकिन इससे पहले कि वह प्रभाव मेरी कवि-चेतना का अंग बन कविता में उतरता, मुझे सशस्त्र क्रांति की लपटों ने विमोहित कर लिया।.... मेरी रुमानी विह्वलता का इस बाहरी क्रांति में परिवर्तन एक स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया थी।" (सुमन समग्र, खंड दो, पृष्ठ 7) यहाँ यह ध्यातव्य है कि सुमन जी ने मैथिलीशरण गुप्त, सोहन लाल द्विवेदी अथवा माखनलाल चतुर्वेदी मार्का राष्ट्रीय कविताएँ अधिक नहीं लिखीं क्योंकि उनका झुकाव गांधी की अपेक्षा मार्क्स की ओर अधिक था। मार्क्स का वैज्ञानिक भौतिकवाद और नई व्यावहारिक

दृष्टि तथा भगत सिंह की क्रांतिकारी विचारधारा उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को दिशा देने के लिए उपयुक्त प्रतीत हुई थीं। साम्यवादी भावधारा की अभिव्यंजना वाली कविताओं (प्रगतिवादी) को ही उन्होंने राष्ट्रीय कविता माना है- "मैं प्रगतिवादी रचनाओं को सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय मानता हूँ। क्योंकि ये भी जनकल्याण की भावना से ही आंदोलित थीं। मार्क्सवादी परिवेश में उनका अंतर्राष्ट्रीयता से विरोध हो ही नहीं सकता अंतर केवल इतना था कि जहाँ एक ओर राष्ट्रीय कविताएँ वर्ग-भेद, ऊँच-नीच आदि को भूलकर केवल आजादी के प्रति अस्पष्ट विद्रोह की व्यंजना करती थीं वहीं प्रगतिवादी, साम्राज्यवाद के साथ-साथ पूंजीवादी के विरुद्ध जिहाद बोलने का दम भरता था। यह भी स्मरणीय है कि प्रगतिवाद की एक वैश्विक भूमिका भी थी। इसलिए कई बार उसकी व्यापक भावना में राष्ट्रीयता अंतर्निहित होती थी। लोगों ने केवल आजादी के लिए लिखी रचनाओं को ही प्रायः राष्ट्रीय कहा। मनुष्यता के परिपार्श्व में लिखी वर्ग संघर्ष की कविताएँ कही गईं। यह तो आलोचकों के द्वंद्व युद्ध की बात है कि किसमें पूर्वापर विवेक अधिक था, लेकिन इतना अवश्य कह सकता हूँ कि प्रगतिवाद का लक्ष्य राष्ट्र-कल्याण और लोक-कल्याण था।" (वही, पृष्ट-17)। 'प्रलय-सृजन' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' जैसे काव्य-संग्रहों में सुमन जी की राष्ट्र और लोक-कल्याण की भावनाओं ने ही मूर्त रूप लिया हैं विषमता की कहानी को ध्वंस कर देना ही उनका लक्ष्य बन गया है

चाहता हूँ ध्वंस कर देना विषमता की कहानी
हो सुलभ सबको जगत में वस्त्र, भोजन, अन्न, पानी।

(सुमन समग्र, खंड-एक, पृष्ठ 219)

प्रगतिवादी कविता धरती और जन की कविता है। मनुष्य इस कविता का विषय भी है और विचार भी। उसी के दुख-दर्द, गरीबी, भुखमरी, शोषण, यातना पीड़ा, हताशा, निराशा, उपेक्षा आदि को मिटाकर समतामूलक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना प्रगतिवादी कविता का लक्ष्य है। सुमन जी ने जब अपने समय के समाज की विषमता देखी, वर्ग- भेद और जाति-भेद देखा, गरीबी और भुखमरी देखी तब वे अपने युग को ही कोसते हुए नजर आए- "लाचारी है आखिर मैंने ऐसे युग में जन्म लिया है/ जहाँ सभी ने रूप सुधा को छोड़ गरल का पान किया है।" ऐसे में "यौवनमद में कौन हुआ मदहोश नहीं है" कहने वाला कवि शोषितों, असहायों की पक्षधरता में क्रांति चेतना को स्वर देते हुए यह कहने लगता है- "और कभी प्रतिध्वनित करेगी मधुगायन स्वर लहरी मेरी/ आज चाहती दुनिया सुनना मेरी वाणी में रणभेरी।" मनुष्यता के परिपार्श्व में वर्ग-भेद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध शंखनाद की जरूरत इसलिए है कि "यहाँ मानव-मानव में समता का व्यवहार नहीं।/ हाहाकारों की दुनिया में सपनों का संसार नहीं हैं।- अभी तक प्रेम में असफलता, मिलन-विरह की आशंका, सौंदर्याकर्षण के प्रति मुग्धता का भाव रखने वाला कवि यथार्थ की धरती से परिचित होकर आत्मसंघर्ष और वैचारिक उद्वेलन को आंतरिक और अनुभूत सत्य के साथ एकाकार करता है और अंतर्विरोधों से मुक्त हो लोकचेतना और सैद्धांतिकता को रचनात्मक धरातल पर जीता है। अपने आवेश और अनमनेपन को इन शब्दों में प्रकट करता है-

आज जो मैं इस तरह आवेश में हूँ अनमना हूँ
यह न समझो मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
सत्य कहता हूँ पराए पैर का कांटा कसकता
भूल से चींटी कहीं दब जाए तो भी हाय करता।।

(सुमन समग्र, खंड एक, पृष्ट 219)

धरती जिनकी है और जो धरती की फसल हैं उन्हीं की धरती छीन ली गई है। उन्हें सर्वहारा बना दिया गया है। पूंजीपतियों ने अपने शुभ-लाभ के चक्कर में उनका हृदय तक चूस लिया है-

पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटि-कोटि बुभुक्षितों का कौर तलक छिना लिया है
लाभ-शुभ लिखकर जमाने का हृदय चूसा जिन्होंने
और कल बंगालवाली लाश पर थूका जिन्होंने।।

(वही)

इसीलिए कवि जर्जर-कंकालों पर वैभव का प्रासाद खड़ा करने वालों को कोसता है, भूखों के मुख से कौर छीनने वालों को लज्जित और अपमानित करता है, रक्तपात कर अमृत पीने वालों को धिक्कारता है तथा जिनके कारण यह सुंदर धरती रहने लायक नहीं रह गई

उनकी छाया तक छूना हराम मानता है। ऐसे धनपशुओं तथा अत्याचारियों को वह शाप देकर छोड़ देने के मूड में नहीं है बल्कि बददुआ और हाय से ऊपर उठ उन्हें ललकारने तथा बदला लेने की मनस्थिति में है- आज खून के लिए खून/ गोली का उत्तर गोली/ हस्ती चाहे मिटे/ न बदलेगी बेबस की बोली।" (वही, पृष्ठ 246)। अब उसने विप्लव का गान ही अपनी कविता का लक्ष्य निर्धारित कर लिया है जिसपर चलते हुए कवि को प्रिया का स्नेह भी स्वीकार्य नहीं है- "मेरा पथ मत रोको रानी"। समाज सापेक्ष सत्ता के प्रगतिशील भावबोधों के उभार के समय प्रेयसी का स्नेहाकर्षण कहीं बाधा न उत्पन्न करे इसलिए वह उससे यह आग्रह करता है कि उसके निश्वासों में विप्लव के विद्युतकण भरकर उसके जीवन को स्वरित करे-

कितने स्वप्निल अभिसार किए
कितनों को उर में लिपटाए
नकली मदिरा की मस्ती के
मैंने भी गीत बहुत गाए
प्रेयसि, मेरी निश्वासों में विप्लव के विद्युत कण भर दो
मेरे स्वर में जीवन भर दो।

(वही, पृष्ठ 127)

यथार्थ के दुर्निवार सत्य का साक्षात्कार और स्वीकार की मानसिकतता में ही सुमन जी ने 'प्रलय-सृजन' की रचना की है। प्रलय शोषित जनता के पक्ष में और सृजन भी उसी के पक्ष में। यही कारण है कि यहाँ संघर्ष का स्वर केंद्रीय स्वर है। हँसिया-हथौड़ा, मजदूर-किसान, शोषित-पीड़ित से संबंधित शब्दावली की भरमार है। 'कंकड़-पत्थर', 'चल रही उसकी कुदाली', 'गुनिया का यौवन', 'मास्को अब भी दूर है', 'स्तालिनग्रेद', 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना', 'कलकत्ते का अकाल' आदि कविताएँ मानवता के पक्ष में बयान हैं। समकालीन में भी विद्यमान है। 'मिट्टी की बारात' में भी उन्हें क्रांति की अनिवार्यता महसूस हुई है- "अनिवार्य क्रांति लगती मुझको, फिर मत कहना/कवि ने सोते शार्दूलों को भड़काया था।" (सुमन समग्र, खंड दो, पृष्ठ 210)। इस क्रांति के बल पर ही सुमन जी को यह विश्वास है-

कभी हमारी भी धरती पर
सुख-समता के फूल खिलेंगे
गली-गली जगमगा उठेगी
स्नेह भरे दीपक छलकेंगे
नयनों की पुतली में झलकेगी प्रकाश की लाली

(सुमन-समग्र, खंड-एक, पृष्ठ 244)

इस तरह यह कहा जा सकता है कि शिवमंगल सिंह 'सुमन' यौवन-राग और जन-कल्याण के कवि हैं। फिर उनका मूल्यांकन चाहे किसी वाद के घेरे में रखकर किया जाए अथवा वाद निरपेक्ष रूप में। हाँ यह अवश्य है कि वे किसी विचारधारा के बंधन में नहीं बँधे जिसका उल्लेख उन्होंने बार-बार अपनी टिप्पणियों, लेखों और साक्षात्कारों में किया है। प्रगतिवाद से उनका जुड़ाव रहा लेकिन मार्क्सवादी उन्हें अपना मानने से परहेज करते रहे क्योंकि उन्हें परंपरा और भारतीयता का गायक पसंद नहीं था। जबकि सुमन जी ने व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानवता के संरक्षण और संपोषण की पक्षधरता व्यक्त की है। देशानुराग और लोक कल्याण को अपनी कविता का विषय बनाया है। प्रेम का आँचल पकड़े रहना भी उनकी नियति और प्रवृत्ति रही है।

– एन. जी.22, टाइप-5, नया गाँव, चक्कर गाँव, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान-744112

❑❑❑

काव्य-नाटककार न्यामतसिंह जैन

डॉ. रामनिवास 'मानव', डी. लिट्

हरियाणा प्रदेश में धर्म और संस्कृति के साथ-साथ सहित्य की भी पुष्ट परंपरा प्राचीन काल से रही है। संस्कृत में बाणभट्ट (स्थायीश्वर), हिंदी में सूरदास (सीही, वल्लभगढ़) और उर्दू में मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' (पानीपत) आदि अनेक प्रमुख कवि-शायर समय-समय पर यहाँ हुए हैं। यही कारण है कि लोक-साहित्य के समानांतर शिष्ट-साहित्य का भी पर्याप्त सृजन यहाँ पर हुआ है। यहाँ की साहित्य-परंपरा में सिद्ध, नाथ, जैन, संत और वैष्णव संप्रदाय के कवियों का साहित्य, जो मूलतः काव्य है, उल्लेखनीय है। आधुनिक काल में भी इस प्रदेश ने बालमुकुंद गुप्त (व्यंग्यकार), माधवप्रसाद मिश्र (निबंधकार), विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' (कहानीकार), अयोध्याप्रसाद गोयलीय (लघुकथाकार) और तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' (कवि) जैसे अनेक समर्थ रचनाकार हिंदी-साहित्य को दिए हैं। इन्हीं में काव्य-नाटककार बाबू न्यामतसिंह जैन का नाम भी सादर परिगणित है। न्यामतसिंह जी जैन साहित्य-परंपरा की एक सशक्त कड़ी थे, जो 19वीं शताब्दी में, भारतेंदु युग में पैदा हुए तथा उनकी बहुमुखी काव्य-प्रतिभा द्विवेदी-युग में पल्लवित-पुष्पित हुई। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक दौर की हिंदी भाषा में रचित कृतियों पर जहाँ एक ओर जैन धर्म के सिद्धांतों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, वहीं द्विवेदी-युगीन सुधारवादी आंदोलनों की गहरी छाप भी दिखाई पड़ती है। अतः कहा जा सकता है कि उनके साहित्य में काव्य, दर्शन और समाज-सुधार की भावना का सुंदर समन्वय हुआ है।

सन् 1866 में, हांसी 'नगर के एक प्रतिष्ठित दिगंबर जैन-परिवार में श्री मंगलसेन के घर जन्मे न्यामतसिंह को धार्मिक एवं साहित्यिक संस्कार पैतृक प्रदाय के रूप में प्राप्त हुए, क्योंकि संगीत-साधना, शास्त्र-सेवन और साहित्य-रचना की परंपरा पहले से ही विद्यमान थी। सन् 1866 में आप नौकरी के कारण हिसार आए तथा जीवनपर्यंत यही रहे। आप हिसार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सचिव जैसे प्रतिष्ठित पद से, सन् 1926 में, सेवा-निवृत्त हुए। न्यामतसिंह एक सुशिक्षित, बहुभाषिक, मृदुभाषी, संस्कारशील और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। कथा-कीर्तन, भजन-प्रवचन, शास्त्र-चर्चा तथा तीर्थ-यात्रा में उनकी विशेष रुचि थी। धर्मप्राण व्यक्ति होने पर भी वह धार्मिक कर्मकांड और पाखंड के कट्टर विरोधी तथा स्त्री-शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। स्त्री-शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु उन्होंने जैन समाज को तो प्रेरित किया ही, अपनी सुपुत्री सितारा देवी और सुपौत्री गुणमाला देवी को, श्रीमती चंदाबाई जैन महिला-आश्रम, आरा(बिहार) में शिक्षा-प्राप्ति हेतु भेजकर, एक क्रांतिकारी तथा अनुकरणीय उदाहरण भी प्रस्तुत किया। अनाथों के प्रति करुणा रखने तथा उनकी सहायता करने पर भी उन्होंने बल दिया और इसी उद्देश्य से 'अनाथ-रुदन' पुस्तक की रचना की। वह अनेक धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं से तो जुड़े ही थे, 'न्यामत जैन-पुस्तकालय' नामक एक निजी पुस्तकालय की स्थापना भी उन्होंने की। समाज, विशेष रूप से जैन समाज में, व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्होंने

पुरज़ोर अभियान चलाया। सन् 1933 में 67 वर्ष की आयु में, उनका निधन हुआ।

न्यामतसिंह जी ने साहित्य-रचना बचपन में ही प्रारंभ कर दी थी। आपकी प्रथम कृति 'जैन भजन-मुक्तावली' थी, जो सन् 1904 में श्री दामोदर प्रैस, बड़ी कालका स्ट्रीट, लखनऊ से छपी थी। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि सभी जैन शास्त्र सरल हिंदी और उर्दू भाषाओं में मुद्रित करवाकर सर्व-साधारण को उपलब्ध करवाएँ। वह स्वयं भी कम-से-कम सौ ग्रंथों की रचना करना चाहते थे। 'न्यामत-विलास' पांडुलिपि में उन्होंने पहले से ही सूची में सौ तक संख्या लिख रखी थी तथा जो पुस्तक तैयार हो जाती थी, उसका नाम उसमें दर्ज़ कर देते थे। 'जिनेंद्र भजन-माला' (अंक एक) में उन्होंने लिखा भी है-

ले शरणा जिनराज का, हो मन मांहि निशंक।
इस न्यामती-विलास के, रचूँ एक सौ अंक।।

***

बाकी जो-जो अंक हैं, गो है मंजिल दूर।
आयु-कर्म बाकी रहा, तो पूर्ण करूं ज़रूर।।

दुर्भाग्य से सौ ग्रंथ-रचना इच्छा पूरी न हो सकी, लगभग चालीस ग्रंथों की रचना ही वह कर सके; उनमें से भी बीस उनके जीवन-काल में प्रकाशित हुए। उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं-

1. जिनेंद्र भजन-माला
2. जैन भजन-रत्नावली
3. मूर्ति मंडल- प्रकाश
4. जैन भजन-तरंगिनी
5. सती कमल- श्री नाटक
6. भविषदत्त-तिलका सुंदरी नाटक
7. जैन भजन-मुक्तावली
8. राजकमल भजन-एकादशी
9. स्त्रीगान जैन भजन-पच्चीसी
10. कलियुग लीला-भजनावली
11. कुंती-नाटक
12. चिदानंद-शिव सुंदरी नाटक
13. अनाथ-रुदन
14. वीर-जयंती
15. स्वाभिमान-रक्षा
16. जैन समाज-दिग्दर्शन
17. सप्त व्यसन-निषेध
18. जैन भजन-शतक
19. थ्येट्रीकल जैन भजन-मंजरी
20. सती मैना सुंदरी नाटक
21. सती विजया सुंदरी नाटक।

उक्त कृतियों में से 'सप्त व्यसन-निषेध' अब अनुपलब्ध है। 'थ्येट्रीकल जैन भजन-मंजरी' उनकी एकमात्र ऐसी कृति है, जो फारसी लिपि में छपी थी। 'सती विजया सुंदरी नाटक न्यामतसिंह जी के निधन के कारण अधूरा रह गया था, जिसे बाद में, उनके सुपुत्र श्री राजकुमार ने, पूरा कर प्रकाशित करवाया।

प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त उनकी उपलब्ध पांडुलिपियों की संख्या पाँच है, वे हैं- 'न्यामत राग-रत्नाकर', 'जीवनधर-चरित्र', 'जैन तत्व-प्रकाश', 'न्यामत-विलास संपूर्ण और एक अनाम भजन संग्रह। मंगलाचरण, गायन, शिक्षा चौबीस जिनराज', 'जीमाल', 'पंच-कल्याणक', 'जैन शब्द-मंजरी', 'न्यामत जैन रसिया-मंजरी', 'कर्ता मंडन भजन-मंजरी', 'न्यामत राम संगीत-दर्पण, न्यामत-नीति, जैन कालिज-भजनावली, रामचरीत भजन-मंजरी', 'ईश्वर स्वरूप-दर्शन', 'पंच-कल्याणक नाटक', 'राजल वैराग-माला' आदि कृतियों का उनके 'न्यामत-विलास' ग्रंथ में तो उल्लेख मिलता है, किंतु इनकी पांडुलिपियाँ अनुपलब्ध हैं। उनकी कुछ उपलब्ध रचनाएँ फारसी लिपि में हैं, उर्दू-फारसी का कोई जानकार ही जिनका अध्ययन कर सकता है।

यूँ तो न्यामतसिंह जी की लगभग सभी कृतियाँ अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय हुईं, लेकिन उन्हें सर्वाधिक ख्याति काव्य-नाटककार के रूप में मिली। उनके आधा दर्जन काव्य-नाटकों में से भी सन् 1911 में प्रकाशित 'सती मैना सुंदरी नाटक' उनकी अक्षय कीर्ति का आधार है। इस नाटक में शील-रक्षा तथा कर्म-सिद्धांत पर बल दिया गया है। इसका कथानक उज्जैन के राजा पहुपाल की पुत्री मैना सुंदरी और चंपानगर के राजकुमार श्रीपाल की कहानी पर आधारित है। श्रीपाल-मैना सुंदरी के विवाह, श्रीपाल के कुष्ट रोग-वर्णन, रोग-निवारणार्थ जिन-मंदिर में पूजा-अर्चना, श्रीपाल के प्रदेश-गमन, मैना सुंदरी के सती धर्म-पालन और कठोर तप तथा बारह वर्ष बाद श्रीपाल के लौटने

भाषा ISSN 0523-1418

पर, दोनों के संन्यास-ग्रहण आदि घटनाओं द्वारा कथानक को रोचक विस्तार दिया गया है। संपूर्ण कथा-विन्यास और नाटक का समापन जैन धर्म के अनुरूप है। कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, भाषा-शिल्प आदि सभी दृष्टियों से यह नाटक उत्तम बन पड़ा है। उद्देश्य की दृष्टि से भी इसे अत्यंत सफल, सर्वग्राही तथा शिक्षाप्रद कहा जा सकता है।

न्यायमतसिंह जी की सुपौत्री श्रीमती चंदनबाला से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'सती मैना सुंदरी नाटक' के बीस संस्करण अब तक निकल चुके हैं, जिनमें से नौ तो उनके जीवन-काल में ही, सन् 1928 तक, निकल चुके थे। इसकी 22300 प्रतियाँ अब तक जैन पुस्तकालयों, मंदिरों में जा चुकी हैं। इस पर फिल्म भी बनी थी तथा इसकी सी.डी. आज भी जैन-तीर्थों पर उपलब्ध है। निश्चय ही, इस नाटक ने जैन समाज में धूम मचा दी थी, हर परिवार में, इसका व्यापक स्वागत किया गया था।

'चिदानंद-शिव सुंदरी नाटक' न्यामतसिंह जी का दूसरा लोकप्रिय नाटक है। यह एक प्रतीकात्मक नाटक है तथा इसमें मानव-मन के अंतर्द्वंद्व और सद्-असद् वृतियों का तो चित्रण हुआ ही है, जिनवाणी द्वारा चेतन (आत्मा) के निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति का सुंदर वर्णन भी इसमें हुआ है। इसमें सभी घटनाओं, पात्रों तथा स्थानों के नाम प्रतीकात्मक हैं। नाट्यकला की दृष्टि से इसे 'सती मैना सुंदरी नाटक' से भी श्रेष्ठ कृति माना जा सकता है। 'सती कम-श्री नाटक', 'भविषदत्त-तिलका सुंदरी नाटक', सती विजया सुंदरी नाटक' आदि का कथ्य भी शील-रक्षा तथा कर्म-सिद्धांत से ही जुड़ा हुआ है। वस्तुत: नाटककार की जैन धर्म और दर्शन में अटूट आस्था थी; उसके मूलभूत सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से ही उन्होंने काव्य-नाटक जैसी लोकप्रिय विधा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

अभिनय, रंगमंच, कथोपकथन, चरित्र-चत्रिण, उद्देश्य आदि सभी दृष्टियों से उनके नाटक सफल कहे जा सकते हैं। इनकी भाषा सरल हिंदी है, जिसमें कहीं-कहीं उर्दू-फारसी के शब्द भी आ गए हैं, जिसे युगीन प्रभाव कहा जा सकता है।

विषयवस्तु की दृष्टि से न्यामतसिंह जी की रचनाओं को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

1. कविता और भजन संग्रह (पुस्तक-संख्या 1, 2, 4, 7, 9, 10, 14, 18, और 19)

2. जैन सिद्धांत संबंधी संग्रह (पुस्तक-संख्या 9)

3. समाज-सुधार संबंधी संग्रह (पुस्तक-संख्या 13, 16 और 17)

4. जैन शास्त्रों पर आधारित काव्य-नाटक (पुस्तक-संख्या 5, 6, 11, 12, 15, 20 और 21)

अभिप्राय यह है कि न्यामतसिंह जी की कृतियों में विषय-वैविध्य तो है ही, विषय-निरूपण भी अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। श्री धर्मेंद्रकुमार जैन के शब्दों में- "भजन-संग्रहों में जहाँ एक ओर जिस भगवान की स्तुति की गई है, वहाँ जन-साधारण को सीधी-सादी भाषा में जैन दर्शन के सिद्धांतों को बताया गया है। समाज-सुधार संबंधी पुस्तकों में जहाँ एक ओर तत्कालीन जैन समाज की दुर्व्यवस्था, सामाजिक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है, वहीं उन्हें शिक्षित बनाने हेतु स्कूल, कॉलेज और गुरुकुल आदि खोलने, रूढ़िवादिता और कुरीतियों के त्यागने को भी कहा गया है। जैनों में पारस्परिक भेदभाव के बारे में भी उन्होंने अच्छी तरह फटकारा है, क्योंकि उस समय तक जैनों में दिगंबर, श्वेतांबर, तेरापंथी, बीसपंथी, बाईसपंथी, भट्टारक एवं श्रावक आदि कई संप्रदाय हो गए थे। बाल-विवाह, विवाहों में अपव्यय आदि का भी उन्होंने खूब डटकर विरोध किया। उनकी रचना 'जैन समाज-दिग्दर्शन' की तुलना भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'भारत-दुर्दशा' नाटक तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' से की जा सकती है। 'स्वाभिमान-रक्षा' में स्वाभिमान-रक्षा के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने स्वदेशाभिमान की भी शिक्षा देने का यत्न किया, जो उस समय विदेशी शासन में अत्यंत दुष्कर था।"

श्री धर्मेंद्रकुमार के इस कथन से स्पष्ट है कि द्विवेदी-युगीन सुधारवादी आंदोलनों का व्यापक प्रभाव न्यामतसिंह जी के मन-मस्तिष्क पर पड़ा था, जिसकी सम्यक् अभिव्यक्ति उनकी अधिकतर कृतियों में देखी जा सकती है। द्विवेदी-युगीन लगभग सभी प्रवृत्तियाँ उनके काव्य में भी स्पष्ट परिलक्षित होती हैं और इस अर्थ में वह उस युग के एक प्रतिनिधि और प्रभावशाली कवि सिद्ध होते हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि

न्यामतसिंह जी द्विवेदी-युग के अकेले जैन कवि हैं, जिन्होंने जैन काव्य-परंपरा को युगीन जीवन-यथार्थ से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया है।

अंत में, निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि बाबू न्यामतसिंह जैन का योगदान बड़ा विशिष्ट और व्यापक है। उन्होंने जैन समाज की सेवा और सुधार के लिए तो आजीवन समर्पित भाव से कार्य किया ही, हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने द्विवेदी-युग में प्रचलित लगभग सभी काव्य-शैलियों में सृजन किया; काव्य-नाटक विधा को लोकप्रिय बनाने में तो उनकी भूमिका सचमुच अन्यतम रही। हरियाणा में, साहित्य-विकास की दृष्टि से भी, उनकी महत्वपूर्ण भूमिका की कभी अनदेखी नहीं की जा सकती। उस युग में, जब हरियाणा के बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' आदि सभी बड़े साहित्यकारों ने बनारस, कोलकाता और मुंबई जैसे नगरों को अपना कर्मक्षेत्र बना लिया था, तब न्यामतसिंह जी ने, साहित्यिक दृष्टि से अपेक्षाकृत रूप से पिछड़े हिसार-हरियाणा में ही रहकर, साहित्य की अनवरत साधना की। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व, जब यातायात के साधन और मुद्रण की सुविधा नाममात्र की ही थी, तब उन्होंने, लखनऊ जैसे सुदूरवर्ती शहर से, अपनी बीस-बीस कृतियों का प्रकाशन करवाया। यह उनकी दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ-साथ साहित्य के प्रति उनकी सत्यनिष्ठा का भी प्रतीक और प्रमाण है।

– 571, सेक्टर-1, पार्ट-2, नारनौल, हरियाणा-123001

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

तीन दशक की समकालीन हिंदी आलोचना

डॉ. वी. रामकोटी

हिंदी आलोचना आज एक पर्याप्त विकसित विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। आलोचना एक विधा ही नहीं, कला और शास्त्र भी है। गत एक सदी में हिंदी आलोचना का व्यापक, गहन और बहुआयामी विकास हुआ है। हिंदी आलोचना मूलतः संस्कृत आलोचना का ही विस्तार, परिवर्धन व परिवर्तन है। पाश्चात्य आलोचना की वैज्ञानिक पद्धति ने हिंदी आलोचना को समृद्ध व पुष्ट किया है। भारतीय शास्त्रीय परंपरा का आवरण छोड़कर, हिंदी आलोचना ने यूरोपीय तथा अमरीकी आलोचना की बहुविध पद्धतियों और विचारसरणियों को आत्मसात् किया है। भारतीय आलोचना के सुचिंत्य छह संप्रदाय रहे हैं तो पश्चिमी साहित्य चिंतन की अत्यंत विविधतायुक्त विचार सरणियाँ या स्कूल रहे हैं। इन आलोचना प्रतिष्ठानों ने कई प्रकार की आलोचना पद्धतियों को जन्म दिया है। नृतत्वशास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं ने आलोचना को नया आलोक प्रदान किया है। आलोचना वस्तुतः व्यक्ति विवेक है जिसका सामाजिक दायित्व बड़ा गहरा होता है। रचना और आलोचना के अंतःसंबंध को समझना और रेखांकित करना रचनाकार और आलोचक दोनों के लिए हितकारी है। टी. एस. इलियट ने दोनों को एक ही व्यक्तित्व के दो आयाम माने हैं और कहा है कि "मेरी आलोचना मेरी कविता की कार्यशाला का सह उत्पाद है।" My criticism is the bi-product of my poetry work shop. आलोचना कवि की रचना पर स्वैच्छिक अंकुश लगाती है, क्योंकि सर्जक के भीतर बैठा आलोचक कवि को काटता-छाँटता रहता है। इसी कारण न केवल आलोचक, सर्जक लेखक सजग कलाकार होता है, प्रत्युत ऐसे सर्जनाशील लेखक की आलोचना भी सर्जनात्मक कृति बन जाती है। साहित्य जगत में सर्जनात्मक आलोचना शैली को आलोचना साहित्य में उच्चतर स्थान प्रदान किया जाता रहा है।

हिंदी साहित्य में ऐसी अनेक आलोचना कृतियाँ हैं जो सर्जनात्मक कृतियों के रूप में मील का पत्थर बन चुकी हैं। यह प्रक्रिया आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कृति 'त्रिवेणी' से आरंभ होकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'कबीर और डॉ. नामवर सिंह के 'दूसरी परंपरा की खोज' तक व्याप्त है। रचनाकार की रचना के भीतर तक जब आलोचक उतर जाता है, उसके भीतर डूब जाता है, रम जाता है, तल्लीन हो जाता है, तब वह कुछ ऐसे मोती लेकर बाहर आता है जिनसे स्वयं उसकी आलोचना प्रदीप्त और रसवंती हो उठती है। इस प्रकार की आलोचना से साहित्य-सर्जन में गुणात्मक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। आलोचना वही सार्थक, जीवंत व शाश्वत होती है जो अपनी ज़मीन से, अपनी संस्कृति से जन आकांक्षाओं, लोकमनोभावों और संघर्षों से जुड़ी होती है, जो जीवन के वैविध्य और जिजीविषा से स्पंदित होती है। इस वैविध्य से परंपराएँ, कला के विविध रूप और बदलते हुए जीवन के प्रतिमान स्वयं सिमट आते हैं। ये सारे तत्व आलोचना को पुष्ट बनाते हैं। आलोचना को व्यापक बनाकर उसे नई जीवन दृष्टियों की ओर उन्मुख करते हैं। मैथ्यू अर्नाल्ड एवं आई.ए.रिचर्ड्स ने आलोचक की भूमिका को रेखांकित करते हुए उन्हें समाज के स्वास्थ्य का संरक्षक, सुरुचि

का निर्माता तथा संस्कृति का निर्माता कहा है। यह सत्य ही है, यद्यपि हमें आज इस उक्ति में कुछ अतिशयता के दर्शन हो सकते हैं। एक सुरुचिपूर्ण समाज ही अपसंस्कृतिकरण का मुकाबला कर सकता है वरना अंतिम तीन दशकों में हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, इनमें से कतिपय सैद्धांतिक हैं तो कुछ अन्य व्यावहारिक। मुख्य रूप में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ के साथ पुस्तक-समीक्षा का स्तंभ सर्वत्र सामान्य हो गया है। प्रतिवर्ष साहित्य की विविध विधाओं की अनेकानेक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं जिनकी समीक्षा तुरंत छप जाती है। सामान्यतः ये समीक्षाएँ चलते किस्म की, परिचयात्मक व उथली होती हैं। जिनमें कृति की केवल खबर ली जाती है। उसका न तो गहन विश्लेषण किया जाता है न उसका साहित्यिक परीक्षण या मूल्यांकन किया जाता है। सूचनापरक समीक्षा ने गहन समीक्षा शैली को भी प्रभावित किया है।

गत तीस वर्षों में प्रकाशित आलोचनात्मक कृतियों पर दृष्टिपात करने पर कतिपय बातें स्पष्ट हो जाती हैं। ये कृतियाँ निम्न हैं- डॉ. बच्चन सिंह की- 1. आलोचक और आलोचना (1970) 2. आधुनिक आलोचना के बीज शब्द (1983) 3. साहित्य का समाजशास्त्र और रूपवाद (1984) 4. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन (1987) 5. कथाकार जैनेंद्र (1993)

इनमें से प्रथम चार पुस्तकें सैद्धांतिक हैं तथा जैनेंद्र के साहित्य पर केंद्रित समीक्षा व्यावहारिक है। हिंदी आलोचना में पाश्चात्य समीक्षा के प्रभाव से अमेरिकन न्यू क्रिटिसिज़्म, (नई आलोचना), संरचनावाद, रूसी रूपवाद, जर्मन सौंदर्यवाद, डी. कंस्ट्रशन, शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण जैसी फैशन परस्त समीक्षाएँ आईं, पर ये ज़्यादा दिन नहीं चली।

डी. कंस्ट्रशन का अर्थ लगातार जंगल में चलते रहना है- ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। संश्लिष्ट जीवनानुभव द्वारा कविता में भी संश्लिष्टता आती है। आलोचक का कार्य है कि संश्लिष्टता का उद्घाटन करें।

डॉ. रामस्वरूप चतर्वेदी ने, 'प्रसाद, निराला, अज्ञेय' सन् 1989 ई. में उक्त कवियों पर नए ढंग से विचार किया है। 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' (1991) में कतिपय मुख्य कवियों पर विचार किया गया है। इसी पुस्तक में डॉ. देवराज, नरेश मेहता, लक्ष्मीकांत वर्मा, डॉ. रघुवंश, कृष्ण बलदेव वैद, विपिन कुमार अग्रवाल, गंगा प्रसाद विमल आदि के उपन्यासों पर भी विस्तृत चर्चा की है। 'कविता का पक्ष' 1994 में, डॉ. चतुर्वेदी ने दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं- राजनैतिक आक्रामकता से कविता की रक्षा और सांस्कृतिक प्रदूषण। 'कविता के नए प्रतिमान' 1968 में प्रकाशित हुई जिसके केंद्र में ग. मा. मुक्तिबोध हैं।

डॉ. नामवर सिंह के मतानुसार विचारधारा कविता की शत्रु है। अनुभूति की प्रामाणिकता ही मुख्य बिंदु है। मैनेजर पांडेय ने भारतीय समाज और साहित्यिक परंपराओं की रचनात्मक धारा को जीवन मूल्यों से जोड़कर देखने की दृष्टि का विकास किया- उस पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से गंभीर विचार करने की शैली का विकास किया। 'शब्द और कर्म (1981)', 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' (1982) तथा साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका (1989) इन कृतियों के माध्यम से उन्होंने साहित्य के गंभीर विश्लेषण व अध्ययन की परिपाटी का विकास किया। आलोचना को वस्तुतः सभ्यता के विकास का लेखा-जोखा मानने वाले मैनेजर पांडेय के प्रिय इतिहास पुरुष-मुगल युवराज दाराशिकोह है- जिसे भारतीय इतिहास ने भुला दिया है। दारा ने 52 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया था- जिसका बाद में जर्मन, फ्रेंच तथा अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ।

दारा ने भाषिक-दार्शनिक तौर पर भारत को यूरोप से जोड़ने का कार्य किया था, जिसे बाद में सर विलियम जोंस, मैक्समूलर आदि ने किया। डॉ. नामवर सिंह की पुस्तक 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) तथा 'वाद-विवाद संवाद' (1989) को हिंदी समीक्षा का प्रस्थान बिंदु कहा जा सकता है। डॉ. श्यामसुंदर दास, लाला भगवानदीन, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाब राय, डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह आदि ऐसे आलोचक तथा समीक्षक हिंदी आलोचना साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। ये हिंदी आलोचना के आधार स्तंभ हैं। इसी परंपरा को परिपुष्ट बनाने और व्यापकता प्रदान करने में डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ.

रघुवंश, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. जगदीश गुप्त, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. शिवदानसिंह चौहान, डॉ. विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, ग. मा. मुक्तिबोध, सुमित्रानंदन पंत (पल्लव काव्य कृति की भूमिका) शमशेर बहादुर सिंह (चाँद का मुँह टेढ़ा है- ग. मा. मुक्तिबोध की काव्य कृति की भूमिका) डॉ. विद्यानिवास मिश्र, स.ही. वात्स्यायन अज्ञेय, डॉ. रमेशचंद्र शाह, डॉ. नंदकिशोर आचार्य, अमृतराय (कलम का सिपाही), राजेंद्र यादव, मलेश्वर, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, डॉ. चंद्रबली सिंह, डॉ. नित्यानंद तिवारी, डॉ. निर्मला जैन, प्रोफेसर कृष्णकुमार शर्मा, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. विजयबहादुर सिंह, डॉ. नंदकिशोर नवल आदि की विशिष्ट भूमिका रही है।

– प्राचार्य, अभ्युदय प्राच्य सांध्य महाविद्यालय, जियागुडा, हैदराबाद-500001

❑❑❑

प्रवाद पर्व : राम के लोकतंत्र की अभिनव प्रस्तुति

डॉ. दादूराम शर्मा

कविवर नरेश मेहता की सीता - निर्वासन के पुरावृत्त पर आधृत कृति 'प्रवाद पर्व' अपने भाषिक और वैचारिक औदात्य के कारण 'आर्षकाव्य' (ऋषिकाव्य) के गौरव की अधिकारिणी है। रंग-निर्देश और संवादयोजना के कारण इसे 'गीतिनाट्य' के अंतर्गत परिगणित किया जा सकता है, यद्यपि अत्यंत लंबे कपोपकथन (संवाद) इसकी अभिनेयता में बाधक हैं। इतिहास और प्रतिइतिहास में एकमात्र राम को ही मंच पर प्रस्तुत किया गया है, जिसमें केवल उन्हीं के अंतर्द्वंद्व का उद्घाटन हुआ है।

इस कृति का सर्वाधिक मूल्यवान तथ्य यह है कि इसमें भाषा अपनी संपूर्ण शक्ति, जीवंतता, सौंदर्य, औदात्य और संभावनाओं के साथ प्रस्फुटित हुई है और कवि ने इसके द्वारा आधुनिक काव्य पर लगाए गए पलायनवाद, दिशाहीनता आदि आरोपों को निरस्त कर डाला है। विचारों की उदात्तता, भावों की गहन आकुलता, चिंतन की सूक्ष्मता, भाषा की परिष्कृति, ध्वन्यात्मकता, व्यंग्यात्मकता एवं उद्दाम प्रवाह सहृदय अध्येता के मन को कुछ ऐसा बांध लेते हैं कि वह तल्लीन होकर पूरा काव्य पढ़ जाता है। इस काव्य की दूसरी बहुमूल्य उपलब्धि यह है कि इसमें रामचरित की सर्वाधिक विवादास्पद घटना 'सीता-निर्वासन' को सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसके अभी तक अनकहे तथ्यों को कवि ने वाणी दी है और अद्यावधि अछूते पहलुओं को नवीन विकसित दृष्टिकोणों से देखा और परखा है। काव्य की तीसरी उल्लेखनीय विशेषता है- रामचरित की इस अतीत कालीन घटना को सामयिक संदर्भों में ढालना।

काव्य का कथ्य- काव्य का कथानक बहुत ही संक्षिप्त है। दो रात और एक दिन में सारा घटना-चक्र घूम जाता हैं। सीता के प्रति प्रवाद के समाचार से राम की अंतर्व्यथा और मानसिक द्वंद्व, भरत, लक्ष्मण और मंत्रियों से मंत्रणा, सीता और राम का गंभीर विचार-विमर्श, मंत्रिपरिषद के अभिमत को लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत किया जाना किंतु राम का सीमा-परित्याग का अभूतपूर्व निर्णय और सीता-निर्वासन बस यही है इसकी संक्षिप्त कथावस्तु। कवि का मन स्पष्ट रूप से इस गीतिनाट्य में कथावस्तु में न रमकर इस घटना के महत्वपूर्ण बिंदु पर केंद्रित हो गया है और वह बिंदु है- 'प्रजातंत्र' जिसकी कील पर बड़ी क्षिप्रता से सारा घटना चक्र घूम जाता है। इस पुरावृत्त को भारतीय प्रजातंत्र के सामयिक संदर्भो (आपातकाल जून 1975 से मार्च 1977) में परिक्षेपित करने में कवि को सराहनीय सफलता मिली हैं सीता-निर्वासन की इस घटना में प्रजातंत्र और राजतंत्र या अधिनायकवाद, व्यष्टि और समष्टि, सामाजिक कर्तव्य और व्यक्तिगत वेदना तथा इतिहास और प्रतिइतिहास का द्वंद्व अपने चरम बिंदु पर विद्यमान है। इतिहास पुरुष के रूप में राम का व्यक्तित्व यदि सर्वोपरि है तो रावण के प्रतिऐतिहासिक व्यक्तित्व की ऊँचाई को भी कोई आज तक नहीं छू पाया है। जिसके कंधों पर समाज और राष्ट्र के उत्तरदायित्वों का जितना अधिक बोझ होता है उसका जीवन उतना ही निर्वैयक्तिक होता हैं। उसे

भाषा ISSN 0523-1418

अपना व्यक्तिगत जीवन जीने का न तो अवकाश रहता है और न ही स्वतंत्रता। राष्ट्रनायक के जीवन में तो वैयक्तिकता का कोई स्थान ही नहीं रहता। कर्तव्य कर्मों की अधिकता और उत्तरदायित्वों की बहुलता के कारण उसका जीवन हृदय को कचोटनेवाली विवशता और सर्वथा सूनेपन से भर जाता है। वह पत्नी को प्यार नहीं दे पाता, संतानें उसके वात्सल्य से वंचित हो जाती हैं और स्वजन उसके स्नेह के लिए तरसते रह जाते हैं। क्योंकि वह व्यक्ति होकर भी व्यक्ति नहीं रहता। निर्वैयक्तिकता ही उसका व्यक्तित्व बन जाती है और असंग कर्म उसकी नियति। सीता ने इतिहास पुरुष राम के व्यक्तित्व के विषय में कितनी उपयुक्त टिप्पणी की है–

लेकिन व्यक्ति वह कोई भी हो

उसे इतना अधिक सामाजिक नहीं होना चाहिए

कि वैयक्तिक क्षणों में वह एक सामाजिक समस्या लगे

और सामाजिक अवसरों पर वैयक्तिक मुद्रा।

और सचमुच, राम ने अपने व्यक्तिगत क्षणों को कभी भोगा ही नहीं। यही उनकी नियति रही। प्रत्येक इतिहास पुरुष की भी यही नियति होती है। जिसने स्वयं को समष्टि के लिए समर्पित नहीं किया और समष्टि को अपनी व्यष्टि का साधन बनाया, वह रावण की तरह प्रतिइतिहास पुरुष बन गया। लोककल्याण के लिए 'त्याग' इतिहास पुरुष के जीवन का लक्ष्य होता है तथा वेदना और कष्टों का वरण उसकी नियति। जबकि प्रतिऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य होता है 'भोग'–खाना, पीना, और मौज उड़ाना। उसके जीवन की अंतिम परिणति क्या होती है? यह बात और है। किंतु यह तो निश्चित है कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन के उपभोग से वंचित नहीं रहता।

इतिहास पुरुष बनने के लिए व्यक्ति को बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है, अपने समग्रजीवन और सुख–सुविधाओं को समष्टि के हित में उत्सर्ग कर देना पड़ता है। बाबा कबीर ने अलौकिक प्रेम के विषय में जो कहा है– "यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं। सीस उतारै भुइं धरै, सो पैसे घर माहिं" यही सब कुछ उस पर भी लागू होता है।

महत्वपूर्ण शब्दों की व्याख्या

इस गीतिनाट्य को पाँच अंकों (सर्गों) में विभाजित किया गया हे– 1. इतिहास और प्रतिइतिहास 2. प्रतिइतिहास और तंत्र 3. शक्ति : एक संबंध एक साक्षात् 4. प्रतिइतिहास और निर्णय और 5. निर्वेद विदा।

काव्य को समझने के लिए इतिहास, प्रतिइतिहास, तंत्र शक्ति, निर्वेद, असंग कर्म और नियति आदि शब्दों के मर्म को जान लेना अनिवार्य है।

1. इतिहास:– भूत में घटित हुई समाज को प्रभावित करने वाली या उसमें परिवर्तन लाने वाली घटनाओं और उन्हें संचालित करने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों के कार्य–व्यापारों का लेखा–जोखा ही इतिहास है। किंतु 'प्रवादपर्व' का कवि 'इतिहास' के अंतर्गत उन चरितनायकों के कार्यव्यापारों को परिगणित करता है, जिन्होंने समाज में महत्वपूर्ण सृजनात्मक भूमिका निभाई है। जिनकी विद्या दूसरों के मार्गदर्शन के लिए, धन दान (त्याग, परोपकार) के लिए तथा शक्ति दूसरों के संरक्षण और सृजनात्मक कार्यों के लिए होती है, वे इतिहास पुरुष कहलाते हैं। उनका जीवन निर्वैयक्तिक होता है अर्थात् उन्हें अपना व्यक्तिगत जीवन जीने की स्वतंत्रता नहीं होती। असंग (अनासक्त) और निर्मम (मोह–ममता रहित) कर्म करना ही उनकी नियति हैं उन्हें अपने विषाद के गरल को पीना पड़ता है, पत्नी के प्रणय को कुचलना पड़ता है। राम के शब्दों में इतिहास पुरुष का प्रारब्ध है "निर्मम और असंग कर्म करते रहना" (पृ. 19) साधारण मनुष्य को अपने जीवन में रागात्मिकताओं के निर्वाह के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता होती है। इसमें समाज के बाधक होने पर वह उससे विद्रोह कर सकता है। किंतु समष्टि के लिए समर्पित इतिहास पुरुष के लिए यह संभव नहीं। उसे अपना सब कुछ लोकाराधन के लिए उत्सर्ग करना होता है।

भवभूति के राम के शब्दों में– "स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि। आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति में व्यथा।।" (उत्तररामचरित) इतिहास पुरुष का मार्ग अंगारों का मार्ग है। किसी भी सामान्य जन के आक्षेप का उसे समुचित उत्तर देना होता है। उसका मार्ग प्रजा के संस्कार का मार्ग होता है, दमन या आतंक का नहीं। राम के शब्दों में –

"यदि एक अनाम साधारण जन की तर्जनी ने
सीता के चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाया है
तो उसे किसी राजाज्ञा के द्वारा इतिहास हीन कर देने की अपेक्षा
उस अनाम साधारण जन के इस वाणीविहीन प्रतिइतिहास के सम्मुख
अपनी विधि - मंडित ऐतिहासिकता की परीक्षा दो राम!" पृ. 32-33

समाज के लिए समर्पित इतिहास पुरुष को अपने जीवन में मिलता है विषाद, केवल विषाद! पृ. 65

इसे अपने व्यक्तिगत आनंद के उपभोग के लिए अक्सर और अवकाश ही कहाँ है? राम सीता से कहते हैं तुम्हें प्रत्येक बार चाहे वह विवाह हो या युद्ध पाने की चेष्टा में खोता गया हूँ प्रिये- पृ. 65

इतिहास पुरुष राज्य और न्याय से ऊपर नहीं होता-

राजभवनों और राजपुरुषों से ऊपर,
राज्य और न्याय को प्रतिष्ठापित होने दो भरत!
यदि वे तत्वदर्शी नहीं होते तो एक दिन,
निश्चय ही वे भय के प्रतीक बन जाएंगे,
और तब कौन इसमें प्रजा बनकर रहना चाहेगा?
पृ. 42

उसके जीवन में संघर्षो का कभी अंत नहीं होता। पृ. 58-59

2. प्रतिइतिहास - साधारण जनों की विवेकहीन प्रतिक्रिया की दास्तान, जिसके कारण इतिहास पुरुष के जीवन में अवांछनीय परिवर्तन उपस्थित हो जाए अथवा शक्ति संपन्न समाजोत्पीड़क निरंकुश शासन के कार्यव्यापारों का लेखा-जोखा प्रतिइतिहास है। इस दृष्टि से साम्राज्ञी सीता के चरित्र पर उंगली उठाने वाला अनाम साधारण जन (धोबी) और विश्व को अपने अमानुषिक कर्मों से पीड़ित करने वाले निरंकुश लंकेश्वर रावण को कवि प्रतिऐतिहासिक की संज्ञा देता है। पहले हम रावण को लेंगे।

1. रावण- वह अत्यंत तेजस्वी, प्रतापी और प्रकांड पंडित था। उसने तप से अलौकिक शक्तियाँ अर्जित कर ली थीं जिससे वह निरंकुश हो गया था। अपने आगे वह किसी को कुछ गिनता ही नहीं था। संपूर्ण धार्मिक-सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक बंधनों से मुक्त होकर वह उच्छृंखल हो गया था। उसके विशाल साम्राज्य में केवल उसी की वाणी मुखर थी, उसी के कठोर आदेशों की गूँज थी। समस्त प्रजा नतमस्तक होकर उसके समस्त उचित-अनुचित आदेशों का पालन करने को बाध्य थी। जगत्सृष्टा ब्रह्मा भी उसे वेद पाठ सुनाया करते थे। विद्याधर संगीत से उसका मनोविनोद करते थे, शिव स्वयं उपस्थित होकर उसकी पूजा ग्रहण करते थे। उसके राज्य में प्रजा नागरिक-अधिकारों से पूर्णतः वंचित थी।। वह गूंगी, निःसत्व और प्रतिक्रिया विहीन थी संपूर्ण शक्ति रावण के ही हाथों में केंद्रित थी, त्रिलोक को लूटकर उसने अपने कोश को समृद्ध किया था। इसीलिए लंका सोने की कहलाती थी। उसकी उत्पीड़क शक्ति को सावधान करने के लिए प्रतिरोध में उठा उसी के भाई विभीषण का हाथ मानो काट दिया गया था उसे देश निकाला दे दिया गया था। संक्षेप में, उसकी विद्या विवाद के लिए, धन मद के लिए और शक्ति दूसरों को सताने के लिए थी- "विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति : परेशा परिपीडनाय"

2. अनाम साधारण जन- कहा जाता है कि वह एक धोबी था जिसे कवि ने मानवीय स्वातंत्र्य, मानवीय भाषा और मानवीय अभिव्यक्ति का प्रतिइतिहास कहा हैं वह नासमझ है। स्वतंत्रता का सही अर्थ उसे नहीं मालूम। क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं, इसका उसे विवेक नहीं। किंतु वह इतना अवश्य जानता है कि राम-राज्य में पूर्ण प्रजातंत्र है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। राज्य के विशिष्ट, अति महत्वपूर्ण और शीर्षस्थ व्यक्ति पर भी वह खुले आम आक्षेप कर सकता है। सीता के निम्नांकित शब्द उस साधारण जन की निरीहता और अपनी श्रद्धास्पद उदात्तता को रेखांकित करते हैं-

यदि उस अनाम साधारण जन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्त किया है
तो राज्य, न्याय तथा आपको

उस अनाम प्रजा के विश्वास की

अभिव्यक्ति की रक्षा करनी चाहिए

लक्ष्मण की राय में उसे दंडित किया जाना चाहिए क्योंकि उसने राज्य की शीर्षस्थ नारी की गरिमा पर आक्षेप किया है, जो उसके अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का दुरूपयोग है। वे उसके कार्य को अनुत्तरदायित्वपूर्ण, अशोभनीय और असम्मानजनक कहते हैं। अनर्गल प्रलाप कहकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंक वह विश्वासपूर्ण विद्वेष है, एक सुनियोजित षड्यंत्र है। लक्ष्मण तो उसे 'राजद्रोह' तक कह डालते हैं और उसे समुचित दंड देने की सिफारिश करते हैं। किंतु राम की राय है- "मानवीय स्वातंत्र्य, मानवीय भाषा और मानवीय अभिव्यक्ति के प्रतिइतिहास का सामना वैसी ही मानवीय प्रतिगरिमा के साथ करना होगा लक्ष्मण!

"शक्ति का प्रयोग तो रावण जैसे प्रतिऐतिहासिकों के साथ ही किया जाना चाहिए, शक्तिहीन साधारण जन के साथ नहीं। उसके शक्ति-प्रयोग का अर्थ होगा-रावणत्व का वरण जनता का उत्पीड़न और उसमें आतंक का प्रसार।"

सीता का स्पष्ट अभिमत है- "आपको मुझे और इस राज्य को भी त्यागकर उस अकेले व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करना चाहिए। मैं या कोई भी राष्ट्र, न्याय और सत्य से बड़ा नहीं है। मेरी ओर से आपको सर्वथा आश्वस्त होना चाहिए आर्यपुत्र! कि आसन्न मातृत्व की इस संकट की स्थिति में भी मैं आपकी राज्यगरिमा और अपनी चरित्रमर्यादा के लिए कोई भी अग्नि परीक्षा दे सकती हूँ पर प्रजा के विश्वास की निर्भय अभिव्यक्ति की रक्षा अनिवार्य है। साधारण के इस नारायण को आर्यपुत्र न्याय के प्रतिनारायण की अपेक्षा है और मुझे भी!" पृ. 81

सीता, उन्हें अकारण लांछित करने वाले व्यक्ति को 'नारायण' कहकर और उसे प्रजा की निर्भय अभिव्यक्ति का प्रतीक मानकर अपनी वंदनीय सहिष्णुता और क्षमाशीलता का परिचय देती हैं और राम सचमुच उस प्रतिऐतिहासिक नारायण के विश्वास की रक्षा करके 'महानारायण' बनकर अपने भास्वर व्यक्तित्व से इतिहास को अद्भुत अभिनव आलोक से भर देते हैं।

राम-रावण-युद्ध का रहस्य- राम-रावण-युद्ध क्यों हुआ? कवि ने इस ज्वलंत प्रश्न को सर्वथा नवीन और विकसित दृष्टिकोण से देखा, परखा और हल किया है। नरेश मेहता के राम राजसभा में ये प्रश्न उठाते हैं-

1. क्या राम-रावण-युद्ध सीता प्राप्ति के लिए ही हुआ था?

2. क्या व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा अथवा प्रभाव-विस्तार की आकांक्षा से उन्होंने उस दुर्जेय शत्रु से लोहा लिया था?

3. क्या यह दो राज्यों के बीच पारिवारिक समस्या को लेकर लड़ा गया युद्ध था? यदि हाँ तो कोटि-कोटि नर-वानरों ने मेरा पक्ष-समर्थन क्यों किया था? राम के शब्दों में वह अन्याय के विरूद्ध न्याय का, आतंक के विरूद्ध निर्भयता का, पराधीनता के विरूद्ध स्वाधीनता का, मूक जड़ता के विरूद्ध अभिव्यक्ति का और विशिष्टता के विरूद्ध साधारणता का युद्ध था "अनाम लोगों और भयातुर प्रताड़ित प्रजा ने अपने स्वत्व, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और जीवन मूल्यों तथा आदर्शों के लिए प्राणार्पण किया था एक चक्रवर्ती के विरूद्ध साधारणता ने युद्ध का आवाहन किया था!" रावण का पराभव इस बात का प्रमाण है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही शक्ति संपन्न क्यों न हो, समष्टि, न्याय और सत्य से बड़ा बनकर अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकता। इतिहास कब प्रतिइतिहास बन जाता है- इस प्रश्न को कवि ने दो तरह से उठाया है-

1. रावण का चरित्र तब तक इतिहास रहता है जब तक वह सार्वभौम शक्ति संपन्न लंकेश्वर बना रहता है और संपूर्ण प्रजा उसका आदेश मानने के लिए बाध्य रहती है। किंतु, ज्योंही उसके अनाचार के विरोध में विभीषण की साधारणता की तर्जनी उठती है और वह उसे देश निकाला दे देता है और राम की संगठित प्रतिशक्ति उसके उन्मूलन के लिए खड़ी होती है, तभी रावण का व्यक्तित्व प्रतिइतिहास बन जाता है।

2. राम का वृत्त (चरित्र) पिता की आज्ञा पालन करने, पारिवारिक विघटन को रोकने, वन के अपार कष्टों का सहर्ष वरण करने, उत्पीड़ित ऋषिजनों को संरक्षण देने, रावणीय निशाचरता का उन्मूलन करने और

अयोध्या में वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना करने तक इतिहास रहता है। फिर उनकी ऐतिहासिकता को चुनौती देने के लिए, उसकी अग्निपरीक्षा के लिए एक साधारण जन की तर्जनी उठती है। यह बड़ा नाजुक अवसर है। राम राजा ही नहीं, मानव भी हैं। उनका भी अनुभूतिप्रवण संवेदनामय हृदय है जिसमें अनुराग है, वात्सल्य है और अनौचित्य के प्रति आक्रोश भी है। उनके राजकीय उत्तरदायित्व ही नहीं, पारिवारिक कर्तव्य भी हैं। सीता से उन्हें अगाध अनुराग है वे आसन्नप्रसवा हैं, राम के वात्सल्य को वे संतान को जन्म देकर प्रतिफलित करने वाली हैं। प्रसवकाल में नारी को विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर है सीता के चरित्र पर उठी हुई एक अनाम साधारण जन की उँगली! राम जानते हैं कि सीता निष्कलुष हैं। किंतु उस उठी उँगली की भी तो उपेक्षा नहीं की जा सकती। उपेक्षा का अर्थ होगा आक्षेप की मौन स्वीकृति। प्रवाद का प्रतिकार भी तो करना ही होगा। तो क्या प्रवादकर्ता को दंड दिया जाए? किंतु दंड देने का अर्थ होगा- प्रजा के अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर अंकुश लगाना, उसके विश्वास को विखंडित करना, प्रजा में आतंक फैलाना, राज्य में विशिष्ट और सामान्य के श्रेणीवाद या वर्गभेद को जन्म देना और राजा तथा राजपुरुषों को राष्ट्र, न्याय एवं सत्य से ऊपर मान लेना! यह सब प्रजातंत्र के विरूद्ध है। दंड का मार्ग राम के वृत्त को इतिहास से प्रतिइतिहास में बदल देगा। तब अपनी ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए राम को आत्मबलिदान करना होगा अपने अनुराण, अपने वात्सल्य, अपनी समग्र संवेदनाओं का उत्सर्ग करना होगा। समष्टि में अपनी व्यष्टि- सत्ता को विलीन करना होगा तभी वे इतिहास पुरुष बने रह सकते हैं। और सचमुच, राम और सीता ने ऐतिहासिकता का अभूतपूर्व एवं अभविष्यत्पूर्व मूल्य चुकाया है जिसकी मिसाल विश्व के इतिहास में कहीं नहीं मिलती।

3. तंत्रः तंत्र का अर्थ है शासन प्रणाली। 'प्रवादपर्व', में इसके तीन भेदों का उल्लेख है-

1. राजतंत्र 2. प्रजातंत्र और 3. निरंकुश तंत्र। राम और रावण दोनों के राज्यों में राजतंत्र तो है किंतु दोनों में एकदम भिन्नता हैं राम का राज्य वास्तव में लोकतंत्र या प्रजातंत्र है तो रावण का राज्य निरंकुश तंत्र राम के राजतंत्र (वस्तुतः लोकतंत्र) और रावण के राजतंत्र (वस्तुतः निरंकुशतंत्र) में अंतर- रामराज्य में विशिष्ट और सामान्य का भेद नहीं है। एक साधारण नागरिक भी राज्य की शीर्षस्थ नारी के चरित्र पर उँगली उठा सकता है। राम की दृष्टि में यदि किसी साधारण स्त्री के चरित्र पर उँगली उठती है तो मंत्रिपरिषद के उस प्रश्न को गम्भीरता से उठाने की बात तो दूर उस पर चर्चा तक न होती। तब सीता को लेकर इतनी ऊहापोह क्यों?

राम के शब्दों में- "लक्ष्मण हमारे इन राजसी कानों तक कभी किसी अनाथ नारी की असहाय अवमानना आई है? राज्य की यह आतुरता, कर्मठता केवल सीता या हमारे लिए ही क्यों?" पृ. 44-45 जबकि रावण राज्य में - "केवल उसी के पास वाणी, भाषा और आदेश थे जबकि शेष चराचर के पास झुके मस्तक और आज्ञा सुनते कान थे" पृ. 45

2. रावण आतंक का पर्याय था- एक अकेला स्वर्ण-सिंहासन और उस पर राज्य-भय के एक मात्र स्वर्ण प्रतीक सा बैठा हुआ शक्ति का महाउपासक एक सम्राट (पृ. 46) रामराज्य की पहली विशेषता थी 'निर्भयता'। भयातुर प्रजा ने भय की प्रतीक रावणीय शक्ति के विरुद्ध संगठित होकर और उस पर विजय पाकर निर्भयता का मुक्तातंकता के प्रतीक 'रामराज्य' का वरण किया था।

3. 'रामराज्य' में राज्य या न्याय से ऊपर कोई नहीं हो सकता था चाहे वह सर्वोच्च सत्ताधारी सम्राट ही क्यों न हो। राज्य और न्याय की दृष्टि में छोटे और बड़े सभी समान थे। राजा या राजपरिवार से संबंधों के आधार पर किसी का पक्ष नहीं लिया जाता था। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों या हितों की सिद्धि के लिए राजकीय साधनों का दुरूपयोग वर्जित था, जबकि रावणराज्य में सब कुछ इसके विपरीत था।

4. राम अपने राज्य को सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक बनाना चाहते हैं, जिसमें प्रत्येक नागरिक को निर्भय आत्माभिव्यक्ति का अधिकार हो, वह राजकीय नीतियों की आलोचना कर सकता हो, राजकीय आदेशों से असहमति व्यक्त कर सकता हो और यहाँ तक कि राज्य के शीर्षस्थ व्यक्ति के चरित्र पर भी उँगली उठा सकता हो। दूसरी ओर रावण का राज्य था, जिसमें उसके अनीति, अनाचार और उत्पीड़न के विरोध में

भाषा ISSN 0523-1418

अन्य साधारण व्यक्ति की कौन कहे, उसके अपने ही सगे भाई का उठा हुआ हाथ झुका दिया जाता है, उसे देश निष्कासित कर दिया जाता है, उसके समस्त पैतृक और राजनैतिक अधिकार छीन लिए जाते हैं। वहाँ सम्राट का अंधसमर्थन ही एकमेव कर्तव्य था। असहमति वहाँ राजद्रोह मानी जाती थी, जिसका दंड था मौत अथवा देश निकाला।

4. शक्ति - शक्ति को कवि ने दो अर्थों में लिया है- (क) नारी और (ख) मानवीय सामर्थ्य।

(क) नारी- नारी को भारतीय संस्कृति में 'शक्ति' की संज्ञा दी गई है। उसे सहचरी, अद्‌र्धांगिनी और सहधर्मिणी भी कहा गया है। उसके बिना पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं। संतानोत्तपत्ति और धर्मानुष्ठान दोनों को यज्ञ माना गया है। वह महादेवी सीता की ही शक्ति है, जो रामराज्य की आदर्श परिकल्पना को साकार करती है और राम के लोकाराधन के यज्ञीय अनुष्ठान प्रस्तुत करती हैं, आत्मबलिदान करके प्रजा के विश्वास को विखंडित होने से बचा लेती है और अग्निपरीक्षा देकर (स्वयं राज्य से निर्वासन स्वीकार करके) राम की राज्यगरिमा और अपनी चरित्र मर्यादा की रक्षा करती हैं। इस तरह सीता की चारित्रिक दृढ़ता ही उनकी शक्ति का साक्षात है जो न केवल अपनी अपितु राम की शक्ति को भी साक्षात (प्रकट) कर देती है। यही शक्ति का शिव से - नारी का पुरुष से अभिनंदनीय संबंध है।

(ख) मानवीय सामर्थ्य - राम की दृष्टि में मानवीय शक्ति नियति के आगे विडंबना मात्र है इतिहास-पुरुष की शक्ति की परिणति तो वैयक्तिकता के स्तर पर खंड-खंड होकर बिखर जाना है। साधारण पुरुष तो व्यक्तिगत जीवन जी सकता है, किंतु विशिष्ट व्यक्ति (इतिहास पुरुष) की नियति है संघर्ष, अनवरत संघर्ष। (पृ. 59) राजकीय सत्ता से पृथक या वंचित होकर ही मनुष्य साधारणता का वरण कर पाता है, जन साधारण के अभावों और दुख- दर्द से परिचित होकर उसके प्रति सहानुभूतिप्रवण हो पाता है। अपने 'वनवास' की महत्वपूर्ण उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए राम कहते हैं- "अत्यंत आभारी हूँ उस अदृष्ट का जिसके कारण पृथ्वी, पृथ्वी के अनाम असंख्य साधारण लोगों और उनके कष्टों भरे जीवन से परिचित हो सका।"

राजशक्ति में जहाँ यह साधारणता है, वहीं 'राम-राज्य' है जहाँ यह साधारणता नहीं, राजशक्ति जहाँ अहं से जुड़ जाए और उसका पोषण करने लगे, वहाँ वह आसुरी शक्ति बन जाती है।

5. निर्वेद - समस्त रागात्मक संबंधों से ऊपर उठ जाने या मुक्त हो जाने की दशा 'निर्वेद' कहलाती है। व्यक्ति उस दशा में सर्वथा अनासक्त, राग-द्‌वेष से पूर्णतः मुक्त, निर्लिप्त, निरपेक्ष और तटस्थ होता हैं 'गीता' में ऐसे ही व्यक्ति को- "अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनों गतव्यथः" कहा गया है निर्वेद का अर्थ "सामाजिक उत्तरदायित्वों या पारिवारिक कर्तव्यों से पलायन नहीं है अपितु इसका अर्थ है समस्त बंधनकारी रागात्मिकताओं से ऊपर उठकर 'लोक संग्रह' में प्रवृत्त होना। इतिहास अर्थ है समस्त बंधनकारी रागात्मिकताओं से ऊपर उठकर 'लोक संग्रह' में प्रवृत्त होना।" इतिहास पुरुष इसी निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर ही जन कल्याणकारी कार्य कर सकते हैं और सच्चा न्याय दे सकते हैं इसलिए राम की दृष्टि में राज्य के शीर्षस्थ व्यक्ति के लिए 'निर्वेद' का वरण अनिवार्य है-

"किसी के भाग्य का निर्णय आसक्त या पक्षधर बनकर नहीं

बल्कि, निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर ही

न्याय, निर्णय सबका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।" पृ. 54

6. निर्णय- निर्णय देने के पूर्व राम न्याय के कुछ आधारभूत सिद्‌धांतों और नीति निर्देशक तत्वों का निर्वचन करते हैं-

1. यदि वास्तविक प्रजातंत्र है तो उसमें नागरिक को अधिकारों की समानता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है। वह राजशक्ति पर भी प्रश्न चिह्न लगा सकता है। पृ. 29-30

2. प्रजा के किसी भी साधारण व्यक्ति द्‌वारा लगाए गए प्रश्नचिह्न का उत्तर राजाज्ञा (दमन, दंड या मनमाना कानून बनाकर उसे चुप कर देना) द्‌वारा नहीं, अपितु विधिमंडित ऐतिहासिकता द्‌वारा दिया जाना चाहिए। जिनके विरूद्‌ध ऊँगली उठाई जाती है, वे अपने उच्चतम त्याग द्‌वारा उस व्यक्ति की शंका का निवारण करें।

3. न्याय की दृष्टि में सामान्य और विशिष्ट का भेद नहीं होना चाहिए।

4. राज्य और न्याय संबंधों से ऊपर होते हैं।

5. राजा न्याय समग्र मानवता के विशाल परिप्रेक्ष्य में देखे। पृ. 41

6. न्याय को समदर्शी ही नहीं, तत्वदर्शी (निष्पक्ष) भी होना चाहिए। (पृ. 41-42) और यह तभी संभव है जब वह राजपरिवार और राजपुरुषों से भी ऊपर हो।

7. निर्वेद (अनासक्ति) की भूमि पर खड़े होकर भी मनुष्य निष्पक्ष होता है और सच्चा न्याय दे सकता है। पृ. 53

8. न्याय का लक्ष्य है मानवता की रक्षा। पृ. 95

9. राजकीय निर्णय से असहमति का अर्थ निरंकुशता, अराजकता या राजद्रोह नहीं है। पृ. 102 अंत में राम निर्णय देते हैं-

उस अनाम साधरणजन के आक्षेप का उत्तर

सीता त्याग के उदात्तचरित्र के द्वारा ही दे सकती हैं

अतः सीता कल सूर्योदय के साथ ही वनवास के लिए प्रस्थान करेंगी। पृ. 103-104

राष्ट्र की परिकल्पना और राजा-प्रजा के संबंध

राम के शब्दों में- "किसी की वैयक्तिकता नहीं, वरन् संपूर्ण की समग्रता ही राष्ट्र है" पृ. 96 तात्पर्य यह है कि प्रजातंत्रात्मक राष्ट्र (वस्तुतः जिस देश में प्रजातंत्र होता है, उसे ही 'राष्ट्र' कहते हैं, पराधीन देश को नहीं)। व्यक्ति समाज के लिए होता है, समाज व्यक्ति के लिए नहीं। समाज बड़ा है, व्यक्ति नहीं, वह राजा हो या सर्वोच्च सत्ताधारी व्यक्ति। व्यक्ति राष्ट्र नहीं होता। व्यक्ति की सत्ता काल सापेक्ष है एक निश्चित आयु के बाद उसका भौतिक अस्तित्व मिट जाता है किंतु राष्ट्र चिरंतन है अमर है। राजा बड़ा नहीं, प्रजा बड़ी होती है। राजा और प्रजा के संघर्ष में विजय प्रजा की ही होती है। राम यह ज्वलंत प्रश्न उठाते हैं-

"क्या मंत्रिपरिषद का अभिमत है कि मैं या सीता राष्ट्र हैं?"

"नहीं, अधिपति होने का अर्थ राजा तो है, पर राष्ट्र नहीं।" पृ. 98

वही राष्ट्र महान समुन्नत और स्थाई बनता है, जिसका सर्वोच्च व्यक्ति स्वेच्छा से समस्त ऐश्वर्यो को त्याग कर साधारण मानव का जीवन स्वीकारता है, धरती से जुड़ता है, कुटिया में रहता है। तभी वह सच्चे अर्थो में राजा (राजा प्रकृति (प्रजा) रंजनात्) और लोकनायक बनता है और उत्कृष्ट मानवीय गुणों (ऐश्वर्य) से युक्त 'ईश्वर' बनता है। पृ. 96

राष्ट्र के अस्तित्व को सुरक्षित रखने और उसके वर्चस्व को बढ़ाने के लिए प्रत्येक नागरिक को अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है। जो जितना बड़ा होता है, उसकी परीक्षा भी उतनी ही कठिन होती है। 'रामायण' का प्रत्येक पात्र अग्निपरीक्षा देता है-

1. महाराज दशरथ ने आदर्श पितृत्व और वचन की रक्षा के लिए मरण स्वीकार किया था। पृ. 99

2. लक्ष्मण ने आदर्श अनुजत्व की स्थापना हेतु स्वेच्छा से वल्कल धारण किया था। पृ. 99

3. भरत ने स्वयं निर्वासन स्वीकारा था, भोगों के बीच योगी बनकर संयम और अनुशासन अपनाया था।

4. माताओं और वधुओं ने भी अग्नि परीक्षा दी थी।

5. अयोध्या की जनता ने तो बिना राजा के चौदह वर्षों तक राज्य संचालन में सहयोग देकर आत्मानुशासन का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया था। पृ. 99-100

6. राम के नेतृत्व में वानरों और विभीषण की समवेत सेना ने रावण की प्रतिऐतिहासिक शक्ति के विरूद्ध युद्ध करके अग्नि परीक्षा दी थी। पृ. 100

प्रजातंत्र में राजा/ शीर्षस्थ व्यक्ति का व्यक्तित्व- प्रजातंत्र में राजा अथवा सर्वोच्च शासक को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है और वह अग्नि परीक्षा है अपनी वैयक्तिकता का समष्टि के लिए संपूर्ण विसर्जन। राम और सीता का समग्रजीवन निर्वैयक्तिकता का निदर्शन है।

'प्रवादपर्व' में राम का व्यक्तित्व- 'रामराज्य' प्रजातंत्र का सच्चा और अद्वितीय प्रतीक है और राम प्रजातंत्र के सच्चे प्रतिनिधि, जन-आकांक्षाओं के यथार्थ

संवाहक, जनता के चरित्र के प्रेरक, जन-हृदय के संस्कारक तथा सच्चे लोकनायक हैं वे भारतीय किंवा मानवीय संस्कृति के ज्योति-स्तंभ हैं, व्यष्टि और समष्टि के अनुकरणीय आदर्श हैं। उनके व्यक्तित्व के निम्नांकित बिंदु दृष्टव्य हैं-

1. निर्वैयक्तिकता- उन्हें कभी व्यक्तिगत जीवन जीने का अवकाश ही नहीं मिला। ममता रहित और अनासक्त कर्म करना ही उनकी नियति रही। उनका सर्वस्व समष्टि के लिए था, लोकाराधन के लिए था। सीता-त्याग राम की निर्वैयक्तिकता का चरम बिंदु है। कवि ने सीता द्वारा बड़े ही मार्मिक शब्दों में राम की निर्वैयक्तिकता को रेखांकित कराया है-

"आपमें कब वैयक्तिकता थी आर्यपुत्र।"

"किस दिन हमने नितांत वैयक्तिक जीवन जिया?"

"इतिहास ने यज्ञपुरुष को कब एकांत दिया?"

"राजभवनों में व्यक्ति नहीं, इतिहास-पुरुष चला करता है आर्यपुत्र।"

"और मार्गों, वनों, तपोवनों में यज्ञों और ऋषियों का रक्षक।" पृ. 78-79

2. सतत् संघर्षशीलता- निरंतर प्रतिकूलताओं से जूझना राम के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है। उनके जीवन में संघर्षो का कभी अंत ही नहीं होता। एक से जूझकर और विजयी होकर वे दूसरे संघर्ष के भँवर में फंस जाते हैं। तट उन्हें मिलता ही कहाँ है? सीता के शब्दों में-

समुद्र को बाँधने से भी बड़ा था

रावण के विरूद्ध जनमत तैयार करना और उससे भी कहीं अधिक दुष्कर था।

रावण के विरूद्ध उसे एक प्रतिइतिहास- शक्ति के रूप में निर्णयात्मक स्थिति में खड़ा कर देना। पृ. 77

3. निष्पक्षता और न्यायप्रियता - निर्वैयक्तिक होने के कारण राम पूर्णत: निष्पक्ष हैं। वे विशुद्ध मानवतावादी हैं। उनकी दृष्टि में सभी नागरिक समान हैं। विशेष और सामान्य का भेद वे नहीं मानते। राज्य के उच्च पदों पर रहना अधिकारों के उपभोग के लिए नहीं, कर्तव्यों की कठिन अग्निपरीक्षा के लिए होता है- "राज्य या न्याय, राष्ट्र की इच्छा, आशा- आकांक्षा, सम्मान और गरिमा के प्रतीक होते हैं न कि किसी व्यक्ति विशेष के" पृ. 96

4. पूर्ण प्रजातंत्र के संमर्थक- वे अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षधर है। अनर्गल या अनुत्तरदायित्वपूर्ण कथन भी उनकी दृष्टि में क्षम्य है। असहमति को वे उचित मानते हैं किंतु कायरतापूर्ण सहमति को वाणी का दोष और दुरूपयोग। एक व्यक्ति के मत का भी, भले ही वह व्यक्ति बिल्कुल साधारण हो और उसका मत राजसत्ता के विरुद्ध हो, राम समादर करते हैं। शंका का उत्तर निर्भयता द्वारा देकर वे जनता को आतंक से मुक्त रखते हैं। राम की राजनीति दंडनीति नहीं, संस्कार नीति है जिससे दंड के स्थान पर क्षमा को, परिग्रह के स्थान पर त्याग को, और अधिकार के स्थान पर कर्तव्य को एकमात्र स्थान मिला है। जिस शासन में ऐसी स्थिति होगी, वही पूर्ण प्रजातंत्र होगा।

सीता का व्यक्तित्व- सीता नारी-गौरव की जीवंत प्रतिमा है। यदि मानवता ने राम जैसे अपूर्व महामानव को पाया था, जिसके सम्मुख ईश्वरत्व भी विनत था तो सीता जैसी महान नारी को पाकर यह धरित्री धन्य हो गई। किंतु, सीता को जितनी भीषण अग्निपरीक्षा देनी पड़ी, बार-बार इतिहास-दग्ध होना पड़ा, उतना शायद किसी को भी नहीं। व्यथा-वेदना के भँवर से वे वैवाहिक जीवन से लेकर रसातल-प्रवेश तक कभी छुटकारा न पा सकीं।

1. साकांक्ष नारीत्व- सीता ने निर्वैयक्तिक इतिहासपुरुष एवं यज्ञपुरुष का वरण किया था। राम के पास उनसे प्रणय निवेदन करने, स्नेहालाप करने या उनके अनुराग को स्वीकारने का समय ही कहाँ था? पिता की सहायता में विविध राजकीय उत्तरदायित्वों में व्यस्त राम जीवन के प्रारंभ में भी, जबकि सद्य: परिणय-सूत्र में बँधे दंपती परस्पर प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए आतुर रहते हैं, प्रेमाकुल समर्पण न कर पाए। उन्हें वनवास में एकांत मिला अवश्य किंतु वहाँ भी यज्ञ-पुरुष आर्य संस्कृति का प्रतिक्षण संरक्षण, संवहन और प्रसार करता रहा।

2. त्याग की भूमा का वरण- राम राज्य की संपूर्णता और उसकी परिकल्पना सीता के त्याग पर ही टिकी है। आसन्न मातृत्व की स्थिति में भी वे स्वेच्छा

से राजमाता के स्थान पर असंरक्षित वनवासिनी होना स्वीकार करती है। उनका त्याग यहाँ राम से भी कई गुना ऊँचा उठ जाता है। वाल्मीकि, कालिदास या भवभूति की सीता की तरह 'प्रवाद पर्व' के राम उन्हें तपोवन का दर्शन कराने का बहाना बनाकर लक्ष्मण के साथ नहीं भेजते अपितु वे स्वयं लोकाराधन के लिए स्वेच्छा से निर्वासन स्वीकार करती हैं-

"आसन्न मातृत्व के इस संकट की स्थिति में भी मैं आपकी राज्यगरिमा और अपनी चरित्र मर्यादा के लिए कोई- सी भी अग्निपरीक्षा दे सकती हूँ।" पृ. 81

3. सहिष्णुता और क्षमा की जीवंत मूर्ति - एक साधारण व्यक्ति का असहनीय आक्षेप भी उन्हें किंचित् भी विक्षुब्ध नहीं करता। वे लोकमत की सच्ची संवाहिका हैं-

यदि उस अनाम साधारण जन का विश्वास है
जिसे उसने निर्भय अभिव्यक्ति दी है
तो राज्य, न्याय तथा आपको
उस अनाम प्रजा के विश्वास की
अभिव्यक्ति की रक्षा करनी चाहिए।

4. सीता की स्थिति और नियति- सीता स्वयं को पृथ्वी और राम को आकाश से उपमित करती हैं। दोनों क्षितिज पर मिलते हुए से दिखाई देने पर भी मिलते नहीं-

"एक सीमा तक ही पृथ्वी ऊर्ध्वगामी हो सकती है और ऊर्ध्ववैराट्य कितना ही विनम्र, आसक्त और कृपावान् हो जाए क्षितिज पर पहुँच कर फिर असंग-अनासक्त नील आकाश हो जाने के लिए बाध्य है।"

5. सीता का दैन्य - निम्नांकित शब्दों में सीता के दैन्य और हाहाकार साकार हो उठे हैं-

"आर्यपुत्र! आरंभ से ही मुझे इसकी प्रतीति थी कि मुझे इतिहास और इतिहास - पुरुष के पार्श्व में केवल एक प्रतिमा-सी खड़ी होना है।" पृ.71

वस्तुतः वे एक निर्जीव पाषाण या स्वर्ण की प्रतिमा की तरह नहीं, जीवंत ज्योति स्तंभ की तरह राम के लोकाराधन के पथ को प्रकाशित करती रही हैं।

रामकाव्य परंपरा में प्रवाद पर्व का स्थान और महत्व-

'सीता-प्रवाद' और सीता-निर्वासन को सर्वथा मौलिक और अभिनव दृष्टिकोणों से देखने परखने और सामयिक संदर्भों में रूपायित करने के कारण यह काव्य रामकाव्य-परंपरा में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। भाषा की परिष्कृति और सशक्तता, चिंतन की सूक्ष्मता, विचारों की गहनता और ऊर्ध्वगामिता तथा प्रजातंत्र की अवधारणा को अभिवन आलोक से अनुप्राणित करने के कारण साहित्य-कोश की यह बहुमूल्य के आरोपों से मुक्त कर दिया है। इसने जहाँ एक ओर सहृदयों के हृदय में काव्य के प्रति अभिनव आशा का संचार किया है, समाज और राष्ट्र के कर्णधारों को चिंतन तथा आचरण की नई दिशा दी है, वहाँ दूसरी ओर साहित्यकारों को वर्तमान चुनौतियों का वीरता और साहस से सामना करते हुए रचनात्मक भूमिका निभाने की भी प्रेरणा दी है अतः 'प्रवाद पर्व' के प्रणयन को साहित्य के इतिहास की एक उल्लेखनीय घटना कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी।

आज के स्वार्थ परायण, सत्तालोलुप, उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीन, प्रमादी और तंद्रिल राजनेताओं की आँखें नपुंसक आक्रोश और बंध्या खीझ के प्रदर्शन से नहीं खुलेंगी, उन्हें तो ऐसी ही हृदय को मथ देने वाली ओजस्वी वाणी की आवश्यकता है, जो उच्च स्वर में पुकार रही हो- "राजनीति को मजाक समझकर सत्ता हथियाने के लिए आगे बढ़ने वाले राजनेताओ! सावधान! प्रजातंत्र में सत्ता सुख का साधन नहीं है, उसमें तो बस एक ही स्वर बजता है विषाद का! अपनी वैयक्तिकता को समष्टि के लिए विसर्जित कर सको तो अपना मस्तक (व्यष्टि सत्ता, स्वार्थ, अहंकार, सत्तासुख की चाह) अपने हाथ में लेकर इस भवन में प्रवेश करो-

सीस उतारै भुँइ धरै सो पैसे घर माँहि! - कबीर

– महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661

❑❑❑

अ-कश्मीरी भाषी हिंदी कवियों की रचनाओं में विस्थापन की सहसंवेदना

डॉ. महाराजकृष्ण भरत 'मुसा'

एक सर्वविदित कथन है कि जो तन लागि, सो तन जानें, पीर पराई न जाने कोय। दूसरों के दर्द की मर्मांतक पीड़ा को कोई भोग तो नहीं सकता, पर उसे महसूस कर उसके दुख दर्द में सहभागी बन सकता है। कभी यह सह संवेदना आदि कवि वाल्मीकि के मन से तो स्वत: ही फूट पड़ी थी, जब एक निषाद ने क्रौंच पक्षी के एक जोड़े को सदैव के लिए एक-दूसरे से विलग कर दिया था। यद्यपि यहाँ संदर्भ अलग है पर वेदना या बिछोह की तड़प पक्षी की हो या मनुष्य की, उसे संवेदनशील रचनाकार अपनी गहन अनुभूति से तो व्यक्त कर ही रहा है, पर प्रश्न तो केवल इतना भर है कि क्या एक रचनाकार भाषा और राज्य की सीमाओं को लांघकर अपनी संवेदनाओं के 'घर' में कश्मीर की उस मानवीय त्रासदी को स्थान दे पाया है, जिसने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में आतंकवाद और अलगाववाद की विषैली होती हवाओं में जन्म लिया था? जब अपने पैतृक घरों से एक समूल जाति का निष्क्रमण हुआ था, जातीय नरसंहार की वीभत्स घटनाओं ने कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत को छिन्न-भिन्न कर दिया था, आपसी प्रेम, सांप्रदायिक सौहार्द की भावनाएँ आहत हुई थीं। क्या तब यह चीत्कार क्रौंच पक्षी के वध की तरह एक अकश्मीरी भाषी रचनाओं में उसी तीव्रता के साथ सुनाई दी थी, जैसे इस दर्द को घाटी से निष्कासित विस्थापित कश्मीरी रचनाओं ने अभिव्यक्ति दी थी? पर साहित्य की अपेक्षाओं के अनुसार ऐसी सह संवेदना की तीव्र अनुभूति का प्रस्फुटन नहीं हो पाया था। इतना अवश्य है कि अपने समुदाय के साथ निष्कासित हुए रचनाकारों ने अपनी वेदना को साहित्य की अनेक विधाओं में अभिव्यक्ति दी है वहीं अकश्मीरी भाषी रचनाकारों द्वारा इस महात्रासदी की घुटन का अनुभव कम ही आंका गया।

हिंदी के जाने-माने साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र का यह कथन कितना सटीक है कि "हम तो उतना कुछ लिख नहीं पाते, जितना कि एक भुक्त भोगी। दूर रहकर हम तो केवल सहानुभूति ही प्रकट कर सकते हैं।" 'भुक्तभोगी' से उनका तात्पर्य कश्मीरी विस्थापित रचनाकारों से था। डॉ. मिश्र के दस से अधिक कविता संग्रह हैं पर आतंकवाद और विस्थापन पर जिन कविता संग्रहों में कुछ कविताएँ पढ़ने को मिली; वे हैं- 'जुलूस कहाँ जा रहा है?' (सन् 1989, प्रभात प्रकाशन दिल्ली), आग कुछ नहीं बोलती (सन् 1992, इंद्रप्रस्थ, दिल्ली) तथा 'बारिश में भीगते बच्चे (सन् 1996, वाणी प्रकाशन, दिल्ली)। उनके प्रथम दो संग्रहों में आतंकवाद की विषबेल के परिप्रेक्ष्य में लिखी गईं कविताएँ हैं, तथा 'बारिश में भीगते बच्चे' में विस्थापन की महाविपदा और घर के बिछुड़न की टीस है।

'बारिश में भीगते बच्चे' संग्रह की एक चर्चित कविता है- 'घर जल रहा है।' कश्मीर की ज्वलंत स्थिति पर केंद्रित इस कविता में कवि का आक्रोश मन कह उठा है-

लेकिन हमारा तो घर जल रहा है
जलते हुए अपने घरों से भागकर
हम आ गए हैं इस अजनबी बस्ती में
और मुड़-मुड़कर, सहमी निगाहों से
अपने घरों का जलना देख रहे हैं
तुम क्या समझो हमारे रहनुमा

कि घरों का जलना क्या होता है।

उक्त कविता के माध्यम से कवि ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि कश्मीर किसी के लिए वोट बैंक का विषय हो सकता है,

पर्यटकों के लिए पर्यटन का केंद्र, जहाँ सभी अपनी-अपनी योजनाओं में खोए हुए हैं लेकिन कवि के लिए कश्मीर का जलना अपने घर के जलने जैसा ही है। 'घर' के बारे में कवि अत्यधिक संवेदनशील है, चिंतित है, क्योंकि उसे डर है कि इस विस्फोटक वातावरण में कुछ भी घट सकता है। 'घर' नामक कविता में कवि घर की रूपरेखा, परिवार-संबंधियों की भावनाओं को भांप कर एक असुरक्षित भविष्य को घटते देख रहा है-

हाँ सदियों से बना है यह घर
लेकिन क्या होगा इस घर का?
मैं सोच में डूब जाता हूँ
जब कहीं भी सुनता हूँ
किसी स्वेच्छाचारी इच्छा का बारूदी अट्टहास
सदियों को समाप्त होने में मिनट भी नहीं लगेगा।

फिरन के परिधान के भीतर कांगड़ी के अंगारों के ताप से जीवन जीने की आस मिलती है, जब कश्मीर में शीतकालीन वातावरण में बर्फीली हवाओं से ठंड का प्रकोप बढ़ने लगता है। लोग घरों में ही दुबके पड़े रहते हैं जब बाहर का रुख भी करते हैं तो कांगड़ी ही जीवन में रस घोलती है। कांगड़ी के इन अंगारों में जहाँ ठंड से लोहा लेने की शक्ति है वहीं इसके बुझते हुए अंगारों में जीवन की शून्यता भी समाई हुई है। अपने घरों को छोड़ आए कश्मीरी विस्थापित समुदाय के जीवन में वह आशाओ की तपन गुल है अब तो उनकी व्यथा कांगड़ी की राख की तरह उपेक्षित होकर रह गई है। 'बुझते अंगार' कविता में डॉ. जगदीश गुप्त भी विस्थापितों की राख होती आशाओं की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-

कांगड़ी के भीतर
अंगारे बुझ गए हैं।
राख ही राख शायद रह गई है
अपने ही देश में
विस्थापित लोगों की
मर्मव्यथा कौन कहे?

आतंक और अलगाववाद के कारण विस्थापित हुए समुदाय के दर्द को आत्मसात किए हुए हिंदी के मूर्धन्य कवि डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया 'आतंक' नामक कविता के माध्यम से आतंक का समाधान खोज रहे हैं-

आतंक के सारे बीजों
जड़ों
कलमों को
अग्नि के हवाले कर
अभी मुझे ढूँढना है
आतंक का हल
अभी मेरा ज़मीन खोदना जारी है
अभी मुझे ढूँढना है
आतंक का हल।

डॉ. निदारियाँ ने जहाँ तपस्वी निश्चल चिनारों, शांत डल और खिलती हरियाली की बात कविताओं में की है वहीं 'घाटी में कर्फ्यू' कविता में बदलती हवाओं की भी बात की है, जिसने केसरिया क्यारी को रक्त रंजित कर दिया। इसी बदलते परिदृश्य ने घाटी से एक समुदाय को पलायन करने पर विवश कर दिया। कवि कमलेश वैद्य सीधे विस्थापित बस्तियों की ओर ले जाते हुए अपनी कविताओं में विस्थापितों की मर्मव्यथा से परिचित कराते हैं। 'शरणार्थी लड़की' कविता में पापा का रात गए उधेड़बुन में रहना इस बात का द्योतक है कि लोगों की ज़िंदगी अभावों की लंबी सूची बन गई है:

पापा टैंट में अक्सर
देर रात गए ही लौटते हैं
वे हमेशा
उधेड़ बुन में खोए रहते हैं-
किसी पागलखाने के मरीज़ की तरह
अनवरत, निर्लक्ष्य चिंतित
पारस-मणि खोजते से।

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से 'हमारा अपना कश्मीर' नामक पुस्तिका का प्रकाशन 1995 में हुआ जिसका संपादन डॉ. भुवनेश्वरी त्रिपाठी ने किया था। कश्मीर की ज्वलंत परिस्थितियों की ओर चेताती हुई कवयित्री डॉ. त्रिपाठी कह उठती है-

आज धरा का नंदन कानन, बहा रहा दृग नीर।
शीश कटा जाना हिमगिरि का, सजग रहो बलवीर।।
केसर की क्यारी में बैठा, घुसकर तस्कर जोर।
त्राहि-त्राहि का मचा हुआ है, चहूँ दिशि भीषण शोर।।

भाषा ISSN 0523-1418

विशालकाय 'चिनार' को जब स्थानीय कश्मीरी भाषा में 'बून्य' कहकर संबोधित किया जाता है तो यह 'बून्य' आस्था का प्रतीक बन जाती है अर्थात् 'बून्य' से 'भवानी' और जब चिनार का छतनार साया पर्यटकों का मन मोह लेता है तो कश्मीर की सुंदरता का प्रतिरूप बन जाता है। 'चिनार' कविता में कवि नरेंद्र मोहन 'वायसराय' की आँख का दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं–

अब कहाँ है वायसराय की आँख
क्यों नहीं लद जाता सुर्ख फूलों से?
एक बात बताओ
क्या तुम हँस सकते हो
एटम में
सदियाँ बिताने के बाद।

'आतंकी से' नामक कविता कवयित्री आशा रानी व्होरा द्वारा रचित कविता संग्रह 'रहे प्रकृति अनल सुहागन' में संकलित है। 'कवयित्री' 'आतंकी से' ईश्वर के खौफ से चेताना चाहती हैं–

पर कहना चाहती हूँ कि
पहचान पाने या नाम कमाने का
बेहतर रास्ता तुम्हें क्यों नहीं मिला?
आत्मा की आवाज़ न सही
खुदा के खौफ से भी
तुम्हारे भीतर कुछ क्यों नहीं हिला?

विस्थापितों के प्रति अपनी सहसंवेदना प्रकट करते हुए कवि मज़हर अहमद खान अपनी भावनाएँ यूँ व्यक्त करते हैं–

सभी व्याकुल, पीड़ित, आतंकित।
इस आतंक से आतंकित
समस्त जीव जंतु
छोड़-छाड़ अपना आशियाना
निकल पड़े हैं
अनजान दिशाओं की ओर।

कवि खान 'सपने उगते हैं' में आतंकवाद के कारण ढहते हुए सपनों की ओर संकेत कर रहे हैं:–

कब, कहाँ से फट जाता है–
सहसा रक्तवर्णी आतंक का सूरज
उगलता रक्त की चिंगारियाँ
घोटता गला
मसलता, गदराई हँसी।

केंद्र शासित जम्मू कश्मीर में डोगरी भाषी कवियों ने विस्थापन की टीस का अनुभव अधिक निकटता से किया है, क्योंकि कश्मीर से विस्थापित हुए लोगों की वेदना के वे प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। पदम्श्री डॉ. जितेंद्र उधमपुरी, सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम्', मनोज शर्मा, रमेश मेहता, निर्मल विनोद आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ. जितेंद्र उधमपुरी के काव्य संग्रह 'दे दो एक बसंत' की अधिकांश कविताएँ आतंकवाद और विस्थापन पर केंद्रित हैं। 'पहचान' नामक कविता में कवि भटके हुए नवयुवकों से पहने हुए मुखौटों के बारे में बात करता है, कवि को आशा है कि एक दिन यह मुखौटे अवश्य ही उनके चेहरों से उतरेंगे और उनकी पहचान होगी–

लगाते-लगाते
अपने चेहरों पर चेहरे
तुम अभी थके नहीं हो
जारी है अब भी तुम्हारी
अंधेरे की यात्रा
× × ×
कल, तुम्हारी पहचान
अवश्य लौटेगी।

'दे दो एक बसंत' और 'मेरी आवश्यकता' नामक कविता में कवि घाटी के प्रमुख स्थलों की याद में डूबा है। उसे हज़रत बल पर सजदा और शंकराचार्य की एक झलक की आवश्यकता है। उसकी चाह सांप्रदायिक सौहार्द को फिर से स्थापित करने की है, जिसे व्यापक अर्थों में देखा जाना चाहिए।

लगभग आठ कविता संग्रहों के रचयिता सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम्' '25 अक्तूबर 1993' शीर्षक कविता में अपने मित्रों, सहयोगियों की झलक देख पाने को लालायित हो उठते हैं। उक्त कविता उनके लघु कविता संग्रह 'गीत हो कोई' में संकलित हैं–

और देख पाँऊ:
'चमन लाल सप्रू' को चिंतन करते
'रतन लाल शांत' को करते मनन
हरि कृष्ण कौल की होगी
नई कहानी की तलाश
अग्निशेखर भी कुछ वाजता होगा....

वरिष्ठ साहित्यकार रमेश मेहता कश्मीर के सन्नाटे को 'भविष्य' कविता में यूँ अभिव्यक्त करते हैं–

सहमी हुई हवा
रुक-रुक कर कदम रखती
एक घर से दूसरे घर की
दूरी नाप रही है।

मासिक 'कोशुर समाचार' में प्रकाशित कश्मीर' नामक कविता में कवि रमेश महेता भ्रम की स्थिति से दूर रहना चाहते हैं-

सब वैसा ही है तो फिर
स्मृतियों में क्यों नहीं कौंधते
लहराते हुए लाल गुलाब

आतंकवाद की दहशत का बिंब उतारते व ख्यात नाम साहित्यकार निर्मल विनोद कह उठते हैं-

द्वार बंद, खिड़कियाँ बंद हैं
होंठ बंद,
बस, खुले हैं कान
दीवारों पर इश्तिहार हैं
गलियों में दहशत का राज

द्विमासिक शीराजा के अक्तूबर-नवंबर 1993 के अंक में प्रकाशित कवि मनोज शर्मा की 'बेटी' नामक कविता मार्मिक हो उठी हैं। कवि विस्थापित बस्ती में राशन की कतार में खड़ी विस्थापित युवती की मनोदशा का चित्रण करते हुए कहता है कि यह सच है कि आज वह बेघर है, लेकिन उसकी सांस्कृतिक विरासत उसमें रची-बसी है-

बेघर होने के बावजूद
नहीं हुई हैं यादें बेघर
बेघर नहीं हुई त्योहार मनाने की उमंग
नहीं छूटा
एक सांस में दौड़कर
टीला चढ़ने की शर्त का रोमांच।

कश्मीर के विस्थापन और आतंकवाद के प्रभाव से प्रभावित मानवीय त्रासदी पर कविता रचने वाले और भी अनेक रचनाकार हो सकते हैं, पर जो रचनाएँ उपलब्ध हो पाई हैं, हम केवल उनका ही आकलन प्रस्तुत कर सकते हैं। कभी कवि धूमिल ने कहा था-

लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिस के मुँह में लगाम है।

यह कविता कवि ने जिस भी संदर्भ और परिप्रेक्ष्य में रची हो, पर यहाँ तो 'लोहे के स्वाद' अर्थात् उसकी पीड़ा तो घोड़ा ही जान सकता है, जब उस पर सवार कोई भी उसे हांकता है। बात तो दर्द की है और यही दर्द जो कश्मीर के विस्थापितों ने भोगा, विस्थापित रचनाकारों ने उसे सशक्त अभिव्यक्ति दी, वहीं अकश्मीरी भाषी हिंदी रचनाकारों ने भी यह संवेदना प्रकट तो की है, पर विस्थापित रचनाकारों को यह अपेक्षाएँ कहीं अधिक थीं। क्योंकि कविता अनंत होती है, उसे किसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता, वह मानवीय सरोकारों में रची-बसी होती है, सब की भावनाओं को आत्मसात करने वाली, कविताएँ प्रतिक्रियावादी नहीं होतीं, बदले की भावना से नहीं लिखी जाती, इसीलिए तो विस्थापन बोध की कविताएँ अपनी जड़ों से उखाड़े जाने की पीड़ा की कविताएँ हैं, यह अभावों, तड़प, संकल्पों को व्यक्त करने वाली होती हैं। पूरे परिदृश्य को झकझोर देने वाली होती हैं। यह मानवीय सरोकारों, मूल्यों को संरक्षित करते हुए अमानवीय तत्वों को जड़ से उखाड़ फेंकने की लिए ऊर्जा रखती है।

संदर्भ सूची ग्रंथ-

1. बारिश में भीगते बच्चे- रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हमारा अपना कश्मीर- संपादक डॉ. भुवनेश्वरी त्रिपाठी, सृजनपीठ हिंदी विभाग लखनऊ
3. 'साहित्य अमृत'- संपादक विद्यानिवास मिश्र सन् 2000 अगस्त
4. रहे प्रकृति अचल सुहागन - आशा रानी व्होरा, अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. योजना (मासिक जम्मू) सिंतबर 1991
6. 'शीराज़ा' (द्विमासिक जम्मू) अक्तूबर-नवंबर 1993
7. 'आज की कविताएँ' (विस्थापन पीड़ा अंक) 1993
8. 'समकालीन कविता'- डॉ. सुधा राते, लखनऊ

– शारदा कॉलोनी, विद्याधर निवास, पटोली, ब्रह्मणा मुठी, जम्मू-181205

❑❑❑

नागार्जुन का खंडकाव्य 'भूमिजा'- एक लोकदृष्टिपरक अध्ययन

डॉ. अंबिली टी

लोक, मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता एवं पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। 'भूमिजा' में रामकथा को प्रगतिशील यथार्थवादी जनदृष्टि द्वारा वैचारिक कसौटी पर परखने के उद्देश्य से कवि नागार्जुन ने उसके तीन प्रसंगों को चुन लिया है। तीनों प्रसंग लोकभूमि में घटित हैं।

'भूमिजा' की रचनाभूमि लोकजीवन का व्यापक क्षेत्र है। यह लोकजीवन, न मात्र समकालीन है और न ही देशकाल सीमित। इस खंडाकाव्य का केंद्रपात्र भूमिजा अर्थात् सीता, लोकतंत्री भूमि से उपजी है। लोकधर्मी सीता के त्याग, तपस्या और साधना के सामने अयोध्या की रीति-नीति या आदर्श फीके पड़ते हैं। भूमि से उत्पन्न है सीता। रामायण की नायिका, राम की पत्नी, रावण द्वारा छीन ली गई सीता मिथिला राजा जनक को मिट्टी से प्राप्त लड़की, वही सीता है नागार्जुन का खंडकाव्य 'भूमिजा' की सीता। नागार्जुन ने अपनी लोकदृष्टि द्वारा, उपेक्षित जीवन बिताने वाली सीता के त्याग को मूल्य देकर प्रस्तुत किया है। 'जहाँ से मैं आई, वही अच्छा है'- यह समझकर स्त्री जन्म का प्रतीक सीता भू माँ की कोख में समा जाती है। यथा सीता कहती है-

मेरी जननी लेगी मुझे समेट
पाऊँगी मैं माँ की शीतल गोद।[1]

'भूमिजा' में सीता अपनी लोकतंत्री मातृभूमि विदेहराज्य और वहाँ के प्रबुद्ध जनों की तुलना, अयोध्या के कृत्रिम मर्यादा के बने आडंबर से करती हुई अपने त्रिकाल का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत करती है। सीता का कथन है-

अयोनिज मैं तुम थे आभिजात
तुम्हारा तो था कुल अवदात
जनक थे मेरे पालनहार
नहीं थी मैं औरस संतान।[2]

सीता को अयोध्या बर्दाश्त नहीं कर पाई। उसे वाल्मीकि जैसे युगद्रष्टा कवि का आश्रय मिलता है। वह अपने बच्चे लव और कुश को इसी लोक परिवेश में सामर्थ्यवान बनाती है। सीता अभिजात परिवार में नहीं जन्मी थी। उसके जन्म के संबंध में इस प्रकार कहा गया है-

कि कोई जोत रहा था खेत
पसीने से लथपथ थे गात
मुखरे थे कड़ियों में जनगीत।[3]

जनकराज द्वारा पालित पुत्री के रूप में सीता का पालन-पोषण जनकपुरी में हुआ था। उस काल के बारे में इस प्रकार कहा गया है-

सुलभ था मुझे सभी का लाड
रानियाँ बरसाती थीं प्यार
तरुणियाँ थी सौ-सौ हम उम्र
तरुण भी थे दस बीस पचास
दिव्य सुख हासिल थे अविराम।[4]

लोकतंत्री धरती से सीता उपजी है। वही धरती अंत में उसकी चिता बनी। धरती उसके लिए माँ-बाप, बिस्तर, बिछावन सबकुछ है। राम का अभिजातकुल सीता को पचा नहीं सका।

'भूमिजा' के राम, राजा की मर्यादा से युक्त प्रौढ़ एवं तथाकथित पुरुषोत्तम राम नहीं। वे तरुण सुलभ कुतूहल से युक्त कपटताविहीन होकर वन प्रांत में ऋषि विश्वामित्र के शिष्य के रूप में रहते हैं। ये जन हितैषी हैं, गुरुकुल के संचालक हैं। ये ऋषियों के यज्ञ की रक्षा करते हुए राक्षसों को मारते हैं। पुरुषवर्ग के अविश्वास से अभिशप्त होकर पाषाणी बनी अहिल्या को वे आत्मेचतना दानकर पुनर्जीवित करते हैं। इन प्रसंगों में राम पूर्ण रूप से लोकधर्मी रहे हैं। उनपर राजधर्म का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं। भूमिजा के राम पूरी रामकथा के राम से अधिक जनोनुकूल, शाश्वत एवं सनातन हैं। उत्तराधिकार के रूप में शासन का अधिकार प्राप्त श्रीराम लोकतंत्र द्वारा चुने गए शासकों के लिए भी आदर्श पुरुष बन जाते हैं। नागार्जुन की राय में आज के अपवाद और आरोपण के शिकार बने लोकतंत्री शासकों के लिए रामराज्य की स्थापना करके उसका संरक्षण करने वाले श्रीरामचंद्र जी आदर्श राजा हैं। लोकदृष्टि के कारण ही राम गौतम मुनी के साधारण आश्रम के पास पड़ी हुई निर्जीव पाषाणी को देखकर तत्काल ही हतप्रभ हो जाते हैं। तब अपने भाई की इस दशा को देखकर लक्ष्मण पूछता है कि–

साधारण सी इस प्रतिमा में आई
क्या है जिससे हुआ आपको खेद।[5]

पाषाणी के सिर से लेकर तल्वे तक राम मनोयोग के साथ हाथ फेरने लगे। पुरंत ही पाषाणी में चेतना का संचार हो गया। तब शंकित होकर पाषाणी पूछती है–

पाषाणी में किया प्राणसंचार
कौन देव तुम मेरे हृदयाधार।[6]

इस घटना में राम की लोकदृष्टि ही झलकती है। राम अहिल्या को अपना परिचय देते हुए उससे कहते हैं–

कोसलेश दशरथ के हम हैं पुत्र
राम लखन से साधारण है नाम।[7]

इस उक्ति में राम की विनयभावना का परिचय है। यह भी नहीं, आगे वे अहिल्या के पैरों को छूकर कहते हैं–

छूकर देवी तुम्हारे दोनों पैर
होता हूँ मैं आज प्रतिज्ञाबद्ध।[8]

एक अन्य प्रसंग में राम अपने भाई लक्ष्मण से पूछते हैं–

कहाँ मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि
कहाँ मिलेगा इतना सुंदर देश
ऐसी माटी कहाँ मिलेगी वत्स।[9]

यहाँ कवि हमारी ओर संकेत करते हैं कि राजधर्म से श्रेष्ठ है लोकधर्म, यानी जनोनुकूलता।

महर्षि विश्वमित्र के साथ वन यात्रा करते समय उनसे तरह-तरह की कहानियाँ सुनने में इच्छुक भाइयों के चित्र हमें भूमिजा में मिलते हैं। दोनों भाइयों के लिए राजमहल के वैभव की अपेक्षा, वनयात्रा, सरयू-गंगा संगम, आश्रम आदि के दृश्य प्रियंकर हैं। अपने पूर्वजों का गुणगान सुनने में वे अत्यंत आकांक्षी हैं। वे गंगा को देवी समझते हैं। क्योंकि उसकी गोद में वंशधरों की अस्थियाँ समर्पित हैं। राम पूर्ण रूप से लोकधर्मी हैं, राजधर्मी नहीं। वे अधिक जनोनुकूल हैं। इस खंडकाव्य में राम का परिचय इस प्रकार दिया गया है–

भूमिजा के राम पूरी रामकथा के राम से अधिक जनोनुकूल अंततः शाश्वत एवं सनातन हैं।[10]

राम के पुत्र लव और कुश भी राजकीय वैभव में नहीं, वाल्मीकि के साधारण आश्रम में पलते हैं। कवि इसकी ओर संकेत करके कहते हैं कि–

बीहड पथ के चारण वज्र कठोर
ये निसर्ग प्रिय, श्यामल युगल किशोर
इनके लेखे क्या तो है साकेत?
राजकीय वैभव का क्या है मूल्य?[11]

लोकसंस्कृति में पलनेवाले इन राजकुमारों का स्वभाव रामराज्य के अधिप राम और भाई लक्ष्मण के दृढसंकल्प से अधिक प्रतीत होता है। दोनों कुमार धनुष चलाकर जंगल के जानवरों एवं वनवासियों के बीच आराम से रहते हैं। वे बाधाओं से भरे जंगली बीहड पथ पर घूमते रहते हैं। वे दोनों वज्र के समान मज़बूत और प्रकृति के प्यारे हैं। इनके लिए साकेत अर्थात् अयोध्या का राजकीय वैभव कृत्रिम है। बाघ के बच्चों से इनकी दोस्ती हैं। तालाब और नदी किनारे का क्षेत्र मानो इनका ही राज्य है। जंगली-पहाड़ी लोग उन्हें चढ़ावा देते हैं। इनकी धनुर्विद्या देखकर ये लोग दंग रह जाते हैं। इनका पालन-पोषण तापसियों द्वारा होता है। ये राजकुमार वास्तव में तरुण तपस्वी की तरह लग रहे हैं। इन बच्चों

भाषा ISSN 0523-1418

को लोक संस्कार ही प्राप्त हुआ है। यह अयोध्या नगरी की झूठी मर्यादा को तोड़ने और राजधर्म को लोकधर्म में बदलने में सहायता पहुँचा देगा। 'भूमिजा' में इसका संकेत है। लव और कुश को प्राप्त लोक संस्कारयुक्त व्यक्तित्व ज्यादा प्रभावपूर्ण साबित होता है।

संक्षेप में कहें तो 'भूमिजा' पूर्ण रूप से एक लोकधर्मी रचना है। लोकधर्म की कसौटी पर कसने के लिए ही कवि नागार्जुन ने चतुर जौहरी के समान रामकथा के तीन प्रसंगों को सावधानी से चुन लिया है।

संदर्भ सूची-

1. भूमिजा-संस्करण 2017 - पृष्ठ 66
2. भूमिजा - पृष्ठ 60
3. भूमिजा - पृष्ठ 60
4. भूमिजा - पृष्ठ 62
5. भूमिजा - पृष्ठ 47
6. भूमिजा - पृष्ठ 49
7. भूमिजा - पृष्ठ 50
8. भूमिजा - पृष्ठ 57
9. भूमिजा - पृष्ठ 34
10. भूमिजा - आवरण पृष्ठ
11. भूमिजा - पृष्ठ 63

– सहायक आचार्या, हिंदी विभाग सरकारी कॉलेज, चिट्टूर, पालक्काट

❑❑❑

नंदीवाला समाज की बोली का क्रिया अध्ययन

प्रो. सविता कृष्णात पाटील

भारत बहुभाषी देश है। यहाँ अनेक भाषाओं के साथ-साथ अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं। इन बोलियों में लोकगीत, लोककलाएँ आदि विपुल मात्रा में हैं। ये मनुष्य को जीवन के लिए अच्छी शिक्षा देती है। कहा जाता है कि 'चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर वाणी'। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ये बोलियाँ बदल जाती हैं। इन बोलियों का न तो व्याकरण है, न ही लिपि। प्रांतीय भाषाएँ तथा अंग्रेजी के प्रभाव से दिन-ब-दिन इन बोलियों का प्रभाव कम होता जा रहा है। इन बोलियों को बोलने वाले बच्चे प्रांतीय भाषाओं की पाठशालाओं में शिक्षा लेते हैं। अपने व्यवसाय के लिए लोगों को प्रांतीय भाषाओं में व्यवहार करना पड़ता है। परिणामतः इनकी बोलियों में प्रांतीय भाषाओं के शब्द आ रहे हैं। इन बोलियों का मूल रूप दब रहा है। इनमें से कई बोलियाँ नष्ट होने लगी हैं। इसलिए इन बोलियों को स्थायित्व प्रदान करना होगा। इनका अगर व्याकरण बनाया जाए, लिपि दी जाए तो निश्चित रूप से जतन और संवर्धन होगा।

नंदीवाला जाति महाराष्ट्र के अनेक स्थानों पर बसी है। इस जाति के लोग आंध्रप्रदेश से महाराष्ट्र में आए हैं। ये लोग ज्यादातर खानदेश, नगर, नाशिक, सोलापुर, कोल्हापुर, सांगली, सतारा जिले में पाए जाते हैं। कोल्हापुर जिले के अंतर्गत खुपीरे, हातकणगले, शिरोल, जयसिंहपुर आदि स्थानों पर इस जाति के परिवार हैं। इनमें से 70-75 परिवार कोपार्डे, तहसील करवीर, जिला कोल्हापुर में रहते हैं।

नंदीवाला जाति के लोग अपने नंदीबैलों के साथ महाराष्ट्र में घूमते हुए लोगों का मनोरंजन करते थे। यही उनके उदरनिर्वाह का साधन था। बदलते समय के अनुसार इन लोगों ने उदरनिर्वाह के नए साधन ढूँढ लिए हैं। अनेक छोटे-मोटे व्यवसाय ये लोग कर रहे हैं। कुछ पुरुष जानवरों के बाजार में दलाली, नौकरियाँ करते हैं और स्त्रियाँ नए-पुराने बर्तनों का व्यापार करना, सुइयाँ बेचना, पशुपालन जैसे व्यवसाय कर रही हैं।

नंदीवाला समाज की बोली मुख्यतः तेलुगु भाषा के निकट है परंतु मूल तेलुगु भाषा से बहुत अलग है। "नंदीवाला समाज मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि राज्यों में फैला दिखाई देता है। परिवार, जाति पंचायत और गोपनीय, बाहर के व्यवहारों में उनकी बोली भाषा का उपयोग किया जाता है।"[1] धार्मिक विधि के समय गानेवाले गीत, आर्थिक आदान-प्रदान आदि के लिए इसी बोली का प्रयोग करते हैं।

प्रस्तुत शोधनिबंध में नंदीवाला समाज की बोलियों की क्रियाओं का अध्ययन किया है। भावों की अभिव्यक्ति वाक्यों द्वारा होती है। वाक्य में क्रिया के लिए अनन्यसाधारण महत्व होता है। क्रिया का उपयोग विधान करते समय होता है। विधान करते समय लिंग, वचन, काल आदि का उल्लेख आवश्यक होता है।

सामान्य तौर पर हिंदी, मराठी भाषाओं की तरह नंदीवाला समाज की बोली में कर्ता के बाद कर्म और कर्म के बाद क्रिया रखी जाती है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिंटीवा	राम आता खाता है।
पिल्ली पाल तागतद	बिल्ली दूध पीती है।

क्रिया के काल

मनुष्य का जीवन गतिमान है। उसके जीवन में

भाषा ISSN 0523-1418

अनेक क्रियाएँ घटित होती हैं। कभी वर्तमान में तो कभी भविष्य काल में। "जिस रूप से क्रिया के व्यापार का समय और उसकी स्थिति (अपूर्ण या पूर्ण) का ज्ञान हो जाता है, उस रूप को क्रिया का काल कहते हैं।"[2] इसी आधार पर काल के तीन भेद दिखाई देते हैं- वर्तमानकाल, भूतकाल, भविष्यतकाल। नंदीवाला समाज की बोली में काल के आधार पर क्रिया के यही भेद दिखाई देते हैं।

1. **वर्तमानकाल**- चल रहे समय में होने वाली क्रिया वर्तमानकाल कही जाती है। वर्तमान काल के फिर से तीन भेद होते हैं।

क. सामान्य वर्तमानकाल - इसमें क्रिया का साधारण रूप से निश्चित समय न बताकर केवल वर्तमान में होना बताया जाता है। उदारहण-

राम मामडकाय तिन्टीवा — राम आम खाता है।
आऊ पाल इस्तद — गाय दूध देती है।

ख. अपूर्ण वर्तमानकाल- क्रिया का वह रूप जिससे यह सूचित होता है कि क्रिया का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिन्ताव उंडद — राम आम खा रहा है।
आऊ पाल इस्ता उंडद — गाय दूध दे रही है।

ग. पूर्ण वर्तमानकाल- इसमें क्रिया का कार्य भूतकाल में शुरू होता हैं और वर्तमानकाल में पूरा हो जाता है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिने — राम ने आम खाया है।
आऊ पाल इपुड इचे — गाय ने दूध दिया है।

2. **भूतकाल**- क्रिया के जिस रूप से बीते हुए समय का बोध हो जाता है, तब उसे भूतकाल कहा जाता है। वर्तमानकाल की तरह भूतकाल के सामान्यत: तीन भेद होते हैं-

क. सामान्य भूतकाल- क्रिया के जिस रूप से बीते हुए समय का बोध हो जाता है, तब उसे सामान्य भूतकाल कहा जाता है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिनी आयपाय — राम ने आम खाया।
आऊ पाल इचे — गाय ने दूध दिया।

ख. अपूर्ण भूतकाल- क्रिया का वह रूप जिससे उसका भूतकाल में जारी रहना जाना जाता है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिंटा ऊंडे — राम आम खा रहा था।
आऊ पाल इस्ता ऊंडद — गाय दूध दे रही थी।

ग. अपूर्ण भूतकाल- क्रिया के जिस रूप से यह बोध हो जाता है कि क्रिया भूतकाल में पूर्ण हो चुकी है। उदाहरण-

राम मामडकाय तिनी आयकुंडे — राम ने आम खाया था।
आऊ पाल इस्ता ऊंडे — गाय ने दूध दिया था।

3. **भविष्यत् काल**- क्रिया के जिस रूप से आने वाले समय में क्रिया घटित होने का बोध होता है, तब उसे भविष्यत् काल कहा जाता है। "आगे होने वाली घटना का बोध, क्रिया के जिस रूप से हो जाता है, उसे भविष्यत् काल कहते हैं,"[3] भविष्यत् काल के सामान्यत: दो भेद मिलते हैं-

क. सामान्य भविष्यत् काल- क्रिया के जिस रूप से आने वाले समय में क्रिया घटित होने की सूचना मिलती है, उसे सामान्य भविष्यत् काल कहा जाता है। उदाहरण-

राम मामडकाय यनर्शक तिंटड — राम आम खाएगा।
आऊ पाल इस्ता ऊंडे — गाय दूध देगी।

ख. संभाव्य भविष्यत् काल-क्रिया का वह रूप जिससे क्रिया का कार्य भविष्य में हाने की संभावना होती है उदाहरण-

राम मामडकाय तिने — शायद राम आम खाएगा।
आऊ पाल इय दिका — संभवत: गाय दूध देगी।

क्रिया में लिंग वचन

नंदीवाला समाज की बोली में उद्देश्य के लिंग के अनुसार क्रिया में बदलाव नहीं आता। उदाहरण-

पिलगाड पदाम पाड़ता हुंडद — लड़का गाना गाता है।
पिल्ला पदाम पाड़ता हुंडद — लड़की गाना गाती है।

यहाँ हम देखते हैं कि संज्ञा के लिंग में परिवर्तन होने पर क्रिया में कोई अंतर नहीं आया है। यहाँ यह नियम अंग्रेजी भाषा की तरह दिखाई देता है।

नंदीवाला समाज की बोली में संज्ञा के वचन में अंतर आने पर क्रिया में परिवर्तन नहीं आता है। उदाहरण-

पिलगाड उर्रकता हुंडद — लड़का दौड़ता है।

आंदर पिलगाल उर्रकता लड़के दौड़ते हैं।

हुंडद

यहाँ संज्ञा के वचन के अनुसार क्रिया में अंतर नहीं आया है।

क्रिया के भेद

क्रिया के मुख्यत: दो भेद होते हैं-

1. सकर्मक क्रिया
2. अकर्मक क्रिया

नंदीवाला समाज में क्रिया के दोनों भेद दिखाई देते हैं।

सकर्मक क्रिया- जिन क्रियाओं के साथ कर्म रहता है, उन क्रियाओं को सकर्मक क्रिया कहा जाता है। उदाहरण-

पिलगाड पुस्तक वाचस्तर	लड़का पुस्तक पढता है।
वाल्मीकि रामायण गिषे	वाल्मीकि ने रामायण लिखा।
गाय गवत तिंटद	गाय घास खाती है।

उपर्युक्त वाक्यों में पुस्तक, रामायण, गवत कर्म के रूप में आए हैं।

अकर्मक क्रिया- जिन क्रियाओं के कर्म नहीं रहता, उन्हें अकर्मक क्रिया कहा जाता है। उदाहरण-

वक्ता कार्यक्रमात तुमतद	वक्ता सभा में छींका।
स्नेहल नगतद	स्नेहल हँसती है।

उपरलिखित क्रियाओं में कर्म दिखाई नहीं देता अत: ये अकर्मक क्रियाए हैं।

निष्कर्ष

बोलियों की रक्षा करना आज एक महत्वपूर्ण कार्य बनता जा रहा है। देश-विदेश में इस दृष्टि से प्रयत्न हो रहे हैं। महाराष्ट्र में रहने वाली नंदीवाला समाज की बोली पर मराठी का प्रभाव दिखाई देता है। क्रियाओं की दृष्टि से देखा जाए तो मराठी तथा हिंदी भाषा की तरह इस बोली में पदक्रम है लेकिन उद्देश्य तथा कर्म के लिंग-वचन के अनुसार क्रिया में अंतर नहीं आता है। क्रिया संबंधी कुछ बातें अंग्रेजी भाषा से मिलती-जुलती दिखलाई देती हैं। नंदीवाला समाज की बोलियों की क्रियाएँ संयोगात्मक हैं। (तिंटद- खाती है, नगतद- हंसती है आदि) लिंग की दृष्टि से देखा जाए तो मराठी भाषा में होने वाला नपुंसकलिंग नंदीवाला समाज की बोली में नहीं है। हिंदी भाषा की तरह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दो ही लिंग हैं।

असल में नंदीवाला समाज की बोली को लिपिबद्ध करना, उसका व्याकरण बनाना आदि कार्य दुरूह है। उनके समाज के पढ़े-लिखे लोग जैसे-जैसे बढ़ते जाएँगे, वैसे ही यह कार्य सुलभ हो जाएगा। नंदीवाला समाज की बोली का अर्थ आसानी से समझ में नहीं आता। नंदीवाला समाज के लोगों द्वारा जानकारी प्राप्त होने पर भी विश्वसनीयता के लिए इस समाज के पढ़े-लिखे लोगों की मदद की आवश्यकता जरूर बनी रहेगी।

संदभ्र ग्रंथ सूची -

1. चव्हाण बालासाहेब संतू- महाराष्ट्रातील नंदीवाले समाजाचे अंतरंग (ज्योतिचंद्र पब्लिकेशन, लातूर सं. 2012, पृ. 48)

2. वेदपाठक कृ. ज. - हिंदी व्याकरण एवं रचना चिंतन प्रकाशन, कानपुर सं. 1990, पृष्ठ-42)

3. वही पृष्ठ- 49

– स. ब. खाडे महाविद्यालय, कोपार्डे तह. करवीर, जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र

❑❑❑

'एक कहानी यह भी'-
वार अपनों के थे, सो घाव ज्यादा रिसते थे

डॉ. ऋचा शर्मा

मन्नू भंडारी का जीवन एक आम भारतीय स्त्री के जीवन से कुछ अलग नहीं रहा। वैसा ही संघर्ष, वैसे ही उपेक्षा, वैसे ही सपने और सपनों का हवन भी। सृजनशील प्रतिभा के धनी शिक्षित, स्वावलंबी महिला के जीवन को यह अपेक्षित नहीं था। प्रतिष्ठित लेखक तथा जन चेतना का प्रगतिशील कथा मासिक 'हंस' के संपादक राजेंद्र यादव से ही यह अपेक्षा नहीं थी कि वे अपनी पत्नी मन्नू भंडारी को जिम्मेदारियों के बोझ तले दबा दे और स्वयं लेखनीय अनिवार्यता के नाम पर मुक्त विचरण करें। लेखक की कथनी और करनी में साम्य न हो तो स्त्री विमर्श के बैनर तले डींगे हाँकना मात्र दिखावा भर ही तो है?

भारत की आम स्त्री मन्नू भंडारी की इस कहानी को पढ़ेगी तो यही सोचेगी कि इसमें कौन सी बड़ी बात है ऐसा ही जीवन तो हम सब जीती हैं लेकिन मन्नू भंडारी की मानसिक तकलीफ तथा शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद महाभोज, आपका बंटी और अनेक अमर कहानियों की रचना साथ ही बेटी रचना (टिंकू) को संभाले रखने की हठ पाठकों के अंत: पटल पर गहरा प्रभाव डालती है। मन्नू जी जीवन पर्यंत संघर्ष करती रहीं कभी अपने सृजनशील व्यक्तित्व से, टिंकू की माँ के रूप में तो कभी एक पत्नी के रूप से लेकिन उन्होंने कभी हथियार नहीं डाले। अनवरत संघर्ष की कथा है उनकी 'एक कहानी यह भी' जिसमें घाव अपने थे और वार भी अपनों के।

मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' एक लेखिका, पत्नी और माँ के मानसिक अंतर्द्वंद्व की कहानी है। युवावस्था में अत्यंत तेज- तर्रार मन्नू जी विवाहोपरांत रचनाकार पति की कुंठाओं, संवेदनहीनता और समर्पण के बल पर सब कुछ ठीक करने की चाह लिए। इस कृति को मन्नू भंडारी आत्मकथा नहीं कहती- यह आत्मकथा नहीं है, इसीलिए मैंने इसका शीर्षक भी 'एक कहानी यह भी' ही रखा। लेकिन यह भी लिखती हैं यह शुद्ध मेरी ही कहानी है और इसे मेरा ही रहना[1] था, इसलिए न कुछ बदलने-बढ़ाने की आवश्यकता थी, न काटने-छाँटने की। सच कहती हैं मन्नू जी, यह वस्तुत: एक ऐसी स्त्री की कहानी है जिसने[2] उसने वैवाहिक जीवन के बारे में सोचा कुछ और था पाया कुछ और, जीवन जीना चाहती थी एक स्वतंत्र, समर्थ स्त्री का परंतु जीवन व्यतीत किया एक समझौतावादी स्त्री के रूप में। वे स्वयं से प्रश्न करती हैं- किशोरावस्था में मेरी रंगों में एक समय खून की जगह लावा बहा करता था, अब पानी बहने लगा है? जो मैं एक संवेदनशून्य ही नहीं बल्कि निर्मम और कठोर व्यक्ति के साथ रह रही हूँ?[3]

सीमोन द बुवा का कथन स्मरण होता है- "नारी को अपने नारीपन से मुक्त होना चाहिए" तो क्या मन्नू भंडारी जी, जो स्वयं एक रचनाकार थीं इस बंधन से मुक्त होना नहीं चाहती थीं? या एक घरेलू स्त्री की तरह पति की इच्छा-अनिच्छा में ही निज सुख-दुख देखती थीं? मन्नू जी के जीवन को सीमोन के उक्त कथन के संदर्भ में देखना चाहिए? बहुत से प्रश्न पाठकों के मन में उथल-पुथल मचाते हैं। मन्नू जी स्वयं लिखती हैं कि

भविष्य में स्त्रीवादी लेखिकाएँ उनके इस निर्णय पर उन्हें धिक्कारेंगी।

मन्नू जी के जीवन की इस व्यथा- कथा को समझने के लिए किसी और के कथन के आधार पर नहीं बल्कि उनके जीवन में घटी घटनाओं के आधार पर समझना चाहिए। प्रसिद्ध कथाकार सूर्यबाला के अनुसार मन्नू भंडारी का आत्मसंतुलन विस्फारित करने वाला है। उनकी इस कहानी से यह साबित हो जाता है कि अपने दांपत्य जीवन की धुरी को सुस्थिर रखने के लिए वे किस हद तक लस्त-पस्त और लहूलुहान होती रही हैं।[4]

अपने पिता के विरोध के बावजूद राजेंद्र के साथ जिस वैवाहिक जीवन को बहुत आशा और विश्वास के साथ इन्होंने शुरू किया उसके बारे में मन्नू जी लिखती हैं- बहरहाल स्थिति यह बनी कि हमारा सहजीवन समारंभ (विवाह के निमंत्रण- पत्र में राजेंद्र ने यही छपवाया था) एक बड़े ही अजीब किस्म के अलगाव के साथ हुआ।[5]

इस सहजीवन समारंभ के बाद मन्नू जी और राजेंद्र यादव के जीवन का जो बँटवारा हुआ उसमें जिम्मेदारियाँ और समस्याएँ (सभी प्रकार की) मन्नू जी के हिस्से में, बेरोक- टोक साहित्यिक गतिविधियाँ और लिखने के नाम पर घर से भाग निकलना राजेंद्र यादव की अनिवार्यता बन गई थी। सहजीवन समारंभ या समानांतर जिंदगी के नाम पर एक प्रकार का छल किया गया था एक लेखिका के साथ।

शादी के बाद राजेंद्र जी दिल्ली में रुक गए और मन्नू जी कोलकाता वापस आ गई। कोलकाता में मन्नू जी की नौकरी थी परंतु दिल्ली में इन दोनों की ही कोई नियमित आर्थिक आय नहीं थी। चार महीने एक असमंजस की स्थिति बनी रही, अंततः राजेंद्र यादव ने कोलकाता आने का निर्णय किया। बहुत ही उत्साह के साथ इस वैवाहिक जीवन को मन्नू जी जीना चाहती थीं लेकिन जल्दी ही यह अनुभव भी हुआ कि पुरुष का अहंकार उन्हें सामान्य स्त्री बने रहने देना चाहता है जो जिम्मेदारियों के बोझ तले अपने सारे सपने होम कर देती है। मित्र राजेंद्र और पति के रूप में राजेंद्र यादव दोनों अलग थे। जब राजेंद्र जी ने कहा- 'देखो, हमारी छत जरूर एक होगी लेकिन जिंदगियाँ अपनी-अपनी होंगी- बिना एक-दूसरे की जिंदगी में हस्तक्षेप किए बिल्कुल स्वतंत्र, मुक्त और अलग[6] तो मन्नू जी अवाक् रह गई। 'समानांतर जिंदगी के आधुनिकतम पैटर्न' के नाम पर ये कैसी स्वतंत्रता की बात है? ये कैसा प्रेम है और ये कैसा सहजीवन समारंभ है जिसमें साथ तो कुछ है ही नहीं?

इसके बाद से घर की छत तो रही लेकिन राजेंद्र जी का साथ वैसा मिला ही नहीं जिसकी अपेक्षा एक पत्नी को होती है। बेटी रचना (टिंकू) के जन्म का समय हो अथवा मन्नू जी की अस्वस्थता। कठिन पलो में पति की उपस्थिति और प्रेम से उनका मनोबल बढ़ा हो, यह भी मन्नू जी को नसीब नहीं हुआ।

'एक कहानी यह भी' के पूरक प्रसंग शीर्षक के माध्यम से मन्नू जी ने राजेंद्र यादव की समानांतर जिंदगी के आधुनिकतम पैटर्न के नाम पर मीता के साथ रहने की स्वतंत्रता का जिक्र किया है। पत्नी का खराब स्वास्थ्य या टिंकू की जिम्मेदारी कुछ भी उन्हें मीता के साथ पहाड़ पर जाकर समय व्यतीत करने से रोक नहीं पाता था। पारिवारिक संबंधों का निर्वाह करने के लिए जो लगाव और गहराई चाहिए वह राजेंद्र जी के पास नहीं थीं परंतु यही भावनात्मक लगाव मन्नू जी को राजेंद्र यादव से 35 वर्ष जोड़े रहा। एक लेखिका के लिए कितना मानसिक द्वंद्व और दुविधाग्रस्त जीवन रहा होगा? पूरक प्रसंग में वे लिखती हैं-

'क्यों मैं सबके समाने एक सुखी संतुष्ट गृहिणी का मुखौटा ओढ़कर यह सब झेलती रही जिसे किसी भी स्त्री के लिए झेल पाना बहुत दुष्कर है?[7]

'वे इस पर निरंतर चिंतन करती रहीं कि क्यों इतने वर्ष एक छत के नीचे राजेंद्र के साथ बिता दिए-

'दूसरों की क्या कहूँ, पूरे पैंतीस साल तक मैं खुद उन्हें कहाँ काट पाई?'[8]

मन्नू जी ने बड़ी ईमानदारी से अपनी कमजोरी (विवशता) भी स्वीकार की। यह भी लिखा कि स्त्रीवादी लेखिकाएँ उनके उस निर्णय पर उन्हें धिक्कारेंगी। लाइलाज बीमारी और घोर मानसिक कष्ट देने वाले वैवाहिक संबंध के बाद भी अपनी सकारात्मक सोच और सृजनशीलता के सहारे वे आगे बढ़ती रहीं। साहित्य-सृजन करती रहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. एक कहानी यह भी - मन्नू भंडारी स्पष्टीकरण - पृ. 08
2. वही - पृ. 07
3. वही - पृ. 227
4. हिंदी आत्मकथाएँ : संदर्भ और प्रकृति - पृ. 135
5. एक कहानी यह भी - मन्नू भंडारी 221
6. एक कहानी यह भी- मन्नू भंडारी - पृ. 57
7. एक कहानी यह भी - मन्नू भंडारी - पृ. 56
8. वही - पृ. 214

– 122/1 अ, सुखकर्ता कॉलोनी (रेलवे ब्रिज के पास) कायनेटिक चौक, अहमदनगर, महाराष्ट्र-414001

❑❑❑

स्वनिम की अवधारणा

रहमतुन्निसा बेगम

स्वनविज्ञान- भाषाविज्ञान के अंतर्गत स्वनविज्ञान की चर्चा करते समय सबसे पहले स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सामान्य ध्वनियों और भाषा में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियों-जिन्हें स्वन कहना ही उचित होगा- में किस प्रकार का अंतर है। मनुष्य तरह-तरह की ध्वनियों का उच्चारण कर सकता है। मनुष्य द्वारा उच्चरित सभी ध्वनियाँ भाषा का अंग नहीं होती हैं। वस्तुतः सामान्य व्यक्ति भाषा के संदर्भ में जिसे ध्वनि कहता है उसे भाषाविज्ञान में वाग्ध्वनि माना जाता है। केवल भाषा में प्रयुक्त होने वाली मनुष्य द्वारा उच्चरित खंडनीय ध्वनियों को ही 'वाग्ध्वनि' कहा जाता है। वाग्ध्वनियाँ तथा अन्य संबंधित विषय, जैसे ध्वनियों का वर्गीकरण, अक्षर, बलाघात आदि मिलकर भाषा का ध्वनिविधान कहलाते हैं। ध्वनिविधान का अध्ययन करने वाले भाषाविज्ञान के विभाग (अनुशासन) का सामान्य नाम है स्वनविज्ञान। स्वनविज्ञान के तीन उपविभाग किए जाते हैं- 1. भौतिक स्वनविज्ञान 2. उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान और 3. स्वनिमविज्ञान स्वनविज्ञान। इन तीन उपविभागों का परिचय आगे दिया जा रहा है।

स्वनिमविज्ञान- स्वनिमविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि वाग्ध्वनियाँ किस प्रकार एक शब्द का दूसरे शब्द से, एक शब्द रूप (पद) का दूसरे शब्द रूप से अंतर करती है। उदाहरण के लिए चाल और जाल, चलना और जलना शब्दों में च्(अघोष) और ज् (घोष) व्यंजन इन शब्दों में अर्थभेद कर रहे हैं, बच्चा और बच्चे शब्द रूपों में आ और ए स्वर इन शब्द रूपों में अर्थभेद कर रहे हैं। इस प्रकार के अर्थभेद करने वाले स्वनों को 'स्वनिम' कहा जाता है। स्वनिमों का अध्ययन स्वनिमविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। वाग्ध्वनियों के भाषिक प्रकार्य का अध्ययन स्वनिमविज्ञान का मुख्य विषय है। इसलिए भाषावैज्ञानिक दृष्टि से स्वनिमविज्ञान स्वनविज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण उपविभाग कहा जाता है।

स्वनिम की पहचान- शब्दों की रचना स्वनों से होती है। सामान्यतः एक शब्द का ध्वन्यात्मक रूप किसी दूसरे शब्द से भिन्न होता है। कुछ शब्दों का ध्वन्यात्मक रूप परस्पर पूरी तरह भिन्न होता है। कुछ शब्दों में आंशिक ध्वन्यात्मक भिन्नता होती है और कुछ में ध्वन्यात्मक भिन्नता न्यूनतम होती है।

अर्थात् किंही दो शब्दों की ध्वन्यात्मक भिन्नता अधिकतम भी हो सकती है और न्यूनतम भी। स्वनिम की पहचान न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता के द्वारा की जाती है। भाषाविज्ञान के प्राग स्कूल में स्वनिमिक व्यतिरेक या अर्थभेदक व्यतिरेक कहा गया है। शब्दों की ध्वन्यात्मक भिन्नता को उदाहरणों के द्वारा समझाया गया।

1. माल-चोर (अधिकतम ध्वन्यात्मक भिन्नता)
2. काल-कोर (आंशिक ध्वन्यात्मक भिन्नता)
3. माल-गाल (न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता)
4. लिखा-लिखी, पत्ता-पत्ते (न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता)।

पहले दो शब्दों- 'माल' और 'चोर' की कोई भी वाग्ध्वनि समान नहीं है। इन शब्दों का ध्वन्यातमक रूप पूरी तरह भिन्न है। दोनों शब्दों की ध्वन्यात्मक संरचना एक दूसरे से पूरी तरह अलग है। अर्थात् इनमें अधिकतम ध्वन्यात्मक भिन्नता है।

भाषा ISSN 0523-1418

2. दूसरे उदाहरण में काल और कोर शब्दों में ध्वयन्यात्मक भिन्नता दो वाग्ध्वनियों में है। आ और ल तथा ओ और र। अर्थात् इनमें आंशिक ध्वन्यात्मक भिन्नता है।

3. तीसरे उदाहरण में 'माल' और 'गाल' में ध्वयात्मक भिन्नता केवल एक वाग्ध्वनि में है 'म' और 'ग' अर्थात् इनमें न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता है।

इसी तरह शब्द रूपों (पदों) पत्ता और पत्ते तथा लिखा और लिखी-की ध्वन्यात्मक भिन्नता भी एक वाग्ध्वनि-आ और ए तथा आ और ई-में है। इस प्रकार इन पदों में भी न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता है। दो शब्दों या पदों की न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता को 'स्वनिमिक व्यतिरेक' कहा जाता है। न्यूनतम ध्वन्यात्मक भिन्नता वाली वाग्ध्वनियाँ 'स्वनिम' कहलाती हैं।

स्वनिम व्यवस्था- भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार "स्वनिम किसी भाषा की वह अर्थभेदक ध्वन्यात्मक इकाई है जो भौतिक यथार्थ न होकर मानसिक यथार्थ होती है जिसके एकाधिक ऐसे उपस्वन होते हैं जो ध्वन्यात्मक दृष्टि से मिलते-जुलते, अर्थभेदकता में असमर्थ तथा आपस में या तो परिपूरक या मुक्त वितरण में होते हैं।"

स्वनिम किसी भाषा की ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान, ऐसी भाषा ध्वनियों के वर्ग को कहते हैं जो आपस में वितरण की दृष्टि से अव्यतिरेकी समान ध्वनियाँ उपस्वन कहलाती है।

भाषा के दो स्वर होते हैं कथ्य तथा अभिव्यक्ति। कथ्य पक्ष ही भाषा का लक्ष्य होता है तथा अभिव्यक्ति पक्ष कथ्य को कहने का साधन मात्र।

अभिव्यक्ति में दो मूलभूत इकाइयाँ होती हैं-

1. स्वनिम- हिंदी में भी स्वनिम दो प्रकार के हैं- खंड्य तथा खंड्येतर।

खंड्य स्वनिम दो प्रकार के हैं- स्वर स्वनिम, व्यंजन स्वनिम।

खंड्येतर स्वनिम पाँच प्रकार के हैं-

1. दीर्घता
2. अनुनासिकता
3. बलाघात
4. अनुतान
5. संगम

हिंदी में मुख्य या केंद्रीय स्वर स्वनिम दस है। गूंगा नहीं था मैं-

डॉ. जय प्रकाश कर्दम की कृति पर केंद्रित उदाहरणों के अनुसार-

ई	इ	ए	ऐ	अ	आ	औ	ओ	उ	ऊ
कभी	मिल	खेत	मैला	मर	आग	और	जोर	उठता	ऊपर
चीख	फिर	ऐसा	बैठा	कब	मान	और	ओर	उनकी	ऊन

रेखांकित शब्दों में भी- ई, मि-इ, खे-ए, मै-ऐ, म-अ, आ-आ, औ-औ, जो-ओ, उ-उ, ऊ-ऊ उसी तरह ची-ई, फि-इ, ऐ, बै-ऐ, क-अ, मा-आ, औ-औ, ओ-ओ, उ-उ, ऊ-ऊ स्वर मिलते हैं। स्वर स्वनिम को 'ध्वनि संरचना' की दृष्टि से लिखा गया है।

स्वरानुक्रमः हिंदी में मुख्यतः, निम्नांकित स्वरानुक्रम शब्द के आदि, मध्य तथा अंत में मिलते हैं। 'गूंगा नहीं था मैं' कृति के आधार पर निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है-

–	आउ	आए	आई	अ अ	अ उ	अइ	आइ	आउ	इअ	इउ
–	–	आए	मलाई	चट्टानो	–	–	राइफल	–	विकट	–
इए	इओ	ईआ	उआ	उई	आऊ	इआ	इऊ	ईअ	उअ	उइ
–	शताब्दियों	–	बुला	जुली		विपाश		तीसरा	मुझ	–
उए	उओ	एअ	एइ	एए	ऐआ	ओइ	ओऊ	ओओ	अआ	औआ
हुए	–	भेजना	सेमिनार	देते	जैसा	–	–	लोगों	बता	यौवा
एआ	एई	एऊ	ओआ	ओए	औए	अए	इआ	उई	एओ	औओ
केदारनाथ	भेजी	–	दबोचा	धोए	–	नए	मिला	जुली	लेतो	औरो

ओई औरो औरो

तीन स्वर के–

आ+इ+ए	इ+आ+इ	उ+आ+ई	ओ+इ+या	आ+इ+यो
जाइए	बनियाइन	बुआई	रसोइया	भाइयो
उ+आ+इ	ए+इ+ए	ओ+इ+ए		
मुआइना	खेइए	रोइए		

रेखांकित शब्दों में आए–आए, मलाई–लाई–आई, चट्टानों–अअ, राइ–आइ, विकट–इअ, शताब्दियों–इओ, बुला–उआ, जुली–उई, विपाश–इआ, तीसरा–ईअ, मुझ–उअ, हुए–उए, भेज–एअ, सेमि–एइ, देते–एए, जैसा–ऐआ, लोगों–ओओ, बता–अआ, यौवा–औआ, केदा–एआ, भेजी–एई, दबोचा–ओआ, धोए,–ओए, नए–अए, मिला–इआ, जुली–उई, लेतो–एओ स्वरानुक्रम शब्द आदि–मध्य तथा अंत में मिलते हैं। ध्वनि संरचना की दृष्टि से लिखा गया।

– हाउस न. 9–20–182/सी मुजाहिद नगर, मल्लापल्ली निजामाबाद, तेलंगाना–503001

❑❑❑

सोशल बनाम परंपरागत हिंदी मीडिया का भाषिक-सामाजिक संदर्भ

अंजुम शर्मा

"बाय गिविंग पीपल द पावर टू शेयर, वी आर मेकिंग द वर्ल्ड मोर ट्रांसपेरेंट"

फेसबुक के संस्थापक मार्क ज़करबर्ग द्वारा सोशल मीडिया के संदर्भ में दिए गए कथन का एक आशय यह निकाला जा सकता है कि सोशल मीडिया से पहले का दौर कम पारदर्शी था। साझाकरण की शक्ति (शेयरिंग पावर) विश्व को साफ़ आईने में किस प्रकार देख सकती है इसे समझना अपने आप में दिलचस्प है। जिसे हम सोशल मीडिया कहते हैं उसने पिछले कुछ वर्षों में संवाद का माध्यम बदलकर रख दिया है। फेसबुक, ट्विटर, लिंक्डइन, गूगल-प्लस जैसे विभिन्न मंचों पर लोगों की सक्रियता इतनी सघन है कि उपयोगकर्ता पर किसका, किस तरह का, कितना व्यापक असर होगा इसका कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

इसे परंपरागत मीडिया के एकाधिकार में सेंधमारी की तरह देखा जा रहा है। पारंपरिक हिंदी मीडिया (तीनों फोर्मेट- प्रिंट, रेडियो और इलेक्ट्रोनिक) परिवर्तन के लंबे दौर से गुज़रा है। हिंदी के प्रथम अख़बार से लेकर लगभग सौ वर्षों तक हिंदी मीडिया केवल प्रिंट तक सीमित था। फिर लगभग साढ़े तीन दशक तक अख़बारों का साथ रेडियो ने दिया। उसके बाद दूरदर्शन का दौर आया और पढ़ने-सुनने का सिलसिला अब देखा भी जाने लगा। जब नव-आर्थिक नीतियों ने देश की दशा और दिशा बदली तब उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण (एलपीजी सुधारों) ने पत्रकारिता को इतनी तेज़ी से बदला कि आप अपनी धुरी पर 360 डिग्री घूमकर दुनिया देख सकने में सक्षम होने लगे।

वर्ष 1826 से लेकर 20वीं सदी की समाप्ति तक हिंदी मीडिया की भाषा, धीरे-धीरे साहित्यिक उरूज से फिसलती हुई बाज़ार की गोद में जा गिरी। ठहरी हुई भाषा भागने लगी और एक भाषा के शब्द दूसरी भाषाओं से हाथ मिलाने लगे। कंटेंट के स्तर पर राजनैतिक चेतना तथा राष्ट्रीय चेतना से आगे बढ़कर अपार वैविध्य दिखलाई पड़ा और समाज धीरे-धीरे बाज़ार में बदलता चला गया।

हम जानते हैं कि प्रकृति का परिवर्तनरूपी नियम, स्वयं प्रकृति पर भी लागू होता है। नई सदी का भारत ऐसे ही परिवर्तन का साक्षी है। उसने सूचना क्रांति की ऐसी बयार देखी कि व्यक्ति के सोचने, कहने, रहने, सहने तक पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। ज़ाहिर है, लोकतंत्र का चौथा स्तंभ इससे अछूता नहीं रह सकता था।

पढ़ने-सुनने-देखने से जो यात्रा शुरू हुई थी, वह सोशल मीडिया के आने के बाद दिखाने-सुनाने-पढ़वाने और उस पर बहस करने तक पहुँच गई। अब आदमी उपभोक्ता भी है और उत्पादक भी। उसकी अपनी भाषा है, अपना कंटेंट है। समाज को वह अपनी तरह से प्रभावित कर रहा है। अब वह खुद रिपोर्टर है, खुद एंकर और खुद ही पैनलिस्ट भी।

यहाँ इस तरफ विचार करना होगा कि वह कौन सी ज़रूरत थी जिसने परंपरागत मीडिया के विकल्प को जन्म दिया? क्या सोशल मीडिया का जन्म ही एक विकल्प के तौर पर हुआ था या समय रहते वह विकल्प बन गया? माना जाता है कि 90 के दशक में

शुरू हुई 'सिक्स डिग्रीज़', पहली सोशल नेटवर्किंग साईट थी जिसके यूज़र आपस में संबंध स्थापित कर सकते थे. उसके बाद उसी दशक में ब्लॉगिंग का दौर आया जो ख़ासा लोकप्रिय रहा यानी ज़रूरत पारंपरिक मीडिया के विकल्प की नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी के स्तर पर खुद को आगे ले जाने व आपसी जुड़ाव की थी किंतु धीरे-धीरे इसने अपनी प्रकृति में बदलाव किया और ऐसा माध्यम बन गया कि पारंपरिक मीडिया भी इससे प्रभावित होने लगा।

सूचना क्रांति के दौर में जहाँ हर पल नया सृजन होता है वहाँ संवाद के ऐसे माध्यम सृजित हो गए कि वे धीरे-धीरे आभासी से वास्तविक होते चले गए.

हम कह सकते हैं कि सोशल मीडिया, मीडिया का पुनर्जागरण है। कुछ लोग इस पर आपत्ति उठा सकते हैं लेकिन ख़बरों की भाषा और ख़बरों की खोज पर सोशल मीडिया ने काफी प्रभाव डाला है। अंतर्वस्तु के स्तर पर जन-सरोकार के हाशिए पर जाने से सोशल मीडिया परंपरागत हिंदी मीडिया को चुनौती दे रहा है। सर्वविदित है कि व्यवसाय संचालित सामग्री समाज की बुनियादी समस्याओं को अनदेखा कर देती है। इसे नॉम चोमस्की ने ऐसे समझाया है कि मीडिया पाँच फिल्टर्स द्वारा संचालित होती है-

1. ओनरशिप अर्थात् स्वामित्व, जिसका संबंध मुनाफ़ा कमाने से है।

2. एडवरटाइजिंग यानी विज्ञापन जिसके मूल में उत्पाद और दर्शक है।

3. मीडिया इलीट जिसका मतलब मीडिया के अभिजात्य होने से है, अभिजात्य यानी सरकार, कोर्पोरेट और संस्थानों की लगाम.

4. फ्लैक अर्थात् ऐसी ख़बर जो एजेंडा आधारित न हों, उन्हें हटा दिया जाए।

5. अंतिम है, कॉमन एनिमी यानी साझा शत्रु जिसे निर्मित किया जाता है, खड़ा किया जाता है ताकि सामग्री उसके अनुसार बनाई जा सके।

नॉम चोमस्की का यह सिद्धांत काफी हद तक सत्य के करीब है, ऐसे में सोशल मीडिया की स्व-संचालित सामग्री तुलनात्मक रूप से बुनियादी और किनारे कर दी गईं आवाजों को कान देने में योगदान देती हैं।

दूसरे शब्दों में समझें तो पारंपरिक मीडिया जो 'अबाउट मी' (यानी अपने बारे में) की अवधारणा पर आधारित है, वहीं सोशल मीडिया 'अबाउट यू' (आपके बारे में) की अवधारणा पर काम करता है। इसका सीधा असर लोगों की सोच पर पड़ा। वह समाज जो पारंपरिक मीडिया की 'मैं-मैं' सुन-पढ़ रहा था, अब उसे 'मैं' की जगह 'हम' कहने वाला एक माध्यम मिल गया। अब उसे अपनी बात कहने के लिए किसी रिपोर्टर की बाट नहीं जोहनी पड़ती। वह खुद रिपोर्टर बन जाता है और अपनी भाषा में अपनी बात कहता है।

यहाँ गौर करने की बात यह है कि सोशल मीडिया पर उठने वाले कस्बे की आवाज़ जब राष्ट्रीय स्तर से जुड़ती है तो भाषा और क्षेत्रीयता के स्तर पर प्रायः उनके साथ वैसा सौतेला व्यवहार नहीं होता जैसा हम अख़बारों या टीवी में पढ़ते-देखते-सुनते हैं। मसलन, आमतौर पर भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्र को मुख्यधारा मीडिया में वह जगह नहीं मिलती जो मिलनी चाहिए, किंतु यदि कोई वीडियो या रिपोर्ट सोशल मीडिया पर वायरल या ट्रेंड हो जाए तो पारंपरिक मीडिया उस पर गौर ज़रूर करता है।

यही प्रश्न स्त्री, दलित, थर्ड जेंडर के विषय में भी उठाया जा सकता है कि क्या इनके सशक्तिकरण में सोशल मीडिया, परंपरागत की तुलना में अधिक कारगर है? कितना है कितना नहीं, यह शोध का विषय हो सकता है लेकिन इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता कि सोशल मीडिया सवाल उठाने की छूट देता है, और प्रश्न करने की आज़ादी सशक्त होने की दिशा में पहला क़दम है।

यहाँ पुनः भाषा और विशेषकर हिंदी भाषा के विषय में बात करना आवश्यक है कि परंपरागत और सोशल मीडिया तथा सोशल मीडिया के ही विभिन्न माध्यमों के मध्य इतना भाषिक परिवर्तन कैसे मिलता है। इसका एक कारण एक तो वह टारगेट ऑडियंस या रीडर्स हो सकते हैं जिन्हें मैं 'दर्शक' या 'पाठक' लिख सकता था लेकिन नहीं लिखा क्यों? क्योंकि भारत एक युवा देश है और युवा अपनी गति से भाषा को पकड़ रहे हैं और मीडिया अपनी गति से उन्हें समय के साथ भाषा को लचीला बनाना, उसके जीवित रहने का संकेतक है। भाषाई शुद्धता के नाम पर टीआरपी में

पिछड़ जाना मीडिया के किसी माध्यम को बर्दाश्त नहीं है। वो स्लैंग में भरोसा रखने वाली भाषा में भरोसा रखती है। इसलिए मीडिया के सभी माध्यमों की भाषा, माध्यम के ठहराव के अनुकूल ढल रही है। जैसे, फेसबुक पर शब्दसीमा की कोई बाध्यता नहीं है। लेकिन पढ़वाने की हड़बड़ी है, फोलोवर बढाने का आकर्षण है। ट्विटर की अपनी भाषा है, जो सीमित है किंतु वहाँ कम शब्दों में बात पहुँचाने की चुनौती है जबकि भाषा आराम माँगती है। यह सच है कि इन्टरलिंकिंग के इस दौर में भाषाओं की भी इंटरलिंकिंग हुई है जिसने भाषा को समृद्ध ही किया है। वॉयस-सर्च और यूनिकोड जैसे नवीन सृजनों से मिली लिप्यंतरण की सुविधा सोशल मीडिया में अपनी-अपनी भाषा को लोकप्रिय बनाने में भूमिका निभा रहे हैं।

लेकिन हम जानते हैं कि नवीन सृजन अपने साथ चुनौतियाँ लेकर आता है। सोशल मीडिया के संदर्भ में भी नियंत्रण और अनियंत्रण की बहस आए दिन सामने आती रहती है। यहाँ मैं उस बहस में नहीं जाऊँगा लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा कि न तो नियंत्रण की डोर इतनी कसी हो कि वह टूट जाए और न ही अनियंत्रण की इतनी ढीली कि हवा का झोंका उसे अपने साथ उड़ा ले जाए।

इनके अतिरिक्त ऐसे बहुत से बिंदु होंगे जिन पर सोशल बनाम पारंपरिक हिंदी मीडिया के हवाले से विचार किया जा सकता और करना चाहिए जिन्हें एक लेख में समेटना संभव नहीं है। फिर भी इतना तो सोचा ही जा सकता है कि जिसे हम आभासी दुनिया कहते हैं क्या वह वाकई आभासी है? अगर है, तो इसका प्रभाव इतना वास्तविक क्यों है? और अगर वास्तविक है तो आज तक इसे आभासी ही क्यों कहा जा रहा है? अगर सोशल मीडिया ही सोशल है तो क्या परंपरागत हिंदी मीडिया 'एंटी-सोशल' है? सोचिएगा!

– डी-182, द्वितीय तल, नोएडा सेक्टर-61, उत्तर प्रदेश-201307

❑❑❑

आदिवासी साहित्य की पहली आत्मकथा 'जंगल से आगे'

रंजीता साव

आदिवासी शब्द से तात्पर्य है 'मूलनिवासी'। सामान्यतः किसी विशिष्ट भूभाग में रहने वाले, सामान्य बोली का प्रयोग करने वाले अशिक्षित समूह को आदिवासी संज्ञा दी जाती है। भारतीय संस्कृति कोश के अनुसार "नागर संस्कृति से दूर रहने वाले मूल निवासी जो आर्य और द्रविड़ लोगों के पूर्व भारत तथा भारत के बाहर से आकर जंगल पर्वत में रहने वाले ही आदिवासी कहे जाते हैं।[1]" अंग्रेजी में आदिवासियों के लिए 'Aborigenes'. 'Primitive', 'Indigenous' और 'Savage' शब्द प्रयोग में आते है जिनका अर्थ आदि, अप्रगत, भोले-भाले पिछड़े हुए लोग हैं।

आदिवासी चिंतन से तात्पर्य है उनकी अस्मिता एवं अस्तित्व पर विचार एवं चिंतन करना। आदिवासी समाज के संबंध में डॉ. विनायक तुमराम ने लिखा है- "प्रत्येक सदी में छला-सताया गया, नंगा किया गया और एक सोची समझी साजिश के तहत जंगलों में जबरन भगाया गया एक असंगठित मनुष्य। अपनी स्वतंत्र परंपरा सहित सहस्त्रों सालों से गाँव, देहातों से दूर, घने जंगलों में रहने वाला संदर्भहीन मनुष्य[2]"।

हिंदी साहित्य में आदिवासी समाज का चिंतन एवं लेखन बीसवीं शताब्दी के मध्य से प्रारंभ हुआ और यहीं से जो आदिवासी समाज हाशिए पर था उसे मुख्य धारा में लाने का प्रयास प्रारंभ हुआ। सन् 1952 में देवेंद्र सत्यार्थी ने 'रथ के पहिए' उपन्यास लिखा और उसके पश्चात् आदिवासियों के जीवन के विविध आयामों को लेकर उपन्यास का सृजन होने लगा और यह परंपरा अद्यतन बनी हुई है।

यह एक त्रासद स्थिति है कि आज जब भारत विकासशील स्थिति को प्राप्त कर चुका है तब भारत के आदिवासी, विकलांग स्थिति में जी रहे हैं। देश की कुल जनसंख्या का लगभग पंद्रहवाँ भाग, स्वतंत्रता प्राप्ति के बहत्तर साल बाद भी गुमनामी का जीवन जी रहा है। इनके विकास के लिए करोड़ों अरबों रुपए मंजूर हुए हैं लेकिन इनकी दुर्दशा में विशेष परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। सन् 1947 से अरबों रुपयों की केंद्रीय सहायता आदिवासियों को दी गई परंतु वह उन तक नहीं पहुँच पाई।

आदिवासियों की समस्याओं के संदर्भ में कमीशन ऑफ शिड्यूल्ड ट्राइब्स एंड शिड्यूल्ड कास्ट्स की रिपोर्ट में लिखा है कि "आदिवासी, वन अधिकारियों की वारदातों के खिलाफ थे। इनके तथा इनकी माँ-बहनों के प्रति वन कर्मचारियों द्वारा दुराचार की अनगिनत वारदातों को अंजाम दिया गया। बेईमान ठेकेदारों और भ्रष्टाचारी वन अधिकारियों की मिलीभगत से वन के वन उजाड़े जाने लगे। इस कारण आदिवासियों में गहरा शोक पैदा हो गया कि गैर आदिवासी लोगों द्वारा उनकी संपत्ति लूटी जा रही है।[3]" आदिवासियों का अपना एक अर्थतंत्र रहा है कि वे अपने पुश्तैनी कुटीर धंधें में पारंगत हैं। लोहारगिरी, मधुमक्खी पालन, दोना-पत्तल बिनना, रस्सी, चटाई बुनाई जैसे काम उन्हें विरासत में मिले थे परंतु आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था ने उनके इन पारंपरिक कुटीर उद्योगों को समाप्त कर दिया।

आदिवासियों का जनजीवन इतना जटिल तथा विविधतापूर्ण है कि इस पर विचार करते हुए रमणिका

भाषा ISSN 0523-1418

गुप्ता ने लिखा है कि भारत में आदिवासी जनसमूहों का विस्थापन व पलायन वैसे सदियों पहले से ही जारी है, परंतु इधर विकास के नाम पर बरती गई नीतियों के कारण वे केवल अपनी जमीनों, जंगलों, संस्थानों और गाँवों से ही बेदखल नहीं हुए बल्कि उनके मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन-शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी उनके विस्थापन की प्रक्रिया तेज हो गई। इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ-साथ तथाकथित मुख्यधारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें बेदखल कर देना भी उनके विस्थापन व पलायन का मुख्य कारण रहा है।

विभिन्न विमर्शों पर साहित्य लिखा गया और उनमें से आदिवासी के जीवन पर आधारित साहित्य भी लिखा गया। जैसे कविता, कहानी, उपन्यास आदि। आत्मकथा लेखन के संदर्भ में सीता रत्नमाला द्वारा लिखित 'जंगल से आगे' ऐसी पहली आत्मकथा है जो उनकी जातिगत विशेषताओं को व्यक्त करती है।

आत्मकथा का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद अश्विनी कुमार पंकज ने किया है। इस पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं कि- "सीता रत्नमाला की कहानियाँ, नाटक और आत्मकथा, यानी कि समूचा लेखन भारत और कमोबेश समूची दुनिया में अप्राप्य है। इसकी एक प्रति नेशनल लाइब्रेरी ऑफ कोलकाता में उपलब्ध थी जिसे हम बड़ी मुश्किल से हासिल कर पाए। जहाँ तक हमारी जानकारी है इसकी एक और प्रति भारत के सिर्फ इंडियन काउंसिल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च (आई सी एस एस आर), नई दिल्ली की लाइब्रेरी में है। परंतु 'द पिक ऑफ टूडेज शार्ट स्टोरिज (1962)' कथा संकलन जिसमें सीता रत्नमाला की पहली कहानी छपी है, ब्लैकवूड्स मैगजीन 1968 के दोनों अंक, जिसमें उनकी अन्य दो कहानियाँ छपी हैं और नाटक 'लेपैंटो' (1971) की प्रतियाँ है। संभवत: भारत में कहीं नहीं है।[4]" (पृ: 6)

अत: भूमिका से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सीता रत्नमाला की यह आत्माभिव्यक्ति बड़ी मुश्किल से प्राप्त की गई है। जंगल से आगे के पहले अध्याय में पंकज जी स्पष्ट करते हैं कि- "अंग्रेजी साहित्य के शोधकर्ताओं, इतिहासकारों और आलोचकों ने शायद इसीलिए 'बियोंड द जंगल' को भारत की अंग्रजी आत्मकथाओं के प्रचलित ढाँचे से बिलकुल भिन्न माना है जिसमें व्यक्ति गौण है और समुदाय व समष्टि महत्वपूर्ण।" यह प्रश्न उठाते हैं कि- "यह कैसी विडंबना है कि एक लेखिका जो महज 50 साल पहले लिख रही थी, और जिसका लेखन दुनिया में अंग्रेजी साहित्य और लेखकों को छापने वाला सबसे पुराना और प्रतिष्ठित प्रकाशन गृह 'ब्लैकवूड एंड संस' एडनबर्ग और लंदन ने प्रकाशित किया, (जिससे जॉन बुकान, जॉर्जटॉमकिंस चेसेनी, जोसेफ कॉनराड, जॉर्ज इलियट, ई.एम.फोस्टर, जॉन हेनिंग स्पैक, एंथनी ट्रोलीप आदि विश्वविख्यात लेखक छपे) उसके बारे में जानने की जहमत किसी ने नहीं उठाई और न ही 1968 में प्रकाशित उनकी आत्मकथा, जो भारतीय साहित्य में किसी आदिवासी द्वारा लिखी गई पहली आत्मकथा है, पर साहित्य में जो चर्चा होनी चाहिए थी, नहीं हुई।[6]" आगे वह इस संबंध में और भी लिखते हैं कि "हालाँकि जब 'बियोंड द जंगल' छपी थी, तब दुनियाभर के अखबारों और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उसकी समीक्षा अंग्रेजी के महत्वपूर्ण आलोचकों ने लिखी थी। भारत के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में 6 अक्तूबर 1968 को प्रकाशित समीक्षा का शीर्षक है- 'डीप ऐज फर्स्ट लव।' छपते ही अंग्रेजी साहित्य में अमिट छाप बनाने वाली यह आत्मकथा आखिर क्यों बाद के दिनों में विस्मृत कर दी गई। यह सवाल भारतीय साहित्य और उसके शोधार्थियों के लिए ही नहीं वरन् आदिवासी साहित्यकारों के लिए भी एक गंभीर चुनौती है।[7]"

अत: कहा जा सकता है कि सीता रत्नमाला की यह आत्मकथा आदिवासी साहित्य के संदर्भ में प्रथम आत्मकथा होने का दावा करती है। परंतु तत्कालीन परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार थी कि किसी साहित्यकार या आलोचक ने इस प्रथम आदिवासी आत्मकथा की न ही खोज की और न ही इस संदर्भ को चर्चा का विषय बनाया। आदिवासी साहित्य जो कि तत्कालीन समय के हाशिए का साहित्य था पर अब यह केंद्र का साहित्य बन चुका है। विमर्श का मुद्दा बन चुका है। अत: वर्तमान में इस प्रथम आत्मकथा की महत्ता को देखते हुए इसे पुन: साहित्य में चर्चा का विषय बनाया जा रहा है।

प्रथम अध्याय में सीता रत्नमाला अपने बीते हुए बचपन के दिनों को याद करती है। दक्षिण-पश्चिम के मानसून ने जिन दिनों पहाड़ी नदियों को भरते हुए उनकी धाराओं को तूफानी बौछारों में बदल दिया था, तब वह पैदा हुई थी। तब नदियों, खेतों से दलदली मिट्टी और घास को साथ लिए-लिए पहाड़ों पर छलांग मारती, उछल-कूद करती और चट्टानी बाधाओं को धकेलती सैकड़ों फीट गहरी खाई में गिर रही थी। उनका गाँव एक ऐसे जंगल में था जहाँ पुरुष, महिलाएँ और बच्चे, अन्य जानवर भी, घने पेड़ों और पहाड़ों के सामने बहुत छोटे थे। उनके माँ-अप्पा और उनके कबीले का जीवन प्रकृति के सृष्टिकर्ता पर निर्भर था। जंगल की देखभाल करने वाले वह 'रंगा', जो पहाड़ की शिखर पर रहता था उसका नाम था रंगास्वामी शिखर। इरुला लोगों का सर्वोच्च आराध्य 'इरुला' उनके नाम पर ही आदिवासी समुदाय भी इसी नाम से जाने जाते थे। इरुला यानी गहरा काला अंधेरा। गहरे अंधेरे जंगल में रहने वाले काले लोग। शरीर का काला रंग एवं प्राकृतिक परिवेश इनकी मूल पहचान थी। प्रकृति में रहने के कारण ये औद्योगिक क्रांतिवाली दुनिया से बिलकुल ही अलग थे। यहाँ तक समय के चक्र के बारे में भी सूरज की ताजगी एवं तेज से ज्ञात किया जाता है। जैसे कि इरुला कहती हैं- "आमतौर पर मैं पेड़ों से छनकर आने वाली सूरज की पहली किरणों से जाग जाया करती थी।[8]"

इरुला अभी अपनी बाल्यावस्था में ही होती है कि उसकी माँ का देहांत हो जाता है और बालपन में वह इस घटना को बहुत ही सामान्य भावुकता से संप्रेषित करती है। "कुछ गाँव वाले मेरी माँ को घेरे खड़े थे। बिलकुल खामोश। बस चुपचाप उधर देख रहे थे जिधर वह लेटी हुई थी। मैं डरी नहीं थी।.... मैं उठकर उसके पास गई और धीरे से बोली 'अम्मी'। वह मेरी तरफ मुड़ी और अजीब अनजानी-सी नजरों से मुझे देखा, पर बोली कुछ भी नहीं।" अगले पृष्ठ पर वह इस घटना को विस्तार देती है- 'अम्मा सबसे लंबी यात्रा पर जा रही है। अप्पा बोले, "मैंने तेल दे दिया है जो मौत की खौफनाक अंधेरी नदी को पार करने में उसको हिम्मत देगी और एक सिक्का भी, जो उसे भयानक नदी पर पुल के अभिभावक को चुकाना होगा।[9]"

अपनी सामान्य शिक्षा के संबंध में वह लिखती है कि- 'मेरी पढ़ाई स्कूल पहुँचने के पहले ही शुरू हो चुकी थी। पहली बात जो मैंने सीखी, वह है वर्ग और जाति।" अतः स्कूलों में भी जाति प्रथा एवं रंग भेद इस प्रकार फैला हुआ था कि इरुला भी इसका शिकार बनती है। स्कूल की हाउस मिस्ट्रेस इरुला को झल्लाकर संबोधित करती है कि- 'तुम बेहूदा लड़की'[10] जो सच में शैक्षणिक संस्थान के लिए अपमानजनक है।

बदागा जाति के बारे में वह लिखती है- "बदागा लोग चार सौ साल पहले नीलगिरी आए थे और खेती करते हुए पूरे पठार पर फैल गए थे। वे स्थानीय और पुराने आदिवासी के साथ घुलमिल गए थे और उन्होंने अपने रस्म- रिवाजों को उन तक पहुँचा दिया था। कोटा आदिवासी लोग पहाड़ों के और इरुला लोग जंगलों के संगीतकार थे। इरुला सबसे प्राचीन आदिवासी हैं, इतने प्राचीन कि उनकी उत्पत्ति का इतिहास कल्पना से भी परे है।[11]"

इरुला, जो कि शहरी स्कूल से शिक्षा प्राप्त कर रही थी, उसके लिए विवाह एक सवाल बन बैठा था। एक तरफ वह वैवाहिक होने का स्वप्न देखती है तो दूसरी तरफ यह भी सोचती है कि गाँव की अन्य लड़कियों की तरह उसे कम उम्र में विवाह के बंधन में नहीं बंधना है। विवाह जैसी अनुभूति के दिवास्वप्न का इरुला बहुत ही सहजता से उल्लेख करती है:- 'वह कौन होगा,' कैसा? ऐसा सोच-सोचकर वह बहुत रोमांचित और उम्मीद से भरी हुई थी।

इरुला की स्कूल की पढ़ाई अब समापन पर थी। वह लिखती है कि "अच्छे से बड़ी होकर मैं वयस्क दुनिया में प्रवेश करने के लिए तैयार थी। एक मुक्त और स्वतंत्र जीवन जीने के लिए। फिर भी मैं स्कूल का आश्रय छोड़ने से डर रही थी।" इरुला अपने कॅरियर के संबंध में अपने हेडमिस्ट्रेस से बात करती है एवं इस छोटी से मुलाकात मे इरुला सीता नर्स बनने के कॅरियर को स्वीकार करती है। इस संबंध में हेडमिस्ट्रेस उसकी काफी मदद करती है ताकि उसे प्रशिक्षण प्राप्त हो सके। इसके लिए वह सारे कार्यक्रम का पूर्व में ही निर्धारण करती है। इरुला अभिव्यक्त करती है कि- "प्रशिक्षण की शर्तों ने मुझे चिंतित नहीं किया। मैं तो यही जानकर बहुत उत्साहित थी कि मैंने जो कॅरियर चुना है, वह मुझे

आजादी देने वाला था। इस बात की आजादी थी कि मैं जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकती हूँ, वह मुझे आजादी देने वाला था।[12]" आगे वह लिखती हैं कि 'यह अपने आप में एक अद्‌भुत अहसास था, लेकिन वे हमेशा मेरी पहुँच से परे थे। मैं हमेशा पहाड़ों से घिरी हुई थी और सोचती थी कि मैं कभी भी इनसे बाहर नहीं निकल पाऊँगी।[13]" इरुला सीता रत्नमाला को दी गई सूचियों में से किसी एक शहर का चयन करना था और वह उसी शहर में रहना चाहती थी जिस शहर में डॉ. राजन अपने पेशे से जुड़े हुए थे। इरुला सीता लिखती है- "उसी शहर में रहने के लिए जिसमें वो रहता है। उसी हवा में सांस लेने के लिए जिसमें वह भी लेता है। उसे फिर से देखने के लिए। हालाँकि चिट्ठियाँ लिखना बंद हो जाएगा। क्योंकि तब इसकी जरूरत ही नहीं रहेगी। इस ख्याल ने मुझे क्षणिक ही सही, पर जबरदस्त पीड़ा दी थी।[13]" इरुला के लिए ये चिट्ठियाँ केवल औपचारिक संप्रेषण का माध्यम नहीं थीं, अपितु इसके माध्यम से वह उन भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं जिसे दिन-रात वह मन में रखती थी। "हर हफ्ते के अंत में जो पत्र मैं उसे भेजती थी, उसमें वही शब्द और वाक्य होते थे, जिन्हें मैं रोज मन ही मन उससे बातें करती हुई अपने दिमाग में जमा किया करती थी[14]"

एक ही शहर में रहने के कारण सीता हर सप्ताह डॉक्टर कृष्णा राजन से मिलती इसके बावजूद वह लिखती है कि- "एक तरफ जब मेरे भीतर खुशी और उम्मीद की भावना जोरों से उछाल मार रही होती थी, किसी भरी हुई नदी की तरह, तो ठीक उसी समय मैं उसको लेकर शारीरिक तौर पर एक दर्द से गुजर रही होती थी। ऐसा कोई नहीं था जिससे मैं अपने प्यार की बातें कह सकती थी। इसलिए मैं खुद से बातें करती.. .मैं जिस अपने आप से बात करती उसे 'जिन्क्स' कहती थी।[15]" और यही भीतर की आवाज थी जो लगातार सीता को रोकती थी कि डॉ. राजन कभी भी इरुला सीता से विवाह के बंधन में नहीं बंधेंगे। एक तरफ कार्य का दबाव और दूसरी तरफ डॉ. राजन को लेकर विशेष चिंता ने सीता की नींद को खत्म कर दिया था। डॉ. राजन की मदद से वह नेत्र विशेषज्ञ डॉ. राव से मिलती है जो डॉ. राजन के ही खास मित्र थे। इस चिकित्सा के दौरान डॉ. राव उनके (सीता रत्नमाला एवं डॉ. राजन के) संबंधों को लेकर स्पष्ट करने की कोशिश में डॉ. राजन के एक पुराने पत्र को पढ़ते हैं- 'आखिर में मैं यह जान ही गया कि वास्तव में मानव स्वतंत्रता क्या होती है। वो है हमारी नस्ल का सच्चा जानवर बिना किसी अवरोध का, किसी भी स्थिर अनुष्ठान का चिंता से परे, जिसे नैतिक रूप से अच्छे और बुरे के बीच अंतर का कोई ज्ञान नहीं, जिसके पास कोई झूठा मूल्य नहीं है।[16]" इसे पढ़ने के बाद डॉ. राव सीता को कुछ बताते हैं "अच्छा हम एक ऐसे आदमी को जानते हैं जो गहरी असहमति के बावजूद अपने परिवार से कभी नहीं टूटा है।... बहुत शिद्‌दत के साथ जवान औरत की ओर आकर्षित होता है, फिर भी वह उससे शादी करने के लिए तैयार नहीं है और न ही कभी वह ऐसा कर पाएगा। हिंदू शास्त्रों में सबसे बड़ा अपराध है नस्लों की मिलावट। रक्त मिश्रण यह बात इतनी अच्छी तरह से उसके दिमाग में बचपन से ही सांस्कारिक तौर पर पैठी हुई है कि इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कितना तर्कसंगत है और नि:संदेह, इस शिक्षण को वह मूल रूप से जीवन के एक अपरिवर्तनीय नियम के रूप में स्वीकार करता है।[17]" डॉ. राव अपनी बात को बढ़ाते हुए सीता रत्नमाला को यह परामर्श देते हैं कि 'मैं समझता हूँ। लेकिन जरा अपने भविष्य के बारे में सोचो। तुम युवा हो। तुम्हारा जीवन सभी तरह के रोमांच के साथ तुम्हारे आगे पड़ा हुआ है।[18]" इस प्रकार डॉ. राव निष्पक्ष रूप से इरुला सीता को डॉ. राजन के बारे में अत्यधिक भावुक होने से रोकते हैं। कहीं न कहीं जाति प्रथा को लेकर जो भय इरुला के मन में शुरू से ही था कि शायद वह इस कारण डॉ. राजन को कभी न पा सकेगी। सीता रत्नमाला का स्वप्न एक दिवास्वप्न ही बनकर रह जाता है। इस घटना के पश्चात सीता रत्नमाला निश्चय करती है कि वह अपनी इच्छा और चाहत के खिलाफ, खुद को एक जोरदार धक्का देते हुए, जिसके लिए उसके पास कोई तर्क नहीं था, उसने फैसला कर लिया कि वह डॉ. राजन से संबंध तोड़ कर दूर चली जाएगी।

अगली सुबह वह मैट्रन से छोटी सी मुलाकात करती है और लंबी छुट्टी पर जाने की अनुमति प्राप्त करती है। साथ ही वह डॉ. राजन को भी पत्र के माध्यम से खबर करती है। परंतु डॉ. राजन एक दिन का वक्त

माँगते हैं। इस मुलाकात में डॉ. राजन सीता से अपनी उन भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं जिसे आज तक वे स्वयं से मुक्त नहीं कर पाए थे। वह स्पष्ट करते हैं कि जब सीता छोटी सी उम्र में अपने इलाज के लिए उनके पास आई थी तब वह बहुत ही नाजुक स्थिति में थी। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। पर उसकी जीने की तीव्र जिजीविषा, प्राकृतिक जीवन की तरह उसका लालन-पालन एवं पिता के प्रति उसके प्यार ने उसे अंधेरी मृत्यु के परदे से प्रकाशमान जीवन के हिस्से में खींच लाती हैं अब यह सपनों वाली बच्ची (सीता) बड़ी हो चुकी होती है। उसने कभी भी डॉ. राजन को पिता के तौर पर नहीं देखा था और इसकी जरूरत भी उसको नहीं थी। इसलिए जब स्त्रीपन का अहसास हुआ तो उसने मुझे प्रेमी की तरह देखा। अंत में डॉ. राजन यह स्वीकार भी करते हैं कि वे सीता की भावनाओं को बहुत ही सहजता से स्वीकार कर चुके थे। इस बातचीत के दौरान इरुला सीता डॉ. राजन को स्वयं से ज्यादा पीड़ा में देखती है। डॉ. राजन का यह कहना कि "मुझे पता था कि स्वीकार करना अपने आपको महज मूर्ख बनाना है।[19]"

इरुला सीता रत्नमाला और डॉ. राजन की यही अंतिम मुलाकात थी। इरुला सुबह की ट्रेन से अपने गाँव इस भाव के साथ वापिस चली जाती है कि:- 'आदिवासियों की स्मृतियाँ प्राचीन काल में खोई हुई हैं और जिसे कोई भी नहीं बता सकता है। फिर भी उनकी आत्मा सदियों से यहाँ है और मैंने फिर से उन सबके और अपने अप्पा के साथ खुद को एक होते हुए महसूस किया।[20]"

साहित्य की पृष्ठभूमि पर यह अब तक की प्राप्य एकल आत्मकथा है। आदिवासी लेखकों की आत्मकथ्यात्मक शैली में अन्य आत्मकथा प्राप्त नहीं हो पाई है।

अत: आदिवासी जीवन शैली के संदर्भ में यह सत्य प्रतीत होता है कि उनकी दुनिया विकास एवं तकनीकी उपलब्धियों से इतनी दूर है कि वे कभी विकास की मुख्यधारा में आ ही नहीं पाएँ। सीता रत्नमाला हालांकि उन्होंने प्रयास तो किया कि वह प्रगतिशील विकसित समाज का हिस्सा बन पाए पर इस सामाजिक ढाँचे ने उनकी जातिगत व्यवस्था को ठुकरा दिया है। स्वच्छ एवं सरल हृदय की सीता इस व्यवस्था से परिचित होते हुए भी स्वयं को अपरिचित सा महसूस करती है और अंतत: विकसित समाज को छोड़ देती है एवं हमेशा के लिए रंगा पर्वत पर स्थित अपने गाँव की दुनिया में स्वयं के लोगों में स्वयं की सांस्कृतिक दुनिया में वापसी कर जाती है।

सीता रत्नमाला की यह आत्मकथा एक आदिवासी जीवन के रूप, जीवन एवं यथार्थ को प्रकट करते हुए तत्कालीन पुरुषसत्तामक समाज पर भी प्रश्न करती है। सदियों से चली आती हुई जातिगत व्यवस्था एवं ऊँच-नीच ने जहाँ एक ओर समाज में वर्गीकरण के भाव को पैदा किया है वहीं मनुष्यता जैसे परम भाव का विनाश भी किया है। डॉ. राजन सीता के प्रति प्रेम जैसे उदात्त भाव को प्रकट करते हैं पर कहीं न कहीं वे इस पुरुषसत्तात्मक समाज से जुड़े होने के कारण उसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "समाज के कल्याण के लिए समाज को एक शृंखला में बांधे रखने के लिए व्यक्ति विशेष की स्वाधीनता को एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर रखने की बड़ी जरूरत है। बिना ऐसा किए काम ही नहीं चल सकता। राजा और प्रजा, स्त्री और पुरुष, गुरु और शिष्य इन सभी के अधिकार यदि एक हद के भीतर नहीं रखे जाएँ, यदि वे महदूद न कर दिए जाएँ, तो मनुष्य समाज को छिन्न-भिन्न होते देर न लगे।[21]"

महावीर प्रसाद द्विवेदी के इन विचारों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि 1968 में प्रकाशित यह आत्मकथा कहीं न कहीं तत्कालीन पंगुवादी विचारों की बलि चढ़ी थी। इसलिए किसी ने इस पर चर्चा तक नहीं की।

अत: कहा जा सकता है कि सीता रत्नमाला की आत्मकथा आदिवासी आत्मकथा के संदर्भ में जहाँ एक प्रथम आदिवासी आत्मकथा होने का दावा करती है वहीं एक साथ वह पंगुवादी विचारों, जातिगत भेदभाव, कुरीतियों इत्यादि की भी आलोचना करती है। सीता का अपनी स्वयं की दुनिया में वापस जाना इस बात को दर्शाता है कि वह मानव की इस धरा पर मानवतावादी विचारों को शून्य पाती है। एकता और प्रेम-भाव की शून्यता है।

वृंदा करात का कहना है कि- "हालांकि भारत के संविधान में महिलाओं के लिए समान अधिकारों और अवसरों का प्रावधान किया गया है। लेकिन ये अधिकार

महज एक औपचारिकता बनकर रह गया हैं आज भी अधिकांश महिलाएँ आर्थिक रूप से इतनी ज्यादा पराधीन हैं और सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से इतनी शोषित हैं कि वे इस औपचारिक अधिकारों का कोई इस्तेमाल भी कर सकने की स्थिति में नहीं हैं।[22]"

अत: सीता रत्नमाला जो कि एक आदिवासी समुदाय से निकलकर अपनी पहचान बनाने की पूरी कोशिश करती है परंतु परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की होती हैं कि उसे स्वयं अपने घर वापिस जाना बेहतर विकल्प प्रतीत होता है। सामाजिक स्तर पर वह शुरू से ही वर्ग भेद का शिकार होती है। स्कूल में भी कुछ शिक्षक उसे 'बदागा' कहकर पुकारते हैं। जब वह प्रेम में पड़ती है तो इसे इसी बात का भय होता है कि वह ब्राह्मण कुल द्वारा स्वीकारी नहीं जाएगी। अंतत: उसके साथ यही होता है। राजन पेशे से 'डॉक्टर' होते हैं। वे शिक्षित परिवार से होते हैं। वे स्वयं आदर्श व्यक्ति के रूप में व्यवहार करते हैं। परंतु जब सामाजिक वर्ग भेद का प्रश्न उठता है तब यह समाज का आदर्शवादी शिक्षित व्यक्ति भी चुप्पी को पसंद करता है। वह भावनात्मक होता है। स्वयं की संवेदना को व्यक्त करता है। परंतु सीता रत्नमाला को हक नहीं दिला पाता है। कहा जा सकता है कि यह आत्मकथा जहाँ एक ओर आदिवासी जीवन-शैली का परिचय देती है, वहीं तत्कालीन समाज की पंगुवादी विचारों का भी परिचय देती है। तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, भेदभाव का भी परिचय देती है। शायद इसके यही विचार इसे स्वयं को काल के कठघरे में गुम कर देती है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संस्कृति कोश, संपादक- महादेव शास्त्री, खंड-1 प्रकाशन प्रोफिशंट पब्लिशिंग हाउस, पृ. 428
2. हाशिए वैचारिकी, संपादक- उमाशंकर चौधरी, प्रकाशक- अनामिका, पृ. 250
3. आदिवासी विकास से विस्थापन, संपादक- रमणिका गुप्ता, राधाकृष्णन प्रकाशन, पृ. 102
4. जंगल से आगे, सीता रत्नमाला, अनुवादक : अश्विनी कुमार पंकज, प्रथम संस्करण : नवंबर 2018, पृ. 6
5. वही, पृ. 8
6. वही, पृ. 9
7. वही, पृ. 9
8. वही, पृ. 33
9. वही, पृ. 34
10. वही, पृ. 34
11. वही, पृ. 11
12. वही, पृ. 196
13. वही, पृ. 196-197
14. वही, पृ. 198
15. वही, पृ. 225
16. वही, पृ. 245
17. वही, पृ. 246
18. वही, पृ. 246
19. वही, पृ. 252
20. वही, पृ. 255
21. स्त्रियों का सामाजिक जीवन एवं अन्य निबंध, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, संपादक : ओमलता, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013, पृ. 95

22जीना है तो लड़ना होगा, वृंदा करात, सामयिक प्रकाशन : 2007, पृ. 6

– द्वारा दिनेश प्रसाद साव, दिनेश भंडार, 126/2/1, बेलिलियस रोड, हावड़ा, कोलकाता, पश्चिम बंगाल-711101

❑❑❑

जीवट

योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

जिंदगी के रंग भी बड़े निराले होते हैं। कब, कौन सा रंग आपको अनायास ही रंग दे, यह पता ही नहीं चलता और तब आदमी भौचक्का सा खड़ा रह जाता है। बस, यही तो हुआ था मेरे साथ भी, जब अनायास रजनी मेरे सामने आकर खड़ी हो गई थी और बड़ी ही बेतकल्लुफी से बोली थी- "अरे क्या आप शेखर हैं?.....शेखर सिन्हा?"

और तेज दौड़ रही बस में अचानक लगे ब्रेक से जो जोरदार झटका लगता है, बिलकुल वैसा ही झटका सा महसूस करता मैं लगभग चीख सा पड़ा था- "क्या ...क्या तुम रजनी... रजनी गुप्ता हो?"

सच कहूँ, रजनी ने जब खुशी से भर कर मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा था- "अरे, शेखर! तुम आज यहाँ कैसे?" तो मैं आश्चर्य में डूब गया था और कोई दस साल का अतीत मेरी आँखों के सामने घूमने लगा था।

एम.एस.सी. फर्स्ट ईयर में रजनी ने भी दाखिला लिया था और वह बेहद शांत मानी जाती थी। क्लास में बिलकुल गुप-चुप रहना और केवल पढ़ाई से मतलब रखना ही रजनी की पहचान थी। मैं भी कम ही हँसता-बोलता था, लेकिन दोस्तों के साथ रहकर हँसी-मज़ाक में हिस्सा तो लेता ही था। रजनी पढ़ने में तेज़ थी और परिवार में शायद उसे बोलने के मौके कम मिलते हों, इसी कारण कुछ दबे से स्वभाव की लगती थी।

फर्स्ट ईयर में उसने फर्स्ट क्लास मार्क्स पाए, लेकिन फाइनल में दाखिला नहीं लिया था। मैं फाइनल में आया, तो रजनी को क्लास में न पाकर कुछ अजीब सा तो लगा था, लेकिन कोई पूछताछ करने की कोशिश मैंने नहीं की। मैंने 'गोल्ड मेडल' लेकर एम. एस. सी. में यूनिवर्सिटी में टॉप किया तो तीन एडवांस इंक्रिमेंट्स के साथ दिल्ली विश्वविद्यालय में लेक्चरर बनकर ग्वालियर से दिल्ली चला आया था...।

और आज दस साल बाद... मेरे साथ पढ़ी हुई रजनी मुझे अनायास उसी कॉलेज में मिलकर, मेरे हाथों को पकड़े खड़ी थी। मैंने पूछा- "ये तो बताओ रजनी! तुम कर क्या रही हो? हम दस साल बाद मिल रहे हैं न?..... कमाल है कि तुमने मुझे पहचान लिया?"

और... दस साल पहले की शांत और गुपचुप सी रहने वाली रजनी तपाक् से बोली- "क्या बताऊँ शेखर। जिंदगी की लहरों पर अपने जीवन की नाव को डूबने से बचाने में लगी हुई हूँ।... फर्स्ट ईयर पूरा करके जब मैंने एम.एस.सी. फाइनल करने की सोची, तो पापा ने शादी कर दी। रोई-धोई तो बहुत, लेकिन करती क्या? हमारे समाज में तो लड़की गाय जैसी होती है न?.... बस, फाइनल छोड़कर मुझे शादी करनी पड़ी[1]

रजनी बता रही थी और मैं चुपचाप खड़ा सुन रहा था कि रजनी कुछ गंभीर होकर बोली-"और अब देखो न शेखर। जहाँ से पढ़ना छोड़ा था, वहीं नियति मुझे दोबारा ले आई है।.... आज मेरा एम.एस.सी. फाइनल का प्रैक्टिकल है। सुना है, एग्ज़ामिनर कोई दिल्ली यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर है... अब मैं तो ज्यादा कुछ पढ़ भी नहीं पाई हूँ और यहाँ सब बता रहे हैं कि एग्ज़ामिनर बेहद सख्त और टेढ़ा है।"

भाषा ISSN 0523-1418

अभी भी रजनी ने मेरे हाथों को पकड़े रक्खा था और बड़े ही बेतकल्लुफ अंदाज में बातें करती जा रही थी। तभी खिलखिलाकर बोली– "अरे, मैं भी क्या हूँ कि पागलों की तरह यहाँ ग्राउंड में तुम्हें पकड़कर अपनी रामकहानी सुनाने लगी हूँ और तुम से कुछ पूछा तक नहीं?.... आज, तुम कैसे यहाँ आए हो?.... तुम्हारी तो तब फर्स्ट क्लास आई थी न?..... फिर बाद में कहाँ रहे? अब क्या कर रहे हो?... कुछ तो बताओ अपने बारे में मुझे?"

मैं विचारों के तूफान में उलझ गया। एक बार तो मन में आया कि रजनी को बता ही दूँ कि दिल्ली से उसका प्रैक्टिकल लेने मैं ही आया हूँ, लेकिन जाने क्यों, मेरे मन ने मना कर दिया।

मैंने रजनी से सच नहीं कहा और बोला– "अरे. ... बस, यूँ ही एक पुराना सर्टिफिकेट लेना था, इसलिए आया हूँ, लेकिन रजनी। तुम दस साल बाद एम.एस.सी. फाइनल क्यों दे रही हो?"

अब रजनी कुछ गंभीर सी हो गई थी। मेरे हाथों को छोड़कर, अनायास छलक आए आँसुओं को पोंछते हुए बोली– "शेखर। जिंदगी का उधार चुकाने में लगी हुई हूँ मैं। मम्मी–पापा ने इंजीनियर पति–देकर चाहा था कि बेटी की जिंदगी बहारों से भर दी। सचमुच, जिंदगी में बहार थी भी, लेकिन.... जाने किस की नज़र लगी कि एक दुर्घटना में मेरे पति मुझे और मेरी बेटी को बेसहारा छोड़कर चले गए।..."

मुझे ज़ोर का झटका सा लगा और मेरे मुँह से अनायास ही निकला– "ये क्या कह रही हो रजनी?... मिस्टर गुप्ता...?" और रुँधे गले से रजनी बोली..." हाँ, शेखर। मौत मेरे पति को मुझ से छीन ले गई.... तीन दिन तक आई.सी.यू. में वे मौत से जूझते रहे, लेकिन ... मौत जीत गई, शेखर! हम माँ–बेटी बेबस और बेसहारा रह गए।.... पापा–मम्मी भी अब दुनिया में नहीं हैं और मेरे पति के परिवार में तो कोई था ही नहीं। अब तो बेटी मिट्ठू को पालना है, इसलिए छूट गई एम.एस. सी. पूरी कर रही हूँ। उनके जाने के बाद मुझे एक विद्यालय में टी.जी.टी की नौकरी मिल गई है, जहाँ एम. एस. सी. करने पर मैं पी.जी.टी. बन सकती हूँ।"

मैं चुपचाप खड़ा सुन रहा था रजनी के जीवन का वह सच, जो किसी भी औरत को तोड़ सकता है, लेकिन मैं देख रहा था कि जिंदगी के थपेड़ों को झेलती हुई रजनी अपने पति को खोकर टूटी नहीं, बल्कि उनकी धरोहर के रूप में मिली अपनी बेटी का जीवन संवारने के लिए दस साल पहले छोड़ दी गई पढ़ाई को पूरी करने के लिए दोबारा एम.एस.सी. फाइनल की परीक्षा देने आई है। मैं रजनी का जीवट देखकर कितना प्रभावित था, कितना सम्मान उसके प्रति महसूस कर रहा था, यह बताए बिना मैं उसे लेकर सामान्य बात करता रहा।

प्रैक्टिकल का समय हो रहा था। मैंने रजनी से कहा– "आओ, तुम्हें मैं लैब तक छोड़ दूँ। प्रैक्टिकल के बाद पता नहीं तुम से मिलना होगा या नहीं?" तो रजनी बोली– "अरे वाह, मिलना क्यों नहीं होगा?" मैं प्रैक्टिकल देकर आती हूँ और तुम भी अपना काम निबटा लो... ये भला कैसे हो सकता है कि तुम मेरे घर न चलो?"

और... मैं रजनी को लैब के बाहर छोड़कर डिपार्टमेंट में चला आया। चाय पीकर इंटरनल एग्जामिनर के साथ मैं प्रैक्टिकल लेने लैब में आया, तो सारे विद्यार्थी खड़े हो गए। इंटरनल एग्जामिनर ने कहना शुरू किया।...." आज हमारे लिए बड़े गौरव की बात है कि हमारी संस्था से पढ़कर यूनिवर्सिटी टॉप किया और अब दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर के रूप में नाम कमा रहे हैं। आप प्रोफेसर शेखर सिन्हा हैं और हमारे लिए आपका परीक्षक के रूप में आना सचमुच गर्व की बात है।"

मैंने रजनी की ओर देखा। रजनी कुछ देर पहले जिस तरह मेरा हाथ पकड़े बेतकल्लुफी से बतिया रही थी, अब अचानक बहुत गंभीर सी हो गई थी। प्रोफेसर लाल मेरे बारे में बता रहे थे, लेकिन मैं रजनी को देख रहा था कि अनायास रजनी से मेरी नज़र मिल गई। लगा कि रजनी की आँखों में एकबारगी ही कई–कई भाव आ–जा रहे थे। मुझे लगा कि रजनी कह रही है कि 'तुम तो बड़े धोखेबाज़ निकले.... मुझे बताया तक नहीं कि तुम प्रैक्टिकल लेने आए हो?... अरे, मैं संभलकर बोलती न?.... मैं तो तुम्हे अपना वही क्लास–फैलो समझ रही थी और तुमने... तुमने मुझे यूँ धोखे में रक्खा?.... धोखेबाज़.... चीट कहीं के।

तभी प्रोफेसर लाल ने मुझे सम्मान के साथ दो शब्द कहने के लिए आमंत्रित किया। मैं वहीं खोया हुआ

सा खड़ा हुआ और एक बार फिर से रजनी की ओर देखा, तो पाया कि रजनी गंभीर है, उदासी चेहरे पर छा गई है।

मैंने कहना शुरू किया– "हम सब जिंदगी के सागर की लहरे हैं। कभी मिलते हैं तो कभी बिछड़ जाते हैं। इस कॉलेज के कण-कण में मेरी यादें बसी हुई हैं। मैं आज स्वयं को भाग्यवान मानता हूँ कि यहाँ अपने भूले बिसरे अतीत से मिलने का मौका मुझे मिला है। मैं आपका हूँ और आपका ही रहूँगा।"

अपनी बात कहकर बैठा, तो मैंने देखा कि रजनी मुझे गर्व भरी नज़रों से देख रही है। मैंने अपनी उंगलियों को 'वी' की मुद्रा में जोड़कर माथे से लगाया और रजनी की ओर देखा। मेरी आँखों ने रजनी से कहा– "डरो मत। तुम्हारी जीवट को मैं सलाम करता हूँ। आज तुम्हारी विजय होगी।"

और रजनी की निश्छल मुस्कान देखकर मुझे विश्वास हो गया कि जिंदगी से जूझने वाली रजनी की जीवट ने मेरा सलाम कुबूल कर लिया है।

– पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667

❑❑❑

अधूरी कहानी

हरपाल सिंह 'अरुष'

शाकेश्वर को रिटायर हुए पाँच वर्ष हो गए थे। वह अपने आपको एकदम बूढ़ा समझने लगा था। डरता रहता था कि कहीं अर्थोराइटिस न हो जाए। शुगर तो दिवास्वप्न की तरह आँखों के आगे तैरती रहती थी। दाँतों को बचाने के लिए दातुन कूँचकर संतुष्ट होता। उसका मानना था कि ब्रुश रगड़कर मसूढ़ों का अपरदन बहुत कर चुका। और थोड़ा अपरदन होते ही दाँत अपने उलुखलों से बाहर आ जाएंगे। शरीर के प्रति सबसे कम संबंध दाँत ही निभाते हैं। पचास की उम्र आते ही हिलने लगेंगे। बेवफा कहीं के। बेवफा ही सही पर एक साथी तो चाहिए। हाँ, आँखों के बिना तो बुढ़ापा अंधेरे में पड़ी चाँदी जैसा होकर रह जाता है। इन सारे विचारों को संभालने के लिए शाकेश्वर सूरज निकलने से आधा घंटा पहले बिस्तर छोड़ देता। स्टेशन की ओर निकल जाता। दातुन खरीदता। आगे बढ़ जाता। पार्क में जाकर सूरज की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता। क्योंकि तब तक सूरज या तो उगने को होता या उग रहा होता। दो-ढाई मिनट तक उगते सूरज की किरणों को आँखों से पीता। अंतर इतना होता कि वह तेजस्व बिखेरती किरणों की 'पलकों की चिक डारि कै' छानकर पीता। लंबी-लंबी साँसें खींचता। धीरे-धीरे फेफड़े खाली करता। इन सब क्रियाओं को वृद्धावस्था में होने वाली शक्ति क्षीणता के उपचारस्वरूप करता। हाँ, एक आशंका उसके भीतर मथानी की तरह चलती रहती थी। वह यह कि कानों की श्रवणशक्ति के क्षीण होते जाने को थामने का उसके पास कोई उपाय नहीं था। ऐसा कोई व्यायाम उसके सुनने में नहीं आया था जिसको अभ्यास में लाकर काम चलाया जा सके।

जिसका बेटा उसकी फैमिली को लेकर बैंगलौर में जा बिराजा हो, जिसने अपनी लड़की जयपुर में ब्याह दी हो वह अपनी षष्ठीपूर्ति सजा चुकी पत्नी के साथ गुड़गाँव में पड़ा रहकर पेंशन पर गुजारा न करे तो क्या पान चीरने का काम पकड़ ले। जीवन भर कण-कण जोड़कर जो मकान अब से बीस वर्ष पहले चार लाख में बनवाया था उसको छोड़कर (बेचकर भी) बेटे के ढाई कमरों वाले फ्लैट में रहने की सोचना आत्मग्लानि में डूब जाना नहीं है क्या। जबकि आज के दामों यह मकान पाँच करोड़ से कम पर मानने को तैयार नहीं होगा। भला किसे दान में देकर चला जाए।

पत्नी की मौज है। महीना बीस दिन बेटे के पास रहने को चली जाती है। पंद्रह-दस दिन के लिए बेटी के पास। शाकेश्वर कहाँ चला जाए। मकान से निकलकर स्टेशन। स्टेशन से पार्क वहाँ से फिर 'जैसे उडी जहाज को पंछी पुनः जहाज पै आवै' होकर रह गया।

पत्नी टूर पर गई होती तो सफाई वाली का औहदा बढ़कर काम वाली कर दिया जाता। अब उसके दायित्व विस्तार की परिधि में खाना बनाने से लेकर चौका-बर्तन तक का क्षेत्र आ जाता है। हाँ, सुबह का चाय-नाश्ता और तीसरे पहर की चाय शाकेश्वर स्वयं अरेंज कर लेता। आखिर टीवी और किताबों के सहारे समय को कितना धकेला जा सकता है। ताश-शतरंज को वह बिला-डिग्नटी मानता रहा था अतः सीखने का प्रयास ही

नहीं किया। इस तरह के खेल आपसदारी पर, प्रेम-सख्यता पर, भाषा-व्यवहार की सौजन्यता पर आरी चला देते हैं। रामायण पाठ और पूजा-कीर्तन कभी किया ही नहीं। 'अब आखिरी वक्त क्या खाक मुसलमां होंगे' की सोच जो अवचेतन में सोती रही थी अब जागकर सचेतन पर अधिकार कर गई थी। अकेला आदमी खूब खाए तो भी कितना खाए। जीभर सोए भी तो कितना सोए। ऐसी कोई कैंची हाथ नहीं पाई समय को कुतर सकें। मेरठ में, आखून वालों ने हाथ खड़े कर दिए कि ऐसी कैंची हम नहीं बना सकते जो समय को तो दूर, उसके हाथ-पैर तक भी नहीं, बल्कि उसका एक पर भी कुतर सके। रामपुर में, सुनते हैं अब चाकू बनने बंद हो गए। शायद उनसे समय को काटा जा सकता था। वहाँ पर कट्टे, पिस्तौल, रिवाल्वर रायफल और न जाने क्या-क्या बनने लगे हैं। मुजफ्फरनगर दंगे के दौरान, लोगों ने रामपुर की अहमियत और महत्व को परखकर देख लिया था।

ऐसे समय में जब जीवनसंगिनी टूर पर प्रस्थान कर गई हो शाकेश्वर के सामने बोर होते रहने के अलावा कोई चारा शेष नहीं रहता था। जायसीकृत पदमावत का बारहमासा व सूरकृत भ्रमरगीत पढ़कर ही क्या हो जाना था। स्त्री विरह से पुरुष विरह का उद्यापन कैसे हो सकता है, शाकेश्वर ने निष्कर्ष निकालने में ज्यादा दिमाग नहीं खपाया। कोई महिला ऐसी हो जो पुरुष विरह पर महाकाव्य लिख सके तो शाकेश्वर को पढ़कर आत्मसंतोष होता, नहीं तो उसको आत्मवेदना की धार पर चलना था तो चलता जाता था।

दुर्घटना किसी की सगी नहीं होती। यही कारण है कि हर व्यक्ति दुर्घटना से बचने के फेर में राम का नाम रटता रहता है। पर इस कमबख्त का नाम ऐसा कुत्तानस्ली है कि यह असावधानी को हजार कोस से सूँघ लेती है। जरूरी नहीं कि दुर्घटनाग्रसित व्यक्ति ने ही असावधानी की हो। प्रायः दुर्घटित करने वाले की असावधानी अधिक कामयाब होती देखी गई है। उस दिन वही तो हुआ शाकेश्वर के साथ। वह जीवनभर घोषणा करता रहा था कि सड़क पर उसको कोई दुर्घटना चपेटित नहीं कर सकता। कभी ऐसा कुछ हुआ भी तो सड़क से हटकर ही हो सकता है। जब वह साइकिल चलाता था तब तो आगा-पीछा देखकर डामर से उतरकर कच्चे में ही जाता था। रही बात पैदल चलने की, उसके जूतों ने शायद ही कभी डामर स्पर्श किया हो। जूतों के तल्ले सदा सुरक्षित रहे। प्रेमचंद के जूतों की तरह फटते रहे। उँगलियाँ बाहर झाँकती रहीं। भला ऐसे धीर-गंभीर और सावधान आदमी को कौन ऐक्सीडेंडित कर सकता था।

समय व्यतीत करने के लिए शाकेश्वर कई बार लंबा निकल जाता था। एक राह पर चलने वाला व्यक्ति धोखा खा सकता है। यह सोचकर वह अलग-अलग सड़कों पर तीन-चार किलोमीटर तक की लौट-फेर साध लेता था। बेचारे को नहीं पता था कि 'हिट एंड रन' की नई संस्कृति का उद्भव नई पीढ़ी में हो चुका है। पता नहीं किस मनोरोग से ग्रसित हैं कि कुछ युवाओं को, जो अपने आपको कुछ से कुछ समझते हैं, सम्यकता से चिढ़न सी हो गई है। ऐसे ही चिढ़त-संतृप्त ड्राइवर ने शाकेश्वर को चपेटा लगा दिया। एक जनविहीन सड़क के किनारे पर वह आत्मलीन होकर चलता जा रहा था। पीछे से आने वाली कार ने चेतावनीपरक हॉर्ननाद किए बिना ही उसे एक ओर फेंक दिया। बुजुर्ग आदमी अपने को सँभाले या कार के पिछौंड़े पर चिपके नंबर को पढ़े। उठने का प्रयत्न करे कि कराहे। या आँखों के आगे आए तिरमिरों की झलकार देखे। सारी परिस्थितियाँ लाचारी के पक्ष में जा रही हों तो अक्ल को ठिकाने नहीं रहने देतीं। आस तो तब पास फटकेगी जब होश कैंड़े में हों। कबड्डी, कुश्ती खेलते समय जिसने हाथ-पैर तो दूर एक उँगली तक नहीं मुसने दी वह एक पैर तुड़वाए सड़क के किनारे पड़ा था। वाहनों का यह हाल था कि एक-एक सेकेंड में दस-दस पास हो रहे थे। भारतीय दर्शन की महान निर्लिप्त भावना के वशीभूत होकर हर कोई निकला चला जा रहा था।

कहते हैं कि प्रलयकाल तक दया-करुणा करने वाले लोग बचे ही रहेंगे। आनुपातिक रूप से भले घटती की मार झेलते रहें पर बीजनाश के सीमांत तक नहीं जाएँगे। ऐसा ही कोई ड्राइवर अपोजिट साइड से आ रहा था उसको आकाशवाणी हुई या वह दया-ज्वार की चपेट में आ गया अथवा मानवीयता की ज्योति उसके अंतर्मन में प्रस्फुटित हो गई थी सो उसने अपनी कार को मोड़कर भू लोटित शाकेश्वर के निकट लगा लिया।

भाषा ISSN 0523-1418

असल में गाड़ी में बैठी एक बुजुर्ग महिला ने अपने ड्राइवर को ऐसा करने के लिए कहा था।

ड्राइवर उतरा, दो महिलाएँ उतरीं। बुजुर्ग महिला ने कहा–उठाकर गाड़ी में बैठाओ। शायद ज्यादा चोट है। जवान महिला और ड्राइवर ने पिछली सीट पर अधलेटी अवस्था में शाकेश्वर को डाल लिया। युवा महिला ड्राइवर के पास आगे बैठ गई। बुजुर्ग ने शाकेश्वर को थामे रखा।

देखते–देखते टकराकर चला गया। मैं तो दूर से ही देख रही थी। आजकल के ड्राइवर अंधे होकर चलाने लगे। कमबख्त के बाप–दादा की उम्र का बुजुर्ग है। सरकारी अस्पताल में ले चल। बुजुर्ग महिला ने टिप्पणी करके ड्राइवर को आज्ञा दी।

ड्राइवर गाड़ी चला रहा था। शाकेश्वर आँखे बंद किए अपने दर्द को भीतर–ही–भीतर पीने का प्रयत्न करता हुआ अधलेटा, सीट पर लुढ़का हुआ था। बुजुर्ग महिला करुणा–आप्लावित कर्तव्यपालन–भावना में विभोर होकर घायल के चेहरे की ओर देख रही थी। तीन–चार मिनट भी नहीं बीते होंगे कि बुजुर्ग महिला के मुख से स्वस्फूर्त फुसफुसाहट निकली, 'इसको कहीं देखा है।' शाकेश्वर ने आँखें खोलकर बुजुर्ग महिला की ओर देखा। उसके मुख पर आश्चर्य, स्मृति, दुख और करुणा के भाव परस्पर गुँथे हुए थे।

शाकेश्वर सोच रहा था– जब इसने मुझे कहीं देखा है तो मैंने भी इसे देखा जरूर होगा। वह भी अपनी स्मृति को कुरेदने लगा। परंतु बुजुर्ग महिला के बुढ़ाते नाक–नक्श में अपने अनुसार एक भी पहचान चिह्न नहीं खोज सका।

थोड़ी देर में अस्पताल पहुँच गए। दो लोगों ने सहारा देकर शाकेश्वर को स्ट्रेचर पर लिटाया और खींचकर अंदर ले गए।

तीसरे दिन शाकेश्वर को आराम लगा। पहले दिन तो जाँचें चलती रहीं। शूगर, ब्लडग्रुप, ब्लडप्रेशर, एक्सरे। इधर ले जाया जा रहा है, उधर पहुँचाया जा रहा है, दर्द और दुर्घटना का शोक। सारे औपचारिक प्रावधान पूरे करने जो थे। सरकारी कार्यों की स्पीड और उपकरणों की क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले अकारण नहीं झींकते। शायद सरकारी मशीन में एक्सीलेटर लगाने का प्रावधान नहीं है। दूसरे दिन, एनेस्थीसिया, आपरेशन और प्लस्तर। पूरा दिन इस प्रकार बीता कि आधा तो घबराहट और न जाने क्या हो और कैसे होगा के फेर में आत्मचिंतन की व्यर्थता में गया। आधा अचेतनावस्था की भेंट चढ़ गया। हाँ तीसरे दिन का भरोसा रह गया। बाएँ पैर पर प्लस्तर है तो कंपनसेट करने के लिए दाएँ हाथ पर भी प्लस्तर। चोट किस तरह डायगुनली कवर कर गई। क्या 'गणित साधकर टकराई' थी कार! बिमाता के लेख हैं, हरेक को बाँचने–पड़ते हैं। शाकेश्वर भी बैड पर लंबलेट हुआ बाँच रहा था।

नर्स आई। सुई ठोककर मुस्कराई। बाएँ हाथ को भी किस काम का छोड़ा है। गुलकोज चढ़ने का अंटा चिपका है। हिलाने–डुलाने को मन करे तो मन के करने से क्या होता है। कंधे में तीन बार सुई लग चुकी। कठिन और कठोर तरीकों की। चिकित्सापद्धति को झेलने की लाचारी। लाचारी में भी एक संतोषप्रद किरण। नर्स ने दो गोलियाँ खाने को दीं। आधा गिलास पानी। बेड का सिरहाना ऊँचा किया और लेने को कहा। क्या करता। पट्ठे को लेनी पड़ी। मुस्कुराती हुई नर्स को देख–देखकर खुश होता रहा। ड्यूटीफुलपने पर मन ही मन रीझ रहा है शायद! नर्स ने सोचा होगा। पर शाकेश्वर तो अपनी याद में कुछ खोज रहा था। कहीं–न–कहीं इस लड़की को देखा है– इसी धुन में आंतरिक लोक में परिभ्रमण करता जा रहा था। वार्ड में सोलह मरीज थे। सभी टूट–फूट के शिकार। कई को पलस्तरों से सजाया गया था, कई ऐसे भी थे जिनको पट्टियों के सहारे ही अपनी शारीरिक क्षतियों को रिकवर करना था। वह नर्स जब तक वार्ड में रही तब तक शाकेश्वर उसको निहारता और स्मृति में उसका चित्र तलाश करता रहा।

नर्स अपना दायित्व मरीजों पर चिपकाकर चली गई। शाकेश्वर कहाँ जाए। पड़ा–पड़ा याद को कुरेदता रहा देखा होगा। अस्पताल तो वह कभी आया नहीं। पार्क में सुबह–सुबह महिलाएँ नहीं आतीं। ऐसी कौन–सी जगह हो सकती है कि इसे देखा हो। थोड़ी देर याद करने का प्रयास करके बुदबुदाया– चल छोड़, कौन सिर खपाए। नहीं याद आ रहा तो क्या।

हाँ, याद पर बस नहीं तो याद ने ही सहारा दिया– वह बुजुर्ग महिला भी तो कह रही थी कि कहीं देखा है। शाकेश्वर के मस्तिष्क के तार झनझना गए। अरे, नर्स तो

ऐसी लगती है मानो उस बुजुर्ग महिला की जेरॉक्स कॉपी हो। भई, कैसा भी काम हो आड़-गाड़ तो चाहिए ही। अस्पताल में चाहे चपरासी से जान-पहचान हो पर हो, नहीं तो मरीज को एडमिट करने में एड़ियाँ घिस जाती हैं।

छोड़ यार, किस फेर में पड़ गया। आदमी की दवा आदमी ही होता है। जो संयोग से प्राप्त होता है। विषस्य विषमौषधम् तो किसी ने फंडा रचने के लिए कह दिया। आदमी ही आदमी के काम न आए तो संसार नरक में न बदल जाए। शाकेश्वर ने चिंतन से पीछा छुड़ाने की सोचकर मन ही मन कहा। और आँखें बंद करके लेट गया।

आँखें बंद करने से मस्तिष्क में चैन पड़ जाता तो हर कोई इसी प्रकार चैन न पा लेता।

कौन मरीज कराह रहा है। कौन बेसुध पड़ा है। किसको नींद की गोली देकर सुला दिया गया है। इसकी चिंता वह क्यों करे। उसका मन तो खुद कराहने को करता था। बस, यूँ सोचकर अटक जाता था कि कोई क्या सोचेगा। एक बुजुर्ग आदमी जिसको इतना पता हो कि चोट में दर्द तो होता ही है, कराहने लगा। आदमी की बुजुर्गियत और समझ पर बट्टा न लग जाए, इतना ध्यान करके वह दर्द को सहता चला जा रहा था।

दोपहर बाद लगभग तीन बजे वह बुजुर्ग महिला नर्स के साथ आई। पास रखे स्टूल पर बैठ गई। शाकेश्वर ने उसको पहले ही देख लिया था। परंतु वह आँखें बंद करके लेट गया था। बुजुर्ग महिला ने जान लिया था कि मरीज नींद में नहीं है। वैसे ही, लेटा है, शायद खयालों में खोया हुआ हो। वह सोच रही थी कि बात कैसे आरंभ करे।

'सो तो नहीं रहे!' बुजुर्ग महिला ने इस प्रकार कहा मानो वह इतना तो जानती ही है कि आँखें बंद करके लेटे हुए आदमी को पहचान सके कि वह सोया हुआ है या यूँ ही लेटा हुआ है।

शाकेश्वर ने आँखे खोलकर देखा।

'ठीक तो हो ना!' बुजुर्ग महिला ने मधुर मुस्कान ओढ़कर शब्द उच्चारे।

शाकेश्वर ने आँखें झपकाकर हामी भरी।

'घर-परिवार वालों को खबर कर दी होगी?' इस प्रकार पूछा मानो आश्वस्त होना चाह रही हो।

'कहाँ। हाथ सत नहीं पकड़ रहे। मोबाइल.....' कहकर शाकेश्वर ने इस प्रकार सिर घुमाया कि मोबाइल दिखाई दे जाए। जो तकिया के पास रखा था

'लाओ, मैं मिलाती हूँ।' कहकर बुजुर्ग महिला ने मोबाइल फोन उठा लिया।

'राजबाला को मिलाओ।' शाकेश्वर ने पत्नी का नाम बताया।

'लो, घंटी जा रही है।' बुजुर्ग महिला ने फोन लाउड पर करके शाकेश्वर के आगे कर दिया। और दाएँ हाथ में थामे रही। शाकेश्वर ने 'हैलो' सुनकर कहा, 'राजबाला!'

'हाँ, मैं अभी आने वाली नहीं। चार दिन ही तो हुए हैं। कम से कम पंद्रह दिन और रहना है।'

'एक सप्ताह हो गया।'

'तो क्या ज़िंदगी भर तो खुँटबँध रही हूँ।

'बात तो सुनो'।

'हाँ सुनाने की आदत छोड़ दो। बड़ी उमर में जुबान को तहाकर रख देना चाहिए।'

'भई, सुनो तो भाग्यवान!'

'क्या मरियल तरीके से बोल रहे हो। नहीं आऊँगी। कह दिया सो कह दिया।'

'न आना, पर सुन तो लो'।

'सुनाओ। कौन-सी रामायण की चौपाई सुनाओगे। सब समझती हूँ।

'कुछ भी नहीं समझती। समझने से पहले सुनना पड़ता है।'

'हाँ, हाँ, सुन तो रही हूँ।

'परसों मेरा एक्सीडेंट हो गया।'

'बहाना नहीं चलेगा। चोट-घिसर लग गई हो तो डॉक्टर से पट्टी करा ली होती।'

'एक पैर और एक हाथ में फ्रेक्चर हो गया।'

'कहती थी न! सुबह-शाम सड़कों पर घूमना बंद करो। कोई मनचला भिड़कर भाग गया होगा। बढ़ती उम्र में बाहर घूमने का शौक चपेट मार गया। कितना कहा कि पुराने हाड़ टूट-बिखर गए तो जोड़ना-समेटना मुश्किल होगा'। राजबाला ने रेडीमेड डायलोग की तरह उपदेश दे मारा।

'सरकारी अस्पताल में हूँ।'

भाषा ISSN 0523-1418

'सड़ने के लिए। पैसे का लोभ! नर्सिंगहोम में नहीं जा सकते थे।'

'अपने आप नहीं आया। कोई उठाकर यहाँ एडमिट करा गया।'

'सरकारी वाले तो ड्यूटी की खानापूर्ति भी रो-रोकर करते हैं।'

'सारी चीजें, एक्सरे और आपरेशन हो चुका। प्लास्टर भी।'

'ठीक है। आराम से पड़े रहना। हाय-कराह को पीकर रखना। वहाँ कोई राजबाला थोड़े ही होगी। जो सुनकर सेवा में जुट पड़ेगी।'

'तुम्हें आना तो चाहिए।' शाकेश्वर के चेहरे की आकृति देखते ही बन रही थी। रंगत ऐसी कि काटो तो एक बूँद रक्त न निसरे।'

'हाँ! आ रही हूँ। परसों सुबह तक पहुँच गई समझो।'

शाकेश्वर ने 'ओके' कहकर सांत्वना प्रदर्शित की तो बुजुर्ग महिला ने फोन काट दिया।

थोड़ी देर चुप्पी रही।

'बड़ी ककर्श आवाज है, आपकी मिसेज की!' बुजुर्ग महिला ने आश्चर्य में भरकर कहा।

'बालक अपने घर-बार के हो जाते हैं तो औरत की टोन बदल जाती है। अवर्णनीय तरीके से उबाऊ व्यवहार करने लगती है। सरस जीवन को भी अप्रिय और नीरस कहानी की तरह विरक्त होकर जीने की सोचती है।'

'इतने तक तो आधी जिंदगी ही पार हो पाती है, बाकी आधी तू-तड़ाक करके पूरी काटने की क्या तुक है।' कहकर बुजुर्ग महिला मुस्कुराई।

शाकेश्वर ने मुस्कान से धुले उसके चेहरे को ध्यान से देखा। वह महिला सकपका गई। इतनी देर में नर्स भी आ गई जो अनी-बनी अपनी मम्मीं की कॉपी लग रही थी।

'आपका नाम जानने की इच्छा है।' शाकेश्वर ने महिला से कहा।

'मैंने आपको पहले कहीं देखा है। याद नहीं पड़ रहा, कहाँ।' महिला ने आज फिर से कहा।

'नाम बताओ, मुझे याद आ जाए तो।' शाकेश्वर ने जिज्ञासा रखी।

'देखा हो, न भी देखा हो। कहीं मिले भी हों। अब इस पर सोचने का क्या फायदा है।' नर्स ने जैसे इस खोजबीन में अपनी अरुचि प्रदर्शित कर दी हो।

'यह मेरी बेटी है। पर आज्ञा इस तरह देती है जैसे माँ हो।' महिला ने परिहास किया।

नर्स आँखों ही आँखों में मुस्कुरा दी।

शाकेश्वर ने संयमशील दिखने का प्रयास किया। अत: महिला की ओर आलस्य और उपेक्षा की दृष्टि से देखा। जिससे कठोर, रूखा और निर्लिप्त लग सके। परंतु वह मन-ही-मन उदासी से मुक्त होना चाहता था। जैसे मस्तिष्क में दबी यादों को खोजने में संलग्न हो।

'इस तरह क्या देख रहे हो। बेड पर बिछे आदमी को निराश नहीं होना चाहिए। बता देती हूँ- मेरा नाम सोहनबीरी है।' उसने 'बेड पर पड़े' शब्द के स्थान पर, यह सोचकर कि पड़ा रहना शुभ शब्द नहीं है, 'बिछा' शब्द प्रयोग किया था बिछने में आयास और रस का मिश्रण होता है।

क्षण भर में ही शाकेश्वर की स्मृति स्वफूर्त तरीके से जाग गई उसके चेहरे पर लालिमा, होठों पर मुस्कान और आँखों में प्रसन्नता तैर गईं। जैसे शाकेश्वर के चेतन में अभिज्ञा कौंध गई हो।

'याद आ गया?' नर्स ने उपहास की टोन में पूछा। मानो वह शाकेश्वर की दशा को ताड़ गई थी।

'हाँ, पर नहीं बताऊँगा।'

'क्यों? देर से ही सही, मुझे भी याद ही आ जाना है। तब आपका.... क्या रह जाएगा।' महिला 'एहसान' शब्द का प्रयोग करती-करती हिचक गई।

'सोना।' शाकेश्वर ने धीरे से उचारा।

'यह तो घर पर बोले जाने वाला नाम है।' महिला ने बताया। पर वह सोचने लगी थी कि मायके के गाँव का रहने वाला हो सकता है। नहीं तो 'सोना' कहकर नहीं पुकारता।

'अता-पता बताऊँ?' शाकेश्वर अब भी अपनी याद को खोजना चाहता था।

माँ और बेटी ने उत्सुक दृष्टि से शाकेश्वर को देखा।

'ले बता ही देता हूँ। आपका घर था। उसके पश्चिम में शिवाला था।' शाकेश्वर बताने लगा।

'अभी भी घर वहीं है और शिवाला भी'। महिला ने हस्तक्षेप किया।

'मेरे लिए तो सब था। उसके पश्चिम में सुखबीर का दो मंजिला मकान था सुखबीर के उत्तर में अजबसिंह की बैठक थी। हाँ, याद आया मंदिर के सामने गली सी छोड़कर रहट का कुआँ था..... सुखबीर के चौबारे में तीन लड़के रहते थे जो हाईस्कूल की परीक्षा देने के लिए आए थे।'

शाकेश्वर इतना ही बता पाया था कि महिला बोल पड़ी, 'सबसे छोटा लड़का मंदिर के पीपल के नीचे सारा दिन पढ़ता रहता था। उसने दसवीं में फर्स्ट डिवीजन लाने में सफलता पाई थी। ग्यारहवीं में दाखिला भी ले लिया था। सोना ने नौवीं में। दोनों रोज-रोज कॉलेज में एक-दूसरे को देखते थे। वह लड़का बहुत बढ़िया हॉकी खेलता था। लड़कियाँ कालेज की छत से खेल देखती थीं। वह लड़का सोना के 'गोल-गोल' चिल्लाने पर गोल करने के लिए पागलों की तरह जान लगा देता था। कई बार गोल करके ही दम लेता था। उस लड़के को स्टेट की जूनियर्स की टीम में चुन लिया गया था। या और भी बताऊँ?' महिला बोली।

शाकेश्वर ने अपने चेहरे पर संजीदगी बनाकर रखी। जबकि औरत के चेहरे पर तरावट और आँखों में शरारत तैर रही थी। 'इतना बुद्धू और डरपोक था कि महीनों तक न कोई इशारा कर सका न दो शब्द मुँह से उचार सका। 'वह देखता तो झिझकता हुआ सा। पास से निकलता तो हिचकता हुआ। ऐसा कि लड़का न होकर लड़की हो। फिर भी सोना को अच्छा लगता। एकदम सम्मोहक। इसका अर्थ यह नहीं था कि सोना उससे प्रेम करती थी। अच्छा लगने और प्रेम हो जाने में धरती-आसमान का फासला होता है। सोना के 'साथ की लड़कियाँ उपहास करती कि तेरे फेविरेट हीरो को देखकर जलन होती है।'

छुट्टी के बाद अकेला चलता। जैसे उसका कोई साथी न हो। मुझसे दूर रहता हुआ पीछे, डरता हुआ सा। सूँघ-जाँचकर कदम रखता सा।

अब वह महिला उत्तम पुरुष पर उतर आई थी।

एक बार कार्तिक नहान में मैं, माँ, चाची और दो सहेलियों के साथ यमुना के मेले में गईं। वह निपट अकेला। भला उसका दिमाग तो देखो, बीस-पच्चीस कदम पीछे रहकर चलता हुआ। वैसे तो वह मुझे बहुत अच्छा लगता था परंतु उसकी मूर्खताएँ अच्छी नहीं लगती थीं। मेले में भी वह अकेला ही घूमता रहा। कभी हमारे सामने से होकर निकल जाता, कभी पीछे से आकर ओवरटेक कर जाता। ऐसी स्थिति में जब वह पास से निकलता तो मेरे दिल की धड़कन तेज हो जाती थी। लौटते में भी वह हमारे पीछे दूरी बनाकर चलता रहा। अपनी समझ मे वह कुछ ज्यादा ही सावधान रहने के प्रयत्न करता रहता था।

मैं उसको देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो जाती थी। परंतु प्रेम बिलकुल नहीं करती थी। वह लंबे कद का। इकहरे बदन का, रेस के घोड़े की तरह सुँथवाँ। पूरे कॉलेज का आइकन। क्या अध्यापक, क्या छात्र-छात्राएँ उसकी प्रशंसा करते न अघाते। पर वह अपने आप में घुन-मत्कुण। कोई-कोई उसके तरीके को ही स्टाइल कहता, कोई अहंकार। मुझे तो ऐसा लगता था मानों दुनिया के मामले में कोरा बुद्धचंद हो। पढ़ाई में आइंस्टीन की औलाद। खेल में ध्यानचंद का चेला।

एक बार मैं बरसीम लेने खेत में जा रही थी। गन्ने के खेतों के बीच बटिया निकलती थी। जिस पर उसका प्रादुर्भाव ऐसे अचानक हो गया कि मैं घबरा गई। मर्द जात है, पता नहीं क्या कर बैठे। आधेक मिनट हम दोनों एक-दूसरे के सामने इस प्रकार खड़े रहे मानो पत्थर में से घड़कर बनाए हों। उसने हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहा पर कह नहीं सका। जिसका चेहरा फक्क पड़ गया हो उसमें साहस बचता ही कहाँ है। मुझे दया आ गई। वैसे दया! वह भी ऐसे समय पर, औरत की कमजोरी क्यों न कही जाए।

उसने मेरा हाथ पकड़ा। मैंने छुड़ाने की कोशिश नहीं की। कोशिश करनी चाहिए यह बात तब दिमाग में ही नहीं आई। वह मुझे गन्ने के खेत में अंदर ले गया। अपने जिस हाथ में उसने मेरा हाथ पकड़ा था वह बर्फ जैसा ठंडा था। निबड़ शांति में गन्ने के खेतों के ऊपर हवा का एक झोंका सरसराया। मेरे तिरपन काँप गए। वह भी सहमकर रह गया। कोई आदमी आ न गया हो, सोचकर मेरी जान सिकुड़ गई। उसने कहा 'कुछ नहीं है। भला पागल!' कुछ से क्या डरना। कोई से डरना

भाषा ISSN 0523-1418

होता है। जी में जान आई तो मैंने सोचा–निरा बुद्धू है भोला। डरपोक भी। इसी कारण अच्छा है। एक बार जी भरकर देखने की इच्छा हो गई होगी।

याद है क्या हुआ था? खोदा पहाड़ निकली चुहिया। उसने कहा–एक रिक्वेस्ट है। मैं! चुप! मैं उसकी सफेदी पुती सूरत देखने लगी। उसने अपने चेहरे पर लिपटी घबराहट को विनीत भाव से ढकते हुए कहा–एक बार 'किस' कर लेने दे।

मैंने उसकी ओर मुँह उठाकर देखा। उसने मेरे गालों पर कई–कई चुंबन जड़ दिए। मैं मुस्कुराने के अलावा कुछ न कर सकी। जैसे मेरी शक्ति निचुड़ गई हो।

तब मैंने उसकी आँखों में झाँककर देखा। काली पुतलियों के चारों और नीला घेरा देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। पतले नुकीले चेहरे को तीखा बनाती हुई उसकी नाक बड़ी आकर्षक लगी। लंबी गर्दन। कंठ के ऊपर तिल। सब अभी भी। लहरदार बालों से ढका हुआ वह सिर अब 'खल्वाट–गंजा।'

वह झुर्रियों से पटे चेहरे और टूटे–फूटे दाँतों का सहारा लेकर मुस्कुराई।

हम कब तक अपना समय बरबाद करते। वह करता भी तो, मैं बिलकुल नहीं करती। मैंने पूछा, 'बस'!

उसने कहा, 'हाँ'

मैंने हिदायत दी, 'कभी पीछा नहीं करना। प्रत्येक लड़की को बदनामी का डर और इज्जत की परवाह होती है। मैं और क्या करती। वह 'बस' का अर्थ ही नहीं जानता था। मैंने महसूस किया कि इसको जिंदगी के बारे में बहुत जानने की जरूरत है।

वे मेरे अनुभव क्षेत्र के पहले चुंबन थे। गर्म, उत्तम और ऊष्ण। जिस लड़के का हाथ मुझे बर्फ से ठंडा महसूस हो रहा था। उसके होंठों पर इतनी गर्मी! मैंने पता नहीं कैसे महसूस की। शायद इसीलिए कि वह निश्छल था। जिंदगी में मिले पहले उपहार सा उसका स्पर्श। ऐसा उपहार जो एक सिहरन देकर बिखर गया हो। मैं कई दिनों, महीनों और वर्षों तक उस उपहार को याद करके सिहरती रही। जीवन का सर्वोत्कृष्ट, पवित्र और गंभीर सर्वोत्कृष्ट। जैसे सुगंधित सुहानी चाँदनी मेरे ऊपर से सरसराकर गुजर गई हो। मैं आज तक नहीं समझ सकी कि वह अनुभव क्या था। मेरे भीतर जैसे एक नदी बह रही हो। तटबंध तोड़कर बह जाने को उफनाती हुई। आतुर।'

उसकी बर्फ सी जमी हुई आँखों में से निकलने वाली बेदाग निगाहों से शाकेश्वर आँखें नहीं मिला सका। मानो वह अधैर्य के अधूरे ज्वार को नियंत्रण में करने के लिए अपनी शक्ति लगा रहा हो। यादों के घुप में दबी पड़ी स्मृतियाँ साँसों को सोख लेना चाहती हों और वह उनको थामने के लिए जोर–जोर से खींचना और छोड़ना करके अपने आप पर काबू करने का प्रयास कर रहा हो। उसको ऐसा महसूस हो रहा था कि इड़ा–पिंगला की तो बात ही क्या सुषुम्ना तक सुन्न हो गई हो।

सोहनबीरी की अनुभवी आँखें शाकेश्वर की मनोदशा को ताड़ क्यों न जातीं। इस पर भी उसने अपनी बातों का क्रम अटूट रखा जिससे वह मायूस और हताश होकर बोला–मैं तुझे प्यार करता हूँ बहुत दिनों से।

जानती हूँ। अभी तो चेहरे पर रोआँ भी नहीं आया। बचपन में बिगड़ जाने वाले को सुधारने में ईश्वर को भी पसीने छूट जाते हैं– मैंने इतना कहकर अपनी राह ली।

शाकेश्वर कभी मुस्कुरा देता कभी सोहनबीरी उर्फ सोना की ओर देखकर गंभीर हो जाता। गंभीर अवस्था में वह एक ही बात पर बार–बार सोचता। बात मात्र इतनी सी थी कि न सोना ने उस समय प्रशंसा में दो–चार अच्छे शब्द कहे और न अब ही कह रही थी। जब शाकेश्वर के लिए महिला के मुँह से निकले प्रशंसा के शब्द ही इतना महत्व रखते थे जितना पुरुष द्वारा पूरी वक्तृता के साथ प्रशंसापरक व्याख्यान दिया जाना भी नहीं रखता।

पास बैठी नर्स अपनी मम्मी की किशोरावस्था की प्रेम कहानी को सुनती हुई एकाग्रचित बैठी रही।

'मैं जितना जीवन में सोच सकी हूँ, सुनो। प्रेम एक भयंकर बीमारी होती है। जो अक्ल को खा जाती है। यह मन में उगती है। कोमल, सुगंधभरी कोंपलें लेकर। बाद में सारे शरीर में फैल जाती है। इसकी जड़ें मानो शारीरिक रोग का रूप धर लेती हैं। इतने लोग किसी बीमारी से नहीं मरते जितने प्रेम के कारण मरते या मार दिए जाते हैं। वास्तव में प्रेम तो चोर की इच्छा जैसा कुछ होता है। सुंदर लगने वाली चीज को पाने की हठ समझो। प्रेम तो स्वार्थ की अनी होती है। सोपता और

पैसा जिसके पास होता है उसका शगल बन जाता है प्रेम। अलबुध आदमी अपनी जिम्मेदारी को नहीं समझ पाता। अत: भावनाओं के झूठे समंदर में तैरने लगता है।' सोहनबीरी ने अपने अनुभव का दर्शन कह सुनाया।

शाकेश्वर ने इस गंभीर बात में कोई रुचि नहीं ली। उसने मन-ही-मन कहा- भला कोई तुक है। उदासीभरी एकरसता में ही इतना कुछ कह गई। अभी भी अपने आपको समझती है। मानो करुणा और उपकार करके भी कठोर की कठोर।

फर्श पर पुते हुए फिनायल की गंध दवाइयों की संयुक्त गंध में मिलकर उसके फेफड़ों में घुसने लगी थी। कई मरीजों की कराहटें, आँहें उसकी शांति भंग करने लगी थीं। अपने दर्द को वह बेचैन होकर याद करने लगा था कि सामने बैठी कैशोर्य काल की वह प्रेमिका अनगढ़ प्रेम की जो कहानी सुना चुकी थी, उसे भूल सके। एक डर और सता रहा था। वह परसों आने वाली पत्नी का था। जिससे वह विगत पाँच-छह वर्षों से कुछ हिचकने लगा था।

उसने आँखें बंद कर लीं। वह सोचने लगा-अभी भी असंपृक्तता से भरी शब्दावली का प्रयोग कर रही है। मन को छू जाने वाली उपेक्षा को भी संभालना चाहती है। प्रकट की अपेक्षा अंतर्मन में बैठी कोमल भावनाओं को दबाकर रखने को ही निपुणता समझती है। इसने सदा से चीजों के विषय में अपने ही ढंग से सोचा है। अपने आपको सुनिश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाने वाली समझती रही है तो पचास वर्षों के अंतराल पर छूटी रह गई घटनाएँ और उस लड़के की सूरत अंतर्मन में सुरक्षित क्यों रह सकी। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों के विषय में बार-बार विश्लेषण करने की जरूरत होती है उसी प्रकार इसे भी करना चाहिए। पर स्वाभाविक रूप से प्रभावशाली दिखने का कलात्मक तरीका है इसके पास। कोमल भावनाओं को दबाकर व्यावहारिक दायित्वों को ऊपर ले आती है।

शाकेश्वर सोचता रहा- इसके स्वीकार-अस्वीकार को मैं परीक्षा पर क्यों चढ़ाऊँ। ढलान उतारते जीवन को अधूरी कहानी में उलझाने से कोई लाभ मिलने वाला नहीं। न अपने आप पर तरस खाने का लाभ है, न पुराने छूट गए दिनों को हरा करने का समय ही हाथ में रह गया है। जो कुछ घटित या दुर्घटित हो गया वह अकस्मात ही था। भावनाएँ आँखों को नम करने के अलावा कुछ भी देने वाली नहीं। तर्कबुद्धि धोखा देगी तो इस प्रकार कि भविष्य की सटीक व्याख्या कर रही हो।

सोचते-सोचते उसे नींद की झपकी आ गई। अधनिंदासी दशा में चौंककर जाग गया। सोना, बेटी नर्स के साथ जा चुकी थी। वह बुदबुदाया- काश! जब तक मैं अस्पताल में हूँ, सोना यहाँ पर न आए।

– 95, श्रीहरिवृंदावन सिटी, फेज-I, जानसठ रोड, मुजफ्फरनगर-251001

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

लकीरें

शमा खान

शाम को ऑफिस से लौटा तो पत्नी ने खबर दी "आलिया के मकान का सौदा हो गया है। इसी महीने रजिस्ट्री भी हो जाएगी।"

सुनकर मेरा मन खिन्न हो गया। चाय का कप लिए मैं छत पर आ गया। मेरी छत से लगा हुआ आलिया का मकान सुनसान पड़ा था। बहारों के मौसम में भी पौधों से लदे गमले सूखे, मुरझाए पड़े थे। मैंने छत से झुककर उनके पोर्च पर नज़र डाली तो सिर्फ नारंगी फूलों वाली बेल फूलों से लदी हुई थी। याद आ गया पिछले महीने ही तो पच्चीस वर्षीया आलिया ने अपनी बेहद नर्म आवाज़ से बतलाया था "राजू भाई, पूरे दो साल हो गए इस बेल को लगाए हुए। लेकिन इक्का-दुक्का से ज्यादा फूल खिलते ही नहीं। इस बार फूल नहीं खिले तो काट दूँगी।" सुनकर अम्मा बीच में बोली "न-न बिटिया ऐसा न करना। हरी बेल को कभी काटना नहीं चाहिए... पाप लगता है। खाद पानी डालती रहो, देखना इस बार लहकेगी। 'ठीक है चाची' कहकर आलिया छोटे से लॉन की सफाई में लग गई। और वाकई इस साल बेल ऐसी लहकी की पत्तियाँ दिखलाई नहीं दे रही थीं लेकिन उसे देखकर गद्-गद् होने वाली माँ-बेटी न जाने जीवन की किस उलझन को सुलझाने में लगी थी। लहकती बेल की खूबसूरती को जी भर कर देखने का वक्त ही नहीं निकाल सकी थीं।

पाँच साल पहले मुसलमान परिवार ने हमारे घर के बगल में अपना घर बनाना शुरू किया तो अम्मा बड़बड़ाई थी। "ये मुसलमान तो बड़े गुस्से वाले और लड़ाकू होते हैं.... कहीं हमारी शांति न भंग कर दें।"

मकान बनने में पूरा एक साल लगा इस बीच आलिया और उसकी अम्मी के मृदुल एवं सहयोगी स्वभाव से अम्मा का डर धीरे-धीरे कम होता चला गया। गृहप्रवेश के बाद जब वे रहने आ गए तो पंडिताइन अम्मा ने उनके रहन-सहन, खानपान और रोजमर्रा की गतिविधियों का बड़ी बारीकी से अध्ययन करना शुरू कर दिया।

"ग्वालियर वाली जिज्जी तो कह रही थी कि मुसलमान हफ्ते में एक बार शुक्रवार को ही नहाते है।। पास बैठते हैं तो तेज गरम मसाले और लहसन प्याज की बदबू आती है उनके कपड़ों से। लेकिन आलिया के घर तो.....।"

मेरी पत्नी बीच में बोल पड़ी.... सुबह पाँच बजे जब मस्जिद का मुल्ला पुकार लगाता है न तभी से उठ जाती हैं माँ-बेटी। पहले नमाज़ पढ़ती है, फिर पूरे घर का झाड़ू पोंछा। नौ बजे तक आलिया के दोनों भाई और वो खुद अपनी बुटीक के लिए नहा-धोकर, खा-पीकर निकल जाते हैं। दिन में आलिया की अम्मी सर ढक कर धार्मिक किताब पढ़ती है। पूरा घर चमचमाता रहता है उनका।" सुनकर मुझे तसल्ली हुई।

एक दिन मैंने देखा अम्मा अपनी सफेद धोती के आँचल से एक कटोरी ढाँक कर आलिया के घर दाखिल हो रही हैं। लौटी तो कटोरी को वैसे ही ढाँक कर ले आई और अपनी थाली लगाने लगी। मैंने उत्सुकतावश पूछ लिया "क्या लाई हो अम्मा, और क्या ले गई थी।"

"कुछ नहीं राजू.... आलिया को अर्बी के पत्तों की बेसन वाली सब्जी पसंद है वही देने गई थी। उसकी अम्मी ने पकौड़ों वाली कढ़ी दे दी....ले थोड़ी तू भी चख ले... खाना बहुत अच्छा बनाती है आलिया की अम्मी।"

छूआ-छूत पर विश्वास रखने वाली अम्मा मुसलमान के घर उठना बैठना और खाने की चीजों का आदान-प्रदान करने लगी है, देखकर बेहद आश्चर्य हुआ।

मेरा बेटा विक्की चार साल का होने वाला था लेकिन स्कूल के नाम पर दहाड़ें मार-मार कर रोता था जितने दिन भी नर्सरी स्कूल गया, क्लास की खिड़की से बाहर बैठी दादी को बार-बार आवाज़े देता रहा। आलिया का छोटा भाई बारहवीं के बाद प्राईवेट स्कूल में पढ़ाने लगा था। मुहल्ले के चार-पाँच बच्चे शाम को उसके पास ट्यूशन पढ़ने आते थे। अम्मा विक्की को बेग के साथ रोज़ उसके पास ले जाने लगी। अम्मा दूसरे कमरे में आलिया की अम्मी से बातें करती हुई कभी सब्जी काटने लगती, कभी बुटीक की साड़ियों और ब्लाऊज में पिको फाल करने या बखिया करने लगती। दादी बैठी है इसी भरोसे से विक्की हमउम्र बच्चों के साथ बैठकर पढ़ने लगा। धीरे-धीरे विक्की खुद ही, तीन बजते ही बस्ता उठाकर आलिया के घर जाने लगा।

पढ़ाई खत्म होने के बाद आलिया की अम्मी बच्चों को चॉकलेट, बिस्कुट देते हुए कहती 'शुक्रिया बोलिए।'

जब मुसलमान बच्चे घर जाते हुए 'अल्ला हाफिज़' कहते तो देखा-देखी विक्की भी "अल्ला हाफिज़" बोलने लगा। अब वह घर में किसी भी चीज़ को लेते हुए 'शुक्रिया' कहता और घर से जाते हुए अल्ला हाफिज़ कहने लगा। घर में तो वह धमाचौकड़ी मचाए रहता लेकिन आलिया के घर बड़े ही तहज़ीब से बैठता और आप-आप करके छोटे-बड़े से बातें करने लगा।

कट्टर रुढ़िवादी पंडित घर की पली मेरी पत्नी ने विक्की के संस्कारों में उर्दू एवं मुस्लिम संस्कृति को घुलते-मिलते देखा तो उसके दिमाग में अलगाववादी कीड़ा कुलबुलाने लगा। "क्या सीख रहा है विक्की ये। क्यों धन्यवाद की जगह बात-बात पर 'शुक्रिया' कहने लगा है और ट्यूशन पढ़ने जाते समय मेरे और अम्मा के पैर छूकर अल्ला हाफिज़ कहता है.... अगर हमारे परिवार वाले सुनेंगे तो क्या कहेंगे। यही न कि ब्राह्मण लड़के को मुस्लिम संस्कार सिखा रहे हो। बचपन में सीखी गई बातें ही तो बच्चा जीवन भर याद रखता है ....। "हमारे वार्तालाप के समय मैंने देखा कि विक्की पूजाघर में अम्मा के साथ बैठा श्लोक दोहरा रहा है और बीच में हाथ उठाकर घंटी बजा देता है। इत्मीनान की सांस लेकर मैं बोल उठा... "रजनी, अब समय बदल गया है। अब हमें बच्चे को अपने संस्कारों के अलावा दूसरे धर्मों खास तौर पर इस्लाम धर्म के अच्छे संस्कारों से भी परिचित कराना चाहिए ताकि बड़े होने के बाद मुसलमानों के साथ मेल-जोल बढ़ाने, साथ रहने, काम करने में जरा भी हिचक पैदा न हो। लोगों ने हिंदू-मुसलमानों के बीच लकीरें खींचकर देश के दो टुकड़े कर दिए। और अब कितने टुकड़े होते देखते रहेंगे हम।"

"रजनी हमारे विक्की को अप्रत्यक्ष रूप से बचपन में ही मुस्लिम तहज़ीब वालों के साथ रहने का मौका मिल रहा है इससे वह अपनी संकीर्ण सोच के दायरे से बाहर निकलकर दूसरे कल्चर के साथ घुल-मिलकर अपने व्यक्तित्व का विकास ही करेगा। उसे सोच का विस्तृत आकाश मिलेगा। वह अपनी कुंठाओं और धार्मिक दायरों से बाहर आकर हिंदू-मुसलमानों के बारे में अलग-अलग नहीं सोचेगा बल्कि वह सिर्फ इंसानों के बारे में सोचेगा। धर्मनिरपेक्षता का पाठ हम नहीं पढ़ाएँगे बच्चों को तो देश सिर्फ जातिवाद और धर्म को लेकर होने वाले दंगें-फसादों का ही मैदान बना रहेगा। बच्चों को बचपन से ही सिखलाया जाना चाहिए कि हिंदू धर्म और इस्लाम को मानने वालों में मूलभूत रूप से कोई भेदभाव नहीं है। बच्चों के बड़े होने तक तथाकथित कट्टर पंडित और मौलवियों को अपनी रोटी सेंकने और स्वार्थपरता भरी कूचालों को तर्क-वितर्क करके समझने की सूझबूझ पैदा करना हमारा कर्तव्य है तभी तो हम धर्मनिरपेक्ष देश की कल्पना कर सकते हैं।" मेरी भारी भरकम बातें सुनती रही रजनी लेकिन उस दिन के बाद उसने कभी भी विक्की को रोका नहीं।

आलिया का परिवार मेरे परिवार के साथ घुलमिल गया। पत्नी दूसरी बार माँ बनने वाली थी। विक्की

भाषा ISSN 0523-1418

कभी-कभी आलिया के साथ सो जाता। आलिया की सुंदरता और शालीनता देखकर मेरी पत्नी अक्सर उसे छेड़ते हुए कहती "जब तुम्हारी शादी होगी तो जवाई बाबू को पहले ही समझा देना कि हम तुम्हारे जैसी ही बहू लाएँगे विक्की के लिए..... समझ गई न। सुनकर शर्म से आलिया की कान की लोलकी लाल बिरबुहटी हो जाती.... सोच लो हम हिंदू हैं...बाद में मुकर तो न जाओगी।"

आलिया तपाक से कहती..... "हिंदू-मुसलमान तो हमने बनाए है भाभी। पहले तो हम इंसान हैं। वादा रहा ....जिंदगी रही तो निभाऊँगी जरूर।" सुनकर कट्टरवादिता मुँह छिपाने लगती और धर्म निरपेक्षता मस्ती भरी अंगड़ाइयाँ लेने लगती।

अम्मा ईद के समय आलिया के लिए जोड़ा, मेहंदी और सेवईयों के साथ चूडियाँ जरूर भिजवाती। दिवाली-होली पर आलिया की मम्मी अपने हाथ से दही बड़े, खोए के गुलाब जामुन और स्वादिष्ट गुजिया बनाकर भिजवाती। अम्मा और आलिया की अम्मी दोनों शाम को पोर्च में कुर्सी डाले दुनिया जहान की बातें करते हुए ठहाके लगातीं।

दोनों पड़ोसी परिवार एक दूसरे के पूरक बन गए थे, लेकिन अचानक आलिया के मकान बेचने के फैसले ने हम सब को विचलित कर दिया।

आलिया ने बुटीक के पेपर गिरवी रखकर लोन लेकर बड़ी मेहनत से मकान बनवाया था। मकान बेचने का उसका अप्रत्याशित फैसला मुझे हज़ारों सवालों के रेगिस्तान ले गया जहाँ दूर-दूर तक जवाबों की कोई झील नहीं थी। धीर गंभीर आलिया अपनी समस्याओं को अपनी अम्मी के साथ भी नहीं बांटती। कहीं सुनकर अम्मी ने सदमा ले लिया तो क्या होगा.... आठ साल से अब्बू के इंतकाल के बाद अम्मी ही तो उसका एक मात्र सहारा थी। भाई की अचानक मौत के बाद आलिया के अब्बू ने उसके दोनों बच्चों को अपने पास रखकर परवरिश की। उनके मरने के बाद आलिया ने उनके कौल को पूरा करने के लिए कमसिन भाईयों को अपने साथ ही रखा। एक बुटीक की कमाई और खाने वाले पाँच पेट....रबर की तरह कहाँ तक खिंचती उसकी आमदनी। मकान के लोन की किश्त भी हर महीने बदस्तूर जमा करनी पड़ती थी।

आलिया से पूछने की हिम्मत नहीं हुई, लेकिन इतना तो समझ में आ गया कि जरूर कोई बड़ी और गहरी वजह है जिसने आलिया को इतनी मेहनत और प्यार से बनाए गए मकान का सौदा करने के लिए मजबूर किया है।

आलिया का मकान बिक गया। अम्मा तो काठ की हो गई और विक्की का रो-रो कर बुरा हाल था। अग्निहोत्री के परिवार का सामान ट्रक से उतरने लगा। तीन बेटियाँ, दो बेटे, भरा-पूरा घर। अग्निहोत्री जी नगर निगम में इंजीनियर थे।

बमुश्किल एक रात ही कटी थी कि दूसरे दिन मजदूरों ने मेन गेट उखाड़ने की प्रक्रिया में इतनी ज़ोर से सब्बल की चोंटें मारी कि मेरे दिमाग की नसें तड़कने लगी। मेन गेट को चेंज किया गया। कमरों के फर्श की मोजाक उखाड़कर संगमरमर बिछाया गया। लकड़ी की अल्मारियाँ और कबर्ड बनने लगे। पूरे दिन ठक-ठक की आवाज़ें आती रहती।

झांसी जैसे कस्बे में लोग कहीं न कहीं आपस में टकरा ही जाते। उस दिन आफिस में सहकर्मी ने बर्थडे की पार्टी दी तो मैंने अग्निहोत्री के मंझले बेटे को उसी होटल में दोस्तों के साथ बियर पीते, मटन खाते देखा। इत्तेफाकन एक दिन देर रात को ऑफिस से लौटने लगा तो अग्निहोत्री को अंग्रेजी शराब की दुकान से अखबार में बोतल लपेटे गाड़ी में रखते देखा। कट्टर ब्राह्मण परिवार अपने संस्कारों एवं क्रियाकलापों से वास्तव में कितना ब्राह्मण रह गया है ये सोचकर ही मन अफसोस से भर गया।

उस दिन शाम को गणेश चतुर्थी पर पूजा का सामान लेने मैं पत्नी और विक्की के साथ खरीदारी कर रहा था कि विक्की ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा "आलिया दीदी..... आलिया दीदी..." और स्कूटर से उतरकर भीड़ भरी सड़क के दूसरी तरफ खड़ी आलिया और अम्मी की तरफ तेजी से भागने लगा। आलिया उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी और धीरे-धीरे सड़क पार करके हमारे पास आकर खड़ी हो गई।

आलिया की अम्मी दुबली हो गई थी और आलिया का गुलाब सा चेहरा वक्त के थपेड़ों में कुम्हला गया था .....।

"अम्मा बहुत याद करती हैं आंटी आप लोगों को।" पत्नी बोली

"आलिया तो रात को नींद में विक्की, विक्की चिल्लाते हुए उठ कर बैठ जाती है..... राजू।" आलिया की अम्मी ने कहा।

आलिया की आँखें पनीली हो गई और वह मेरी पत्नी के कंधे पर सर रखकर फफक पड़ी...।

"क्यों बेच दिया आलिया तुमने मकान? ऐसी क्या मजबूरी थी??" मैं अपने अंदर की तल्खी को दबा नहीं सका।

भर्राए गले से हिचकियों के साथ बोले गए आलिया के एक-एक शब्द मुझे भीतर तक चीरते चले गए।

"मेरे चचाज़ाद दोनों भाई सत्ताईस-तीस साल के होकर भी आर्थिक रूप से मेरी कोई मदद नहीं करते थे। सिलाई में कंपीटीशन और कारीगरों की मनमानी की वजह से बुटीक की आमदनी से पाँच लोगों का गुज़ारा नहीं हो पा रहा था। पिछले छह महीनों से मैं बैंक लोन की किश्त भी जमा नहीं कर सकी थी। बेरोज़गार भाई ने लव्ह मैरिज करके एक और जिम्मेदारी मेरे कंधों पर डाल दी। अम्मी काम करने के लिए कहती तो वे दोनों सीनाज़ोरी पर उतरकर कहते "मकान में हमारा भी हिस्सा है। यह यहीं रहेंगे, जब काम मिलेगा तभी तो करेंगे न।" तो मैं क्या करती राजू भाई।

"लड़के ने शादी करने से पहले एक बार भी नहीं सोचा कि हमें आसरा देने वाली बड़ी बहन अभी तक कुंवारी है.... पहले उसकी शादी करनी चाहिए। इसलिए मकान बेचकर बैंक लोन चुकाया और एक प्लॉट लिया शहर से ज़रा बाहर.... अब वहाँ दो-दो कमरों के दो मकान बनाए जा रहे हैं। एक दोनों लड़कों के लिए, एक हम माँ बेटी के लिए।" आलिया की अम्मी ने खुलासा किया। अपनों की खुदगर्जी और बेहिसी... बेमुरव्वती ही इंसान को तोड़ देती है। जिन भाईयों को पालते-पालते आलिया ने अपनी पूरी कमाई, अपनी उम्र का खुशनुमाँ वक्त सहरा बनाकर गँवा दिया, उन निकम्मे भाईयों ने एक बार भी उम्र गंवाती खुशियों से बेदखल हुई बहन के बारे में नहीं सोचा। बस यही दस्तूर रह गया अब हमारे समाज का।

"आलिया बुआ घर चलिए न, दादी आज प्रसाद के लिए पंजीरी बनाएंगी। आपको बहुत पसंद है न।" विक्की आलिया के गले में नन्हीं-नन्हीं बाँहें डालकर बोला।

"आएँगे बेटा आएँगे। जब अग्निहोत्री जी गृहप्रवेश करेंगे तब जरूर आएँगे।"

घर में घुसते ही विक्की ने सबसे पहले अम्मा को आलिया से मुलाकात का विवरण दिया तो अम्मा की आँखों दरिया उतर आया..... बूढ़े चेहरे पर अफसोस और उदासी की रेखाएँ खिंच गई।

पड़ोस से घिसाई मशीन की घर्र-घर्र और ठोंकने पीटने की आवाजें बदस्तुर आ रही रही थीं।

शाम को दूध लेने डोलची लेकर बाहर निकला तो अग्निहोत्री कार से उतर रहे थे। औपचारिक मुस्कान के आदान-प्रदान के साथ-साथ मिलते हुए मैंने पूछ लिया "कब कर रहे हैं गृहप्रवेश।" मुझे आलिया के आने का बेसब्री से इंतजार था।

"अभी समय लगेगा। बहुत सारा काम करवाना बाकी है।"

"लेकिन मकान तो पूरी तरह से रहने लायक था। आलिया का परिवार सात सालों से रह रहा था और बहुत अच्छा मेनटेन भी किया था।"

"एकचुअली अब हम किचन ओटे की टाइल्स और नीचे का फर्श बदल रहे है।"

"क्यों?"

"वे लोग मुसलमान थे। सालों से नानव्हेज पका खा रहे थे। मसालों के और नानव्हेज के छींटे टाइल्स और नीचे के फर्श पर पड़े होंगे, फर्श पर रखकर मटन, मछली काटा और साफ किया होगा। हम सूर्य कुल के ब्राह्मण है। ऐसी जगह भोग का कच्चा-पक्का खाना कैसे पका सकते हैं और कमरों की जिस फर्श पर उन्होंने नमाज़ें और फातेहा पढ़ी होगी, वहाँ भगवान की मूर्तियाँ कैसे स्थापित कर सकते हैं। वाईफ तो लेट्रीन के इंडियन और कोमोड पॉट भी बदलने के लिए ज़ोर दे रही है। मुसलमानों द्वारा उपयोग में लाई गई चीजों का हम ब्राह्मण कैसे प्रयोग कर सकते हैं।" अग्निहोत्री जी की तर्कहीन बातें सुनकर मेरे कानों में हजारों अलावे धधकने लगे और दिल में अफसोस का हाहाकार मच गया।

खुद को बहुत संयत करने के बावजूद अपने रोष को छुपा नहीं सका "अग्निहोत्री जी, जिनकी रसोई के

भाषा ISSN 0523-1418

मांसाहारी खानों के छींटे पड़ने के भ्रम में आपने इतना ज्यादा रुपया और समय बर्बाद किया है वे लोग मांसाहारी थे ही नहीं। मुसलमान होकर भी पूरी तरह से सात्विक भोजन का सेवन करते थे। प्रतिदिन नहा धोकर घर को मंदिर की तरह साफ रखते थे। रहा सवाल नमाज़ और फातेहा पढ़ने के लिए मुसलमान परिवार के द्वारा इस्तेमाल किए गए फर्श को उखाड़कर नया फर्श लगाने को तो हिंदुत्व "कण-कण में भगवान है" के सिद्धांत को मानता है इस्लाम भी इसी सिद्धांत को मानता है कि ज़र्रे-ज़र्रे में खुदा है। क्या इस सच्चाई को भी आप गीता, रामायण, वेदों से निकाल फेंकेंगे। मुसलमान तो अपनी नमाज़ों में अपने शरीर के अलावा हिंदुओं की तरह रोली, चंदन, दीया-बाती, फूल-पत्ती, नारियल, धूप, प्रसाद, पानी आदि किसी सामग्री का इस्तेमाल नहीं करते फिर फर्श के अपवित्र या गंदा होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? अग्निहोत्री मेरी बातें सुनकर स्तब्ध रह गए..... और निरूत्तर से बोझिल क़दम उठाते हुए मेन गेट से टिके, जड़, मूर्तिवत खड़े के खड़े रह गए।

– 6/2, केवल विहार, सहस्रधारा रोड, देहरादून-248001

❑❑❑

नई सुबह की तैयारी

सत्यनारायण भटनागर

रात उतर आई है धरती पर
अंधकार बिखेरते। आसमान से
अंधकार छा रहा है- मौन साधकर
उसकी कोई हलचल नहीं है।
उसका अनुशासन। फैला रहा है कालिख
कह रहा है अंधकार
अब सुस्ता लो। विश्राम करो
आवाजें बंद करो। रात हो गई है।
यह रात भी जरूरी है- मेहनत करने के लिए
गहरी नींद चाहिए उसे
ताकि स्वप्न बुन सके सुनहरे
रंग भर सके जीवन में
नई ऊर्जा की खेती कर सके वह
अंधकार जरूरी है नए सृजन के लिए
शांत/निशब्द अंधकार में होता है सृजन
साहित्य का/कला का/प्रेम का
मौन को भी वाणी चाहिए
अंधकार में आदमी ध्यान में उतरता है।
अपने अंदर प्रवेश करता है अनजाने
उठा लाने को अंदर का माल असबाब
अंधकार बदल देता है शक्ल आदमी की
बना देता है सबको समान
दे देता है समानता के स्वर
आसमान में तारे टिमटिमा रहे हैं
आकाशगंगा बह रही है आकाश में
चाँद आ गया है नेतृत्व करने
ठंडी हवा चल पड़ी थी।
पक्षी लौट चुके हैं नीड़ पर
वे भी कर रहे हैं विश्राम
प्रकृति दे रही है संदेश
प्रकाश का काम नहीं है अब
प्रकाश का रागरंग/हल्ला-गुल्ला बंद करो
नई सुबह की तैयारी है यह

- 68, कालिंदीकुंज, पिपल्याहाना, इंदौर, मध्य प्रदेश-452001

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

शब्द नि:शब्द

मोहन परमार

शब्द नि:शब्द नहीं होता है
नि:शब्द होती है
भावना की सीमा रेखा
शब्द तो ब्रह्मांड में
गूंजते हैं ध्वनि तरंग
निनाद की तरह।

शब्द कभी शून्य नहीं होता है
वह तो मंदिर का मंगल कलश होता है।
या किसी मस्जिद की मीनार
का गूंजता संदेश होता है।

शब्द तो प्रणवाक्षर है संसार में
शब्द तो स्पंदन है शरीर का
वह कैसे मौन हो सकता है?
जैसे संसार में सत्य से
बड़ा कौन हो सकता है?

शब्द तो रहबर है पथिक के लिए
शब्द मोती है किसान के लिए
शब्द अमर ज्योति है श्रमिक के लिए
शब्द तो पनघट है पनिहारिन के लिए
शब्द तो अनगढ़ है शिल्पकार के लिए

शब्द का पथ
तो निष्कंटक है
गंतव्य के लिए,
शब्द तो ज्ञान का है सागर
उसमें समा जाते हैं
कई महासागर

शब्द की महिमा
तो भक्त के लिए
करुणा सागर भवसागर है।
शब्द का न तो
आदि है न अंत
वह तो केवल और केवल
अमूर्त निराकार है।

– गोदावरी भवन, 148, काटजू नगर, रतलाम, मध्य प्रदेश

❑❑❑

जल जंगल ज़मीन से आगे

योगेश्वर कौर

ज़मीन और जंगल से परे
आप जाएँगे भी तो कहाँ

प्रकृति को पीछे छोड़
पिछड़ नहीं जाएँगे?

सांस में आस है और आस में सांस
अंदर भी, बाहर भी, एक नक्शा है
जोड़ता हुआ प्राण को देह से
खुशहाली को संदेह से

हवा पानी को भूलते, इनसे दूर होते दोस्तो!
बचाओ, इस हवा को तो बचाओ

हवा ही बिगड़ गई तो संभल नहीं पाओगे
नादान कहलाओगे

पानी-पानी होने या करने में
यहाँ देर ही कितनी लगती है
एक बत्ती है अंदर-बाहर जलती
उजाला देती, खुशनुमा कहलाती है

ज़िंदगी का सच
जल, जंगल और ज़मीन से आगे भी
एक खुला-खुला गुलदस्ता है
प्रतिदिन मुस्काता
खिलखिलाता, मुरझाता या हँसता रह जाता है।

– साहित्य संगम, 239, दशमेश एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर निकट चंडीगढ़, पंजाब-160104

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

भोरहरी में टहलना

कुल शइकीया

अनुवाद : महेंद्रनाथ दुबे

"जान पड़ता है कि नियमित रूप से आप का यहाँ आना होता है। सचमुच ऐसा होता है क्या?"

"मन करता है, तो आता हूँ, परंतु कभी-कभी तो मन होने पर भी आना नहीं हो पाता है। जैसे कि यही स्थिति देखें न, कि यहाँ आने के लिए निकल ही रहा हूँ, कि तभी मनजीत आ धमकता है, अरे वही मनजीत, तुम्हें उसकी याद आ रही है न, जो पढ़ने-लिखने में अतिशय गंभीर था, अपने सर के बालों में नियमित रूप से नारियल का तेल लगाकर कंघी से बड़े करीने से माँग काढ़े, झाड़-झूड़ कर सजा-सँवार कर आता था। वही मनजीत कभी-कभी मेरे यहाँ भी आ जाता है। उसके बाद तो उसके साथ कुछ देर की बैठकबाजी, नाश्ता-पानी चाय, मिठाई का चक्र चलता ही है। अरे हाँ, मिठाई खाना अभी भी जारी है। कोई चिकित्सकीय विघ्न-बाधा की समस्या नहीं है।"- "उसके बाद तो फिर इधर बाजार की ओर भी संभवत: आना नहीं हो पाता, चाहे पहले से ही इधर ही आने का विचार बना रहा हो। घर के पास के सुपर-मार्केट में ही जाकर ऐसी वैसी चीजें खरीद लाते हो।"

"ठीक समझे, वैसी ही बात है। कभी-कभी तो आने का निश्चय कर चुकने के बाद भी स्वयं ही अचानक न आने का निर्णय कर लेता हूँ। असली बात बताऊँ तो वह यही है कि कोई भी बंधी-बंधाई, लगातार एक ही रूप में चलने वाली गतिविधि या प्रणाली मुझे अच्छी नहीं लगती। बस केवल एक ही ऐसा काम है, जिसे नियमपूर्वक ठीक-ठाक ढंग से करते रहने का स्वभाव अभी तक बनाए रखा है,- सो यह कि रोज़ साढ़े पाँच बजे भोरहरी में ही सेंट्रल-पार्क (केंद्रीय उद्यान) में जाकर उसके जॉगिंग-ट्रैक (साधारण कूद-काँद करने का चत्वर) पर जॉगिंग करना। फिर उसके पास की बेंच पर कुछ देर तक बैठ या पसर कर आराम करना, उसके बाद घर की ओर-"।

"मैं भी वैसा ही करता आ रहा हूँ केंद्रीय-उद्यान की जॉगिंग-ट्रैक पर जाकर; परंतु वहाँ पर तुम्हें कभी देखा है, ऐसा तो कुछ याद नहीं आ रहा। हो सकता है कि कभी-कभार देखा भी हो किंतु पहचान नहीं सका होऊँ। क्योंकि अंतत: इतने वर्षो के बाद भेंट होने पर उस प्रकार का स्मृति- विभ्रम हो जाना कोई अचरज भरी बड़ी बात नहीं है।"

"हम लोग निश्चय ही एक-दूसरे से मिल नहीं सके थे, इसका एक स्वाभाविक कारण यह भी हो सकता है कि हम लोगों के यहाँ पहुँचने का समय निश्चय ही अलग-अलग रहा होगा। मैं आज यहाँ पहुँचा था पाँच बजकर अट्ठाइस मिनट पर, निपट भोरहरी में ही, उसके बाद दो मिनट के लिए भी ऐसी-वैसी मनमाने ढंग की नियम-कानून से मुक्त (फ्री हैंड एक्सरसाइज़) तरह-तरह की कसरतें और फिर जा घुसा जॉगिंग-ट्रैक में, अड़तीस मिनटों के लिए दौड़ा-दौड़ी, फिर दो मिनट में सभी कुछ शांत-शीतल कर-(कूलिंग-डाउन)-सुस्ता लेने-शारीरिक-व्यायाम प्रशिक्षक के पाठ के अनुरूप-"

"और मैं अपने जॉगिंग के समय को एक घंटा और आगे बढ़ा ले आया। इसके परिणाम-स्वरूप पंचानन

के साथ केंद्रीय- उद्यान में मिल पाने का मौका पा सका। फिर तो वही बातें कुछ दिनो की भोर की इस प्रातः कालीन उषा बेला की अतिशय महत्वपूर्ण जानकारियाँ हासिल करने का सिद्ध हुआ स्वर्णिम सुयोग।- मैं और पंचानन। यहाँ-वहाँ अनेकानेक प्रातः कालीन बेलाओं में जगने की, उषा की शुरू होती ललाई के समय की निर्मल हवा के झोंको में, प्रदूषण रहित परिवेश में साथ-साथ मिलकर कदम बढ़ाने, टहलने या दौड़ने से मन में एक अलग प्रकार की सुखानुभूति होती है। थकान कम लगती है। इस प्रकार से अभ्यास-रोज-करने का समय और अधिक समय तक बढ़ा सकते हैं-"

सर घुमाकर पंचानन की ओर देखा। उसे कुछ थकान लग रही है। नाक से मुँह से निकलती हुई तेज़ श्वास-प्रश्वास की फो-फो की आवाज़ सुन पा रहा हूँ। साँसों के फूलने, जल्दी-जल्दी चलने का अनुमान कर पा रहा हूँ। तो भी ये सब बातें मैं एक झटके में कह गया हूँ। नीरवता-लगातार बढ़ती चुप्पी- के अप्रिय समय से अपने-आप को इस तरह हटा लेने की एक प्रकार से अंततः एक कोशिश की।

"एक ही बात जरूरी है। अकेले-अकेले होने पर भी तुम्हें कुछ करना चाहिए, करना ही पड़ेगा। तुम्हें जीवित बने रहने के लिए जिन कामों को क्षण-प्रति-क्षण करना चाहिए ही, वे सब तुम्हें अकेले-अकेले ही संपन्न कर लेने चाहिए। श्वास-प्रश्वास की ही बात लो न। उसके लिए अकेले-अकेले ही तुम्हीं पूरा करने के लिए मज़बूर हो। स्वयं उत्तरदायी हो। लंबी साँस खींचकर स्वच्छ प्राण-वायु (ऑक्सीजन) अपने फेफड़ों में पूरा भर लेने तक प्रवाहित कर लो। वायु की इस नदिया को निरंतर बहाते रखने की सुव्यवस्था...।"

"पंचानन ने गले में अटका थूक घोंटा।" जान पड़ा कि उसकी जीभ सूख गई है। मैंने सुझाव दिया- "थोड़ा विश्राम कर लिया जा सकता है। सीमेंट की जो लंबी बेंच बनी है, उस पर कुछ समय तक बैठे रहने से..."

"एक चक्कर तो पूरा हो ही गया है। कभी-कभी किसी संगी-साथी के मिल जाने पर चार चक्कर भी पूरे हो जाते हैं। चक्कर वाला ट्रैक बहुत लंबा है इससे कोई विशेष चिंता मत करना-" मेरी बात सुनने के बाद पंचानन ने ऐसा एक तथ्य ला रखा, जो कि इस बीच मुझे पहले से ही ज्ञात था। क्योंकि पिछले कई वर्षों से मैं भी यहाँ सवेरे-सवेरे दौड़ (दौड़ कर चक्कर) लगाता आ रहा हूँ बिलकुल मन करने पर कभी-कभी तो अकेले-अकेले ही चहलकदमी कर लौट गया हूँ। कभी-कभार यहाँ पर नवमल्लिका, अथवा आनंद, मोहन वग़ैरह से भी मुलाकात कर पाया हूँ। काफी दिनों के बाद एक दिन अखिल के साथ भी आमना-सामना हो गया था, परंतु उसके साथ तो कालेज में पढ़ते समय से ही मेरी बातचीत बंद हो गई थी। उस बंद हो चुके रास्ते के दरवाज़े को खोलने की कोई चेष्टा अभी-आज तक हुई नहीं। संभवत-

"हम लोगों के बिलकुल करीब से ही जो व्यक्ति अभी-अभी गुजर गया है, उसे पहचान पाए हैं-" "अरे वह तो ध्रुव है, वही ध्रुवदास।"- पंचानन ने जिस व्यक्ति की ओर इशारा किया, उस व्यक्ति को पहले कभी-देखा है, ऐसी कोई बात स्मरण नहीं हो पाई। मेरे मुँह पर जो चुप्पी छायी रही, उसी ने बतला दिया कि- "नहीं, मैं ध्रुवदास को नहीं पहचानता। इतना ही नहीं, बल्कि उसे इस मैदान में भी कभी देखा है,"-यह भी याद नहीं आ रहा। कारण यह कि इतने सवेरे-सवेरे की इस घुमक्कड़ी में इतना लंबा समय गुजर चुकने पर भी मैं बस केवल तीन-चार व्यक्तियों को ही पहचान पाया हूँ। संभव है कि इस भोरहरी में टहलने के मेरे और ध्रुव के समय में ही फर्क रहा हो, और उसी वजह से हम-दोनों ही एक-दूसरे की दृष्टि में ठीक से पड़ नहीं सके।"

इतनी सी बात भी एक ऐसे आदमी से कहना सुनाना ठीक नहीं है, जिसके दिल की धड़कन धीरे-धीरे बढ़ती ही गई हो। मेरी थकावट की मात्रा भी बढ़ गई है। मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि पंचानन की चलने की गति कुछ बढ़ गई है फलतः उसके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने की जो कोशिश मैं कर रहा हूँ, वह एक कठिन प्रयास के रूप में बदल गई है।

थैली में से रूमाल निकालकर पंचानन ने अपने मुँह-कपाल-माथे पर आई पसीने की बूँदों को पोंछ-पोंछ कर साफ कर लिया। उसने जो कालरदार गंजी (टी-शर्ट) पहन रखी है। उसके पीछे की ओर जो अक्षर लिखे-छपे थे, उनके अक्षरों के रंग कुछ उखड़-पखड़, धुल-पुँछ गए हैं फिर भी कोशिश करके उन्हें समझ सकते हैं कि वहाँ क्या लिखा हैं-

"किसी एक जगह पर गुटिमाली (छोटे-छोटे सफेद रंग वाले) फूल खिला हुआ है। उसकी भीनी-भीनी सुगंध हवा पर तैरती आ रही है। सूँघ पा रहे हो?"

उत्तर में मैं पंचानन से साफ-साफ कह सकता था कि पिछले कई दिनों से सर्दी-जुकाम हो जाने के कारण मेरी गंध सूंघ सकने की शक्ति कम हो गई है, फलत: गुटिमाली फूल की सुगंध मैं नहीं सूँघ पा रहा हूँ।" किंतु ऐसा कहा नहीं। कहा कि "हाँ, सुगंध आ रही है- समय-समय पर, बीच में यहाँ और फूलों की सुगंध भी आती है।"

"बाजार में उस दिन जो तुमसे अचानक ही भेंट हो गई।"- उसे एक बहुत बड़ी घटना ही कह सकते हैं। आज कई वर्षों से हम दोनों के बीच किसी प्रकार का कोई संबंध होने का कोई आधार नहीं था। कल्पना भी नहीं की थी कि फिर कभी तुम्हें अपने इतने करीब पा सकूँगा। यह भी तो नहीं जान सका था कि तुम हमारी इस एक ही जगह पर रह रहे हो। कैसी अजीब-सी बात है कि "इतनी निकट की स्थिति में होते हुए भी हम इतने दूर-दूर हैं। बिल्कुल पास में रहकर भी बहुत-बहुत दूर रहना पड़ा।"

पंचानन ने जो बात कही, उसके उत्तर में मैं कह सकता था कि उसके जीवन की कुछ-कुछ बातें मुझे ज्ञात थीं। एम.ए. की कक्षा में पढ़ते समय ही अचानक एक दिन वह लापता हो गया था, यह हम सभी जानते थे। अफवाह फैली कि किसी एक साक्षात्कार (इंटरव्यू) के माध्यम से किसी एक बहुत बड़ी नामी-गिरामी अंतरराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) कंपनी में सफल होकर उसके किसी महत्वपूर्ण पद का बड़ा ऑफिसर बन गया है। दरसल उसकी पर्सनालिटी (व्यक्तित्व) सबसे भिन्न एक अत्यंत विशिष्ट प्रकार की है। हम लोगों से बहुत-बहुत ऊँचे दर्जे की।- "भूपेन ने कुछ इसी प्रकार का मंतव्य सबके सामने घोषित किया था क्योंकि भूपेन को ही इस प्रकार की महत्वपूर्ण घोषणाएँ करने का अधिकार प्राप्त था क्योंकि वही पंचानन का सबसे घनिष्ठ संगी था। इसके अलावा उसके जो कुछ और बहुत करीबी थे, उसमें पत्नी, नियति"

हमारी बगल से ही स्त्री-पुरुषों का एक झुंड निकल गया। जबकि उन लोगों के चलने की गति हम लोगों से भी कम थी। उनकी उम्र भी हम दोनों से दो-चार वर्ष अधिक की हो सकती है। उन लोगों की ओर मैं कुछ समय तक तिरछी नज़रों से देखता रह गया था। पंचानन कह उठा- "दूसरे की ओर चोरी-चोरी बाँकी नजरों से देखने की शरारती कार्रवाही की आदत अभी जिलाए रखे हुए हो। ठीक ही तो है। स्वभाव मरता कहाँ है। यद्यपि शरारत पूर्ण कार्रवाही करते हुए रंगे हाथ पकड़े जाने से हड़बड़ाहट का लज्जालू-भाव जरूर उभर आया था।"

"तुम्हारी ओर गंभीरता से देखने पर स्पष्टत: समझा जा सकता है कि तुम्हें कोई बीमारी या स्वास्थ्य संबंधी किसी भी प्रकार की कोई परेशानी नहीं है।"

"अत्यंत उत्साहित होकर पंचानन ने उत्तर दिया कि हाँ बीमारी वग़ैरह के आक्रमणों को वह अभी तक हराते हुए भगाता आया है। वस्तुत: यह सब कुछ एक पूर्व-परिकल्पित योजना के अनुसार क्रियाकलाप करते रहने पर निर्भर करने वाली बात है। तुम किस विशेष विधि से शरीर और मन को स्वस्थ-सुंदर बनाए रखना चाहते हो? इस परिकल्पना पर ही सभी कुछ निर्भर करता है।"

इस उम्र में उभर आने वाली अनेकानेक बीमारियों की लंबी सूची में से किसी का भी मैंने उल्लेख नहीं किया। बल्कि उसकी ओर ही ध्यान दिलाते हुए कहा- "तुम तो पहले से ही स्वस्थ मन-मस्तिष्क के सुगठित शरीर वाले हष्ट-पुष्ट स्वास्थ्यवान नवयुवक थे।"

"अभी भी ठीक उसी तरह से स्थिति बनी हुई है। कोई हेर-फेर नहीं है। न सर्दी, न ज्वर, न तो अन्य सब उम्र के हिसाब से होने वाली गंभीर किस्म की भयावह बीमारियाँ वग़ैरह कुछ भी नहीं। क्योंकि सभी कुछ के बावजूद मैंने दृढ़ निश्चय कर रखा है कि अपने दृढ़ आत्म-विश्वास के भरोसे सभी कुछ का दृढ़तापूर्वक सम्मान करते हुए सारी बाधाओं-विपत्तियों को परास्त करता रहूँगा।"

ऐसी लंबी भाषणबाजी करने के कारण उसकी नाक और मुख से गहरी श्वास-प्रश्वास की फों-फों की आवाज़ निकलने लगी है। साँस लेने में कुछ कठिनाई उसे हो रही है, "ऐसा साफ-साफ जान पड़ रहा है। जो कि स्वाभाविक भी है। क्योंकि इसी दौरान हम दोनों ने मैदान का दूसरा चक्कर भी पूरा कर लिया है और लाल

रंग वाली बैगनबेलिया के जो कई-एक झुरमुट हैं, उनके पास पहुँच गए हैं।

जहाँ से हमने आज भोर की आरंभिक बेला में जॉगिंग का अभ्यास शुरू किया था।

"इन सभी-युवक-युवतियों को देखकर अपने महाविद्यालय-विश्वविद्यालय के अध्ययन-अनुशीलन के दिनो की याद आ जाती है। तुम्हारा क्या कहना है?"

मेरी इस बात ने पंचानन की दृष्टि, हमारी बगल से ही उल्टी दिशा में दौड़ते हुए पार हो जाने-वाली नौजवान की टोली की ओर, निश्चय ही आदृष्ट किया परंतु उसके मुख पर एक बाँकी मुस्कान के बिखर उठने के अलावा और कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं दिखाई पड़ी।

"मेरी बात ने तुम्हारे मन-मस्तिष्क में किसी प्रकार के उत्साह-चांचल्य को उत्पन्न नहीं किया है। ऐसा मुझे साफ लग रहा है। जो कि तुम्हारे पुराने स्वभाव से बिल्कुल ही उल्टे ढंग की बात है। लगता है उम्र की ढलान की इस बुढ़ापे की दशा में तुम्हारे मन पर ऐसी बातों का अथवा यह जो जबरदस्त दृश्य घटित हुआ कि तुम्हारी बगल से ही इस नए जमाने के महाविद्यालयों में पढ़ने वाले नवयुवक-नवयुवती-छात्र-छात्राओं का एक झुंड हँसते-किलकारी भरते-अँठखेलियाँ करते हुए गुजर गया है फिर भी तुम्हारे लिए उसने तनिक सी किसी उत्तेजना-कुतूहल या प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं की है। ऐसा देख मुझे तो यह सब बहुत अस्वाभाविक महसूस हुआ है। क्योंकि तुम्हारे साथ पढ़ने वाले हम सभी लोग तुम्हें इतनी अच्छी तरह जानते-पहचानते थे कि इस प्रकार के कौतुकपूर्ण दृश्य घटित भी हो जाएँ, तो भी उनकी ओर पंचानन का ध्यान आकर्षित करने की कोई जरूरत नहीं है ऐसा सोचकर ऐसे दृश्यों की ओर उसकी दृष्टि आकर्षित करना ही छोड़ दिया था।"

इस दौरान हम केंद्रीय उद्यान में बनाए गए मनवटी फौवारे की जगह को भी पारकर आगे बढ़ आए थे। हमें वहाँ पहुँचा देख फौवारे के पानी में उछल-कूदकर नहा रही गौरैया चिड़ियों का झुड़ हड़बड़ा कर उड़ गया। उड़कर वे सब पास ही आँवले के एक पेड़ पर जा बैठी।

"दिन के आरंभ होने की निपट भोरहरी-प्रात: काल की बेला का एक अत्यंत सम्मोहक दृश्य है यह।"- थैली से रूमाल निकालकार उसने अपने पसीने को पोछ कर फिर बोल पड़ा- "यह दृश्य सवेरे-सवेरे ही दिखाई पड़ता है पास में ही वह जो रास्ता देख रहे हो न, इस समय वहाँ प्राय: सन्नाटा सा है सूना है। प्रात: कालीन बेला में यहाँ बस दो-एक मनुष्य ही दिख रहे हैं, इसके अलावा शहर की गंदगी लादकर ले जाने वाले ट्रक, या फिर साफ-सफाई में लगे हुए ट्रक एक-दो चाय के दूकानवालों के अलावा और कोई नहीं है। ऐसा लगता है जैसे आज का पूरा दिन इसी तरह जन-मानुषहीन-सूना-सूना ही रहेगा। यह सड़क और उसके पास के शहर के इस अंचल में रहने वाले तमाम सारे नागरिक सब व्यस्तता-पूर्ण दिन की तस्वीर आँकने की कोई कोशिश ही नहीं करेंगे। परंतु हम जानते हैं कि कुछ देर बाद ही धीरे-धीरे शहर इस सड़क पर हड़बड़ाकर दौड़ता हुआ आ जाएगा। अपने-अपने लक्ष्य की ओर सभी चल पड़ेंगे। तब ऐसा लगेगा जैसे सारे-के-सारे लोग बिना किसी निश्चित लक्ष्य के ही दौड़ते-भागते जा रहे हैं। केवल आगे और आगे बढ़ते चले जाने की मानसिकता के वशीभूत ही ये सभी अंधी दौड़ में शामिल हुए जा रहे हैं।

चलते रहने की इस प्रवृत्ति के पीछे कोई प्रेरणा नहीं है। कोई लक्ष्य नहीं है। बिना किसी उद्देश्य के बस एक वाहियत दौड़ा-दौड़ी अविराम निरर्थक यात्रा भर ही है यह।"

आश्चर्य चकित रह गया मैं इतनी सारी गंभीर बातें जॉगिंग करते-करते ही पंचानन जो एकतानता में कह गया। मेरे लिए तो यह और भी आश्चर्य की जानकारी रही कि अभी कुछ देर पहले थोड़ा सा बोलने पर भी जो उसकी साँसों के उखड़ जाने से उसकी नाक-मुँह से जो फों-फों की डरावनी आवाज़े सी निकल रही थीं अब इस इतने लंबे भाषण में उसका कहीं कोई नामोनिशान भी नहीं था।

"कुछ देर तक बैठकर सुस्ता लिया जा सकता है।" मैंने सलाह सी दी। किंतु मैंने अनुभव किया कि मेरी इस सलाह को उसने कोई महत्व नहीं दिया।

भिन्न-भिन्न आयुवर्ग के ढेर सारे आदमियों ने उद्यान के मैदान में जमा होकर भीड़ सी लगा दी है। सभी ने जैसे अपना-अपना एक अलग-अलग प्रकार का झुंड बना लिया है। संभवत: इन्हीं सबके बीच सामूहिक जुड़ाव के सूत्र ढूँढ कर बना लिए गए हैं।-

पंचानन ने हाथ से इशारा किया मैदान के बीच छोटे-छोटे झुंड बनाकर बैठे हुए कई एक झुंडों की ओर फिर आगे बोला जब "तुम से भेंट नहीं हो पाई थी, तब मैं भी इन्हीं में से किसी एक दल के झुंड के सदस्य के रूप में भर्ती हो गया था। उचित ही तो था, मनुष्य की समुदाय में रहने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति तो है ही।"

"महाविद्यालय के प्रशासनिक भवन के पूर्वी कोने में जो आहार-अल्पाहार व्यवस्थावाली दुकानें हैं, वहाँ उसी प्रकार के परिवेश में तुम्हें प्राय: देखा जाता था। ठीक वैसी स्थिति जैसी कि अपने चारों ओर अन्यान्य मछलियों से घिरी हुई झुंड बनाए चलती मछली। साथ में रहते थे तुम्हारी अच्छाइयों के दीवाने प्रशासक। उन सबके बीच बैठकर तूँ अड्डा जमाए हुए मौज-मस्ती में कौतुक भरी हँसी बिखेर रहे, अथवा कभी-कभी अत्यंत गंभीर प्रश्नों पर अपने तर्क पूर्ण व्याख्यानों से वहाँ उपस्थित सभी लोगों पर प्रभाव डाल उनकी बोलती ही बंद कर देते थे। सभी को सारांश में कहें तो उस जमाने के तुम सर्वप्रिय नायक थे। सहज ही बन आए ईर्ष्या के भाव-से दबे-घिरे हम लोग तुम्हारे पास से दुम दबाकर निकल आते थे। हमें अंदर-अंदर ही महसूस होते थे वे सब भाव जिनके वशीभूत हो पत्नी, नियति और भी ढ़ेर सारी कौन-कौन सी जो उस समय तुम्हें चारों ओर से घेरे होतीं, उन सभी के द्वारा तुम्हारी ओर मुक्त कुंठ से की जा रही वाह-वाह की शाबासी भरी, टकटकी भरी नज़रों से छिटक पड़ते से सुमधुर मांगलिक मुहुर्त-हम लोगों के लिए तो यह सब असहनीय मानसिक वेदना का कारण बन जाता था, और उससें भी अधिक चोट पहुँचाने वाली तुम्हारी वे सब टिप्पाणियाँ थी, जो इन सबके संबंध में तुम उस दुकान के कोने में हमें तरसा तरसाकर बतलाते थे। मूल कारण यह था कि हमें महसूस होता था कि जीवन का सारा माधुर्य बस तुम्हारे लिए आरक्षित हो गया है। जबकि हम लोगों के लिए जो जीवन मिला है वह बस एक रसहीन रेगिस्तान में चक्कर लगाते फिरने का ही कष्टदायक व्यापार है।"

कुछ देर तक मन-ही-मन मैंने अपने वक्तव्य का अभ्यास सा कर लिया था, जब विश्वास हो गया कि अब ऐसा समय आ गया हैं,' जब ये सब बातें साफ-साफ कही जा सकती हैं। ऐसी सुख पहुँचाने वाली जानकारियाँ पुरानी यादों की एक-एक चमक बिखेरने वाली स्मृतियाँ पंचानन के मन-मस्तिष्क को निश्चय ही भाव-विह्वल कर देंगी। तभी मेरे मुँह से ऐसा लंबा भाषण बाहर छलक पड़ा था। कहते-कहते, बीच-बीच में मैं जो थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुक-रुक कर विराम ले लेता था। उस बीच कनखियों से ताक-झाँक कर मैंने जो देखा था तो ऐसा लगा था कि पंचानन के चेहरे पर संतोष भरी हँसी तैरने लगी है।

"महाविद्यालय-विश्वविद्यालय में इस प्रकार की कलाबाजी चल ही जाती है...."

हमारे कानों के पास से ही कौवों का एक झुंड फड़फड़ाता हुआ तेजी से उड़ गया बात कहने के दौरान ही पंचानन ने उड़ते जा रहे कौवों के झुंड की ओर मुँह मोड़ कर निहारा। परंतु उसके मुहँ से उनके संबंध में कोई टिप्पणी नहीं निकली।

"पहले यहाँ आने पर सुदीप से प्राय: ही मुलाकात हो जाया करती थी। किसी बैंक में वह एक बड़ा अफसर हो गया है। उसके चलने की आदत ठीक पहले जैसी ही है। परंतु अब लगता है, जैसे लज्जा से दबा-दबाकर ही वह कदम बढ़ा रहा है। हम लोग कक्षा में उसी की तरह नकल कर कदम-ताल चाल चलकर उसे जो चिढ़ाते हुए हँसते थे और वह चिढ़कर कह पड़ता था-" पंचानन ने रूमाल से मुँह पोंछा और मौलश्री वृक्ष की एक डाल जो रास्ते में आगे बढ़ आई थी, उस का खोंचा न लगे, इससे बचने के लिए दाहिनी ओर कुछ झुक गया फिर बोल पड़ा- "उसने मुझसे क्या कहा था आज भूल गया हूँ। निश्चय ही उसने हमें किसी महापुरुष की कही हुई कोई अतिमहत्वपूर्ण वाणी ही सुनायी थी।" वह हँस पड़ा और फिर मेरी ओर देखने लगा।

"कभी-न-कभी यहीं पर पुन: उससे भेंट हो सकती है। जिस किसी ने भी एक-बार भोर में, निपट सवेरे-सवेरे टहलने की आदत डाल ली है। प्रात: भ्रमण उसका स्वभाव बन गया है, वह फिर उसे छोड़ नहीं सकता है।"- पास के मैदान पर बैठकर योग प्राणायाम कर रहे आदमियों की ओर कनखियों से देखते हुए मैंने अपनी राय समाप्त की।

हम दोनों के चलने की रफ्तार कुछ कम हो गई है। इसके पहले के तीन चक्करों को लगाने में जो समय लगा था, जिस रफ्तार से हम तब चल रहे थे, अब हमारी वह रफ्तार धीमी हो गई है। मैं उम्मीद करने लगा था कि पंचानन सुदीप के बारे में कुछ नई-नई बातें बतलाएगा, क्योंकि सुदीप के साथ इसकी बड़ी ही प्रगाढ़ मित्रता रही थी।

उत्तर की ओर से हमारी दिशा बदल गई। "बीते तीन महीनों से सुदीप से भेंट नहीं हो पाई है। संभवत: उसका तबादला हो गया है। इस संबंध में उसने कोई सूचना भी नहीं बताई है। मैं भी सोचता हूँ कि इसकी चिंता ही क्यों हो? कभी-न-कभी अपने आप ही हम दोनों फिर-मिल जाएँगे। अकस्मात ही घटना घट सकती है, ऐसा सोचकर मैंने इस पर विचार करना ही छोड़ दिया है।"

सुदीप के संबंध में चर्चा को और लंबी बढ़ाने का फिर तो कोई अवसर बचा ही नहीं।

"आकाश के दक्षिणी परिमंडल में गहरे बादल तो गहरा आए हैं। परंतु 'वर्षा होगी' ऐसा कुछ मालूम नहीं हो रहा।"- अचानक ही उठ आई ऐसी बात का कोई ओर छोर मुझे समझ नहीं आया। मैंने अनुमान लगाया कि पंचानन ने आकाश की ओर जब निहारा होगा, तब अपने मन में ऐसा उसने अनुमान कर लिया होगा।

"नियति, पत्नी, मंजू और भी जाने किस-किसकी चर्चा तुमने कर डाली; फिलहाल मैं तो सब भूल ही गया।"- कहते हुए उसने मेरी ओर देखा। मैंने तब सड़क की ओर मुँह किया हुआ था और राष्ट्रीय-उद्यान के बाहर-बाहर से जो दस पहियों वाला भारी-भरकम ट्रक गुजर रहा था। उसे ही देख रहा था। बोल पड़ा- "उन्हीं कुछ नामों का ही उल्लेख करने मात्र की बात नहीं है। उस प्रकार के अनेकानेक चरित्रों के बारे में तुमसे पूछा जा सकता है। बाबुल, कौशिक और..."- मुझे लगा कि वह मुझसे जिस प्रकार का उत्तर पाने की आशा किए हुए था, उस तरह का उत्तर मैंने नहीं दिया है। क्योंकि कदम बढ़ाते-बढ़ाते ही उसने मेरे बाएँ कंधे पर अपना हाथ रखा था और कहने लगा था- "क्या कुछ जानना चाहते हो? साफ-साफ पूछो ना पहले जिन बातों को तुम सबसे नहीं कहा करते थे, जिन सब कहानियों के अंतिम हिस्सों को तुम सबको परिचित नहीं करवाया करते थे, वे सभी अब चलाई जा सकती हैं। इस समय उन्हीं सभी को लगातार बहती जा रही नदी की धारा की तरह कह सुनाया जा सकता है। जैसे कि उसमें कहीं कोई बाधा-अटकाव नहीं है। कोई बांध-बंधन नहीं है।"

मैंने अनुभव किया कि भारी थकान के बीच वह जरूरत से कुछ ज्यादा जोर से ही हँस रहा है। पास में ही दिखाई पड़ा कि क्रिकेट की गेंद और बल्ला लेकर तीन-चार बच्चे अभी-अभी वहाँ आ इकट्टे हुए हैं।

उनके परिवार के और सब आदमी पास में ही गोलाकार घेरा बनाकर घास पर बैठकर बातचीत की अड्डेबाजी शुरू किए दे रहे हैं।

"पूरा-का-पूरा कह सकते हो अब तुम विशेषत: उन बातों को जिन्हें तुम हम लोगों के सामने बस आधा-अधूरा भर-कहने की सोचे हुए थे। वैसे मैं साफ बता दूँ कि अब उन्हें सुनने की मुझे कोई विशेष उत्सुकता नहीं है। हाँ उस समय जरूर आग्रह हुआ था जब हमें लगा था कि संसार की सभी मनोभावन (इंटरेस्टिंग) घटनाएँ बस केवल तुम्हारे लिए ही जन्म लेती हैं। जैसे कि तब जब पति द्वारा खाई हुई आधी आइसक्रीम का आधा बचा हिस्सा तुम्हारे मुँह की ओर बढ़ आया था। महाविद्यालय में जो नाटक-प्रतियोगिता होने वाली थी, उसके लिए जो पूर्वाभ्यास हो रहा था, उसके अंत में नियति ने जो तुमसे कहा था"

मेरी लंबी बातचीत पूरी होने के पहले ही एक नवयुवक वाकमेन नामक खेल का विशेष उपकरण लिए हुए मेरी बगल से सटकर गुजर गया उसे देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि वह एक कुशल खिलाड़ी प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाला है। उसने जो गंजी पहन रखी थी, उसकी पीठ पर किसी खेल-प्रतियोगिता का प्रतीक चिह्न छुपा हुआ है।

"नियति ने मुझसे क्या कुछ कहा था अथवा मैंने स्वयं तुम सब को क्या कुछ यह कहकर बतलाया था कि नियति ने खुद मुझ से वैसी बातें कही थी?"

पंचानन की आँखों में और उसके पूरे मुख-मंडल पर एक प्रश्न-सूचक चिह्न चमक उठा। हवा के झोंको ने पहले पीपल वृक्ष के जिन सूखे पत्तों को सड़क पर पसार दिया था, चलते समय उन पर जो पैर पड़े, तो खड़र की आवाज़ उठने लगी।

भाषा ISSN 0523-1418

"इस समय तो कुछ भी याद नहीं है।"- मैंने कहा और उसे साफ-साफ बतला दिया कि बहुत सारी बातें अपने आप ही मन के स्मृति-भंडार से विलुप्त हो गई हैं, ठीक वैसे ही जैसे रंगीन सूती कपड़ो को धूप में सूखने के लिए डालने पर हमें कोई अता-पता न चलने पर भी उनके रंग अपने आप ही धूमिल हो जाते या मिट जाते हैं।"

"उन्हीं सबको लो- जिनके बारे में तुमने सबसे कहा था- इस रूप में कि उन्हें नियति, पत्नी अथवा नर्मदा ने मुझसे कहा था, सच्चाई यह है कि वे सारी बातें सरासर झूठी थीं। वस्तुतः सजा-धजाकर कही गई मन- गढ़ंत बातें थीं। संभवतः उस बेला में मेरे मन में ऐसी परिकल्पना आई कि इस तरह की परिकल्पित बातें कह-कह कर मैं अपने आप को एक नायक के रूप में प्रतिष्ठापित कर सकूँगा। कुल मिलाकर सार-संक्षेप में वास्तविक बात बतलाऊँ तो तुम सबसे कही गई अथवा न बतलाऊँ का नाटक की गई बहुत सारी घटनाएँ या बातें वस्तुतः झूठी ही थीं। कहानी, कहानी वाले या सम्मोहक परिकथाएँ कहने वाले एक चतुर व्यक्ति की तरह मैंने यहाँ-वहाँ से नाना प्रकार का मिर्च-मसाला जुगाड़ कर लिया था, जैसे कि 'कहीं का ईंट कही का रोड़ा भानुमति ने कुनवा जोड़ा।' उन्हीं को और सजा-धजाकर तुम सबके समक्ष प्रस्तुत करता रहा था। असलियत में उनमें कोई सच्चाई नहीं थी। मनगढ़ंत आधारहीन परिकल्पना, आश्चर्यचकित कर देने वाली उद्‌भट सोच, उकसाने वाली वाक-वितंडा, बस यही सब था उसमें। अपने बचपन के दिनों से ही मन चाहता था कि रंग-बिरंगी तितली के रूप में मैं समाज रूपी आकाश में उड़ता फिरूँगा, उसके बाद मन में एक यह विचार भी आया कि ट्रक का ड्राइवर बनूँ रात-दिन दौड़ता रहूँ, फिर रेलवे के इंजन चलाने का मन हुआ, फिर सोचा कि हवाईजहाज का पाइलट बनूँ, तो कैसा रहे? अथवा फिट सिनेमा की तरह की अतिसुंदर कुछ हीरोइनों को अपनी बाहों के घेरे में लेकर लीलाविलास करते हीरो बन जाने की आतुर-अभिलाषा की। सारांशतः भाव यह है कि ऐसी एक उद्‌भट कल्पना करता रहा।"

जो ऊपर की ओर छिटकती पानी की बौछारें फौवारे से उठकर हवा की तरंगों के सहारे इतनी जोर की फैली कि उसने उद्‌यान की छोटी पगडंडी को पूरी तरह भिगो दिया। हमारे ऊपर भी पानी की बूँदे यहाँ-वहाँ आ पड़ी। एक भीगा-भीगा सा भाव-

"जिन सब घटनाओं की चर्चा मैंने तुम सबके सामने रस ले-लेकर की थी, कैंटीन के चारों कोनों की मेजों पर, यहाँ-वहाँ बैठे तुम लोगों ने उन्हें एक-एक शब्द को कान पार कर सुनते हुए- समझने का प्रयास करते हुए मद-मस्त हो रहे थे, वह सभी महागंदी किस्म की झूठी बातें ही थी। सच्चाई यह है कि पत्नी मेरे साथ कभी-भी सिनेमाहॉल में नहीं गई। नाटक के रिहर्सल में नियति के साथ उपस्थित होने का कोई संयोग ही मेरे लिए नहीं था, मैंने कोशिश भी की थी मगर विकास ने रिहर्सल के घर के दरवाजें से ही मुझे भगा दिया था।"

तभी दो नौजवान लड़के पंचानन की देह पर धक्का मारते हुए हरहराते हुए निकल गए।

"हाँ, इनमें एक बात जरूर सच थी सो यह कि मैं उन सभी के बीच एक सुनने वाली, मशीन सा था। मतलब यह कि अपने-अपने कष्टों, ऐसे असहनीय और वेदनादायक प्रसंग जिन्हें किसी के सामने व्यक्त न किया जा सके उन्हें भी वे सभी बिना किसी संकोच के मेरे सामने कह सुनाते थे साथ वे इस बात के लिए भी आश्वस्त थे कि मैं उन्हें ध्यान लगाकर सुनूँ तथा अपने मन की गहराई में उन्हें संभालकर रख लूँ। इस विश्वास के साथ कि फिर कभी-भी वे मेरे अलावा और किसी के पास न जाएँ। जिस तरह बिना किसी बाधा के पानी की धारा अन्यत्र बढ़ती चली जाती है वैसी दशा उनकी कभी न हो, मेरी सुनी बातें मेरे मन में ही बसी रहें।"- ऐसा लगा कि पंचानन ने हताशा भरी एक लंबी साँस जैसी आवाज़ छोड़ी तब मैंने उनकी ओर ध्यान से देखा। महसूस किया कि पसीने ने उसकी आँखों और पूरे मुख-मंडल को धो डाला है यह भी अनुमान हुआ कि हम दोनों के ही चलने की गति में शिथिलता आ गई है। जबकि लग ऐसा रहा है कि पहले की अपेक्षा अधिक जोर-जोर से कदम बढ़ा रहे हैं। संभवतः अब दौड़ लगाने की हमारी ताकत हम सब में खत्म हो गई है।

उसने फिर कहना शुरू किया- "उन सभी में से किसी एक ने भी कभी मेरी निजी बातें 'सुनने का मन नहीं बनाया। पत्नी का विचार तो ऐसा था कि मेरे जीवन में कोई आशा-अभिलाषा हो ही नहीं सकती। नीलोत्पल

और विनीता वग़ैरह भी मेरी बातें सुनने के पक्ष में नहीं थे। इसके अलावा बहुत संभव है कि सचमुच ही मेरी दशा ऐसी थी कि मैं क्या कुछ कहना चाह रहा हूँ, यह मेरे अपने सामने ही स्पष्ट नहीं था। जैसा कि नियति प्रायः ही कहा करती थी कि मेरे लिए कुछ भी कहने के पहले अपने उस उद्देश्य को स्पष्ट निर्धारित कर लेना उचित होगा कि दरअसल मैं कहना क्या चाहता हूँ। मेरे कहने का मूल अभिप्राय, किस विशेष लक्ष्य को लेकर मैं बातें करना चाहता हूँ क्यों कहना चाहता हूँ, यह सब सुनिश्चित कर लेने के बाद ही-"

उसके मुँह पर ऊब जाने, कुछ कहने की इच्छा से रहित, थकान-झुँझलाहट का भाव छा गया। पढ़ने-लिखने की उस बेला में जब मैं ऐसी तमाम परेशानियों से घिर गया था इनसे छुटकारा पाने के लिए एक दिन अचानक ही मैं लापता हो गया। पढ़ाई की अंतिम परीक्षा दिए बिना ही मैं कहीं चला गया? "इस बारे में तुम लोग कुछ समझ ही नहीं पाए।" पंचानन के सामने कागज की बुनी एक गेंद आ पड़ी थी जिसे उसने एक छड़ी से ढकेल कर दूर फेंक दिया।

"समाचार-पत्र पढ़ना एवं रेडियों प्रसारण से जब एक नौकरी की खाली जगह का पता चला तो कोशिश कर के उसमें भर्ती हो मैं विदेश चला गया। अपने निजी गृह-युद्ध से छिन्न-भिन्न हो उजाड़ से एक देश में, जहाँ दुनियाँ के अनेक देशों से राष्ट्र-संघ को व्यवस्था के अनुरूप शांति-रक्षा स्थापना के लिए सेनाएँ आई थीं। उन्हीं में मैं भी जा मिला।"

आश्चर्यचकित हो मैंने उसकी ओर निहारा, दाहिनी ओर मुड़ने पर दिखाई पड़ा कि और भी-अधिक संख्या में आए नए लोगों ने प्रातः कालीन दौड़ में हिस्सा लेकर दौड़ना शुरू कर दिया है।

वहीं मेरी भेंट गार्शिया से हुई। शांति-स्थापना में योग देने के लिए वह भी एक देश से आई हुई थी। इसी प्रकार की प्रातः कालीन टहलने की आदत के अनुरूप वह भी एक उद्यान में आई हुई थी। टहलते-टहलते अचानक रुक कर उसने कहा- "तुमने पत्नी, नियति इत्यादि अपने पुराने संगी साथियों से जो बातें कहनी चाही थी, किंतु कह नहीं पाए थे, उन सारी बातों को आज मुझे कह सुनाओ"

मुझे ध्यान आया कि इस दौरान हम लोगों ने उद्यान के पाँच चक्कर लगा लिए है। शरीर और मन पर थकान की मात्रा काफी बढ़ गई है। अतः मैंने सुझाव दिया- "यहाँ पर बैठकर विश्राम कर लेना ठीक रहेगा। भोरहरी में टहलने का मेरा कोटा इस बीच पूरा हो चुका है"- फिर तो हम दोनों फौवारे के पास बनी एक बेंच पर बैठ गए।

पंचानन बोल पड़ा- गार्शिया को सचेत करते हुए मैंने कहा कि "इस तरह की शांति-रक्षक सेनाओं के सहारे हम अशांत-युद्ध-जर्जर- देश में शांति व्यवस्था स्थापित कर लेंगे" इस तरह की भावना पर मुझे विश्वास नहीं है। उसने और भी कहा कि आजकल शांति नामक चीज एक व्यावसायिक-प्रतीक सी हो गई है जैसे कि संसार में सार्वजनिक-ख्याति पाने का एक होलोग्राम-प्रचार का मानव-प्रतीक चिह्न मैंने आगे और कहा- "यही देखो न, कि यह जो जलवायु के बिगड़ जाने की स्थिति है, अचानक ही सारा विश्व भयानक रूप से गर्म हो उठा है। गर्मी ऐसी जैसे आग सी लगी है, भूमंडलीय तापमान का बढ़ जाना इन सब विषयों पर गवेषण (रिसर्च) न करने पर संभव है कि सारा संसार ही-" कहे जा रहे विषय को पूरा करने के बजाय मैं और-और विषयों की चर्चा छेड़ता रहा और बोल पड़ा- "यही विशेष विषय लो न, कि मनुष्यों की जीने की अवधि-यानी उनकी आयु की सीमा को बढ़ाने के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने बहुत अधिक सफलता प्राप्त कर ली है। मैडिटेशनर ध्यान-योग-के द्वारा मानव-मस्तिष्क के अनेकानेक कोषों में आवश्यकता के अनुरूप विभिन्न प्रकार के परिवर्तन ला सकते हैं। बस केवल मनुष्य-समुदाय ही नहीं, बल्कि बहुत सारे दूसरे प्राणी भी अपने अनागत भविष्य की यथावश्यक कार्य योजना बना सकतें हैं। हम सबके मस्तिष्क-" मेरी बात पूरी होने न देकर वह बीच में ही बोल उठीः- "कोई दूसरी बात करो न विशेष बातें जो तुम पत्नी या नियति को कह सुनाना-"

एक सूखा पत्ता उड़ता-उड़ता आया और फौवारे के इर्द-गिर्द जो पानी का हौज बना था, उसी में गिर पड़ा।

पंचानन ने कहा- "गार्शिया की आँखों की ओर मैंने ध्यान से देखा- विदेश की उस भूमि पर मेंपल जो

वृक्ष पास में था, उसके पत्तों की फाँक से विदेश के प्रातः कालीन सूरज की ललाई भरी किरणों का प्रकाश उसके गालों को चमका रहा है।"

मुझे महसूस हुआ कि राष्ट्रीय उद्यान में इस दौरान खेल-कूद, भाग-दौड़, हुल्लड़-गुल्लड़ की मात्रा काफी बढ़ गई है। सो बीच में ही कह उठा- "आज रविवार है। छुट्टी का दिन होने के कारण खेल-तमाशा यहाँ पूरे के पूरे दिन चलेगा।" हालाँकि ऐसी बात कह उठने की कोई उचित परिस्थिति थी। या तार्किक अधिकार नहीं था। उसकी जगह मुझे उससे पूछना चाहिए था, इस रूप में कि- "इस विशेष स्थिति को, जिसमें कि तुमने अपने उस जीवन में पहली-पहली बात दिल खोलकर अपने मन की बातों को किसी के सामने कह देने का अधिकार और अवसर पाया, कोई एक विशिष्ट श्रोता तुम्हारे जीवन की बातें सुनने के लिए उत्कंठा लिए तुम्हारी ओर टकटकी लगाए हुए है, तब ऐसी सुघड़ी में तुमने निश्चय ही अपने हृदय को खोलकर रख दिया-" किंतु नहीं, उस तरह की कोई भी बात मेरे मुँह से नहीं निकली। बस ऐसा भर महसूस हुआ। जैसे पसीने से तर-बतर हुए कपड़े ने शरीर-मन-मस्तिष्क को काफी हद तक शीतलता प्रदान कर दी है।

"उसके बाद तो फिर और कोई बात कही ही नहीं गई।"

पंचानन ने जो नितांत अकल्पनीय और विपरीत किस्म की अंतिम परिणति की बात कही उसे सुनने के बाद मैं कह सका होता- "अरे वाह-रे-वाह तू भी इतना बड़ा मूर्ख है।" मगर मैं चुप ही रहा कि तभी वह बोल पड़ा- सामने की किसी एक बहुत ऊँची इमारत के भीतर से बड़ी तेज़ रफ्तार से आई हुई राइफल की गोली गार्शिया की देह को ऐसा बेध गई कि वह वहीं धड़ाम से गिर पड़ी। अपनी अंतिम साँसों को खीचते-खीचते हुए, जैसे-तैसे उसने मुझसे बस इतना भर कहा- "कह सुनाने वालो अपनी बातों को अभी भी कह डालो- जबकि तब मैं उससे कहना चाह रखा था कि-"

पंचानन ने मेरी ओर मुड़कर देखा। मगर मैंने अपना मुँह दूसरी ओर घुमाकर पास के फौवारे के बीचो-बीच जो विशाल मूर्ति खड़ी की हुई थी, उसकी ओर देखने लगा। देखा कि तरह-तरह की ढेर सारी चिड़िया चुरंग वगैरह उसके चारों और चक्कर लगाते हुए चहचहा रहे हैं। फौवारे के हौज के पानी में जल क्रीड़ा करते-करते ही बीच-बीच में वे उस विशाल प्रतिमा को अगणित किस्म की बातें और कहानियाँ सुनाते जा रहे हैं।

मैं पंचानन से उन बातों को पूछना चाहता हूँ; जिन्हें वह गार्शिया से कहना चाहता था। किंतु मेरे मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली।

"गार्शिया की एक ऐसी ही विशाल मूर्ति विदेश के उस पार्क में जहाँ भोरहरी में लोग टहलतें थे,- कुछ ही समय बाद सम्मान पूर्वक स्थापित की गई। वस्तुतः शांति स्थापित करने वाली हमारी सैन्य वाहिनी की वह एक उच्च अधिकारी थी। उसकी याद में स्थापित की गई उस विशाल प्रतिमा के सामने मैं अपनी भोरहरी की टहलने की अपनी आदत के मुताबिक जब-जब उसके सामने से गुज़रता तब कुछ देर उसके सामने ठहरकर अपनी बातें सुनाता, जिन्हें किसी से कह नहीं पाया था"

उसकी आँखों में उमड़ आई आँसुओं की कुछ बूँदों को उमड़तें हुए मैंने देखा।

पंचानन फिर कुछ देर तक बिना एक शब्द बोले ही-शब्द हीन- मौन खड़ा रहा। परंतु मैंने अनुभव किया कि वह मुझसे पूछना चाह रहा है कि- "हमारे सामने यह जो विशाल मूर्ति खड़ी है, उसके मुख से उसकी जो बातें निकल नहीं पाईं, उन-अनकही बातों को क्या ये तमाम सारे चिड़िया चुरंग जो उसे घेरे हुए हैं, कभी सुनते हैं?"

- 02, दयाबाग कॉलोनी, जगनपुर बेला, नसेरा मोड़, खेल गाँव मार्ग, दयालबाग आगरा, उत्तर प्रदेश-282005

❑❑❑

बुधिया

अनुवाद : भूपेंद्र राय चौधरी

पाँच नंबर फ्लैट का टिंकु सजधज कर नीचे प्रतीक्षा कर रहा था। बुधिया को देखकर भागता हुआ वह जाकर बुधिया से लिपट गया। स्कूल बस पर बुधिया उसे चढ़ा देती है। स्कूल-बस कई-बच्चों को लेकर सुबह सात चालीस पर चौराहे पर पहुँचती है। वहाँ आस-पास के कई बच्चे इकट्ठे बस पर चढ़ते हैं। फिर दोपहर डेढ़ बजे जाकर उन्हें लाना पड़ता है।

पाँच नंबर की मालकिन बैंक में नौकरी करती है। सुबह भाग-दौड़ रहती है। रसोई का काम निबटाना पड़ता है। बेटे को तैयार कराके टिफिन थमाना पड़ता है। पति देर तक सोता है। उन्हें रात को अच्छी-नींद नहीं आती है। इसलिए रात एक-डेढ़ बजे तक टी.वी. देखता है। और भोर में नींद आने पर जल्दी उठे कैसे? इसे लेकर पति-पत्नी के बीच तू-तू-मैं-मैं चलती रहती है। मालकिन को पदोन्नति मिलने पर सुबह साढ़े आठ बजे ही निकलना पडता है।

'टिंकु को बस पर चढ़ा दिया है न।' आते ही पाँच नंबर की मालकिन ने बुधिया से पूछा।

'दीदी, उसे बस पर चढ़ाकर अभी आई हूँ।'

'तेरे लिए चाय रखी हुई है, पीकर बर्तन जल्दी साफ कर दे। उसके बाद बुहारने का काम करना। धोने वाले कपड़े बाथरूम में रखे हुए हैं।'

बुधिया को अधिक कहने की जरूरत नहीं पड़ती। वह जल्दी ही काम निबटाती है।

'आज इतनी देर क्यों की बुधिया?'

'पाँच नंबर की मालकिन का बैंक में प्रमोशन हुआ है। अब पहले वाली जगह में नहीं है, बैंक काफी दूर होने पर अब सुबह साढ़े आठ बजे ही निकलना पड़ता है। इसलिए वहाँ काम निबटाकर आ रही हूँ।'

बुधिया ने बर्तन धोते समय ही नौ नंबर की मालकिन को जवाब दिया। सुबह का समय उसके लिए कीमती है। वह पाँच घरों में काम करती है। सभी उसे पहले ही आने को कहते हैं।

'तेरे को सभी के प्रति दर्द है। मेरे लिए कोई परवाह नहीं। घर में झाड़ू-पोंछा लगाकर फूलों के टाबों में पानी डालना।'

बुधिया कुछ बोली नहीं। टाबों में पानी डालने पर तेईस नंबर जाने में देर हो जाएगी।

'ठीक है दीदी। दूसरी बार आने पर मैं पानी डाल दूँगी।'

'मुई- अब आने का समय मिला?' तेईस नंबर की मालकिन ने बुधिया को देखते ही प्रतिक्रिया व्यक्त की।

बिना बोले बुधिया बर्तन साफ करने लगी। झाड़ू लेकर वह कमरों को बुहारने लगी। पोंछने का काम वह दूसरी बार आते समय करती है। सुबह ही सामने वाले और पिछवाड़े के बरामदे में पानी डालकर साफ करती है।

'सुन बुधिया, आज तू ड्राइंग रूम का कालीन-साफ कर देना। मकड़ी-जाला हटाना। सोफा भी झाड़ देना। आज अतिथि आने वाले हैं'।

दूसरी बार आते समय करने का वादा करके वह भागती हुई चौदह नंबर तक गई। तब दस का समय हो रहा था। बुधिया को देखते ही मालकिन ने दीवार-घड़ी

भाषा ISSN 0523-1418

की तरफ आँख दौड़ायी। खफा होने पर भी बुधिया से कुछ नहीं कहा। आज वह भी देर से सोकर उठी थी। बेटे के लाए एक बीसीडी की फिल्म देखकर करीब तीन बजे रात को सोई थी।

दौड़ भागकर बुधिया ने चौदह नंबर का काम निबटाया। उसे फिर अड़तालीस नंबर में जाना शेष है।

अड़तालीस नंबर की मालकिन समाज-सेविका है। उनके घरेलू कामों के अतिरिक्त बुधिया को कुछ वैयक्तिक काम भी करने पड़ते है। डाकघर में चिट्ठी डालना, प्रेस से पैंफलेट ला कर, दूध लाना, जरूरत पड़ने पर दुकान से सामान लाना आदि काम भी वह बखूबी निभाती है।

अड़तालीस नंबर पहुँचने पर ग्यारह का समय हो रहा था। बुधिया को देखते ही मालकिन ने डाँटा- 'तू रोज चार घरों का काम निबटाकर ही मेरे घर आती है। इतनी देर तक बर्तन धोने, बुहारने-पौधे लगाने का काम क्या कोई छोड़े रखता है?'

बुधिया बिना बोले काम करने लगती है। वह अच्छी तरह जानती है अड़तालीस नंबर की मालकिन ज्यादा देर तक गुस्सा नहीं करती है।

बर्तन धोने, बुहारने-पोछने के बाद वह बाथरूम में कपड़े धोने लगती है। बाथरूम से सटे कमरे में रहने वाली मालकिन ने पूछा, 'तेरे घर पर और कोई काम नहीं करता है क्या?'

'करता है। बाबूजी कंपनी के गुदाम का ठेला चलाता है। तनख्वाह मिलती है। माँ दो घरों में काम करती है।'

'और भाई-बहन कहाँ काम करते हैं?'

'वे स्कूल में पढ़ते हैं।'

'अगर कुछ बड़े हैं तो उन्हें भी काम लगवा दो तो क्या हर्ज है। अधिक आय होने पर परिवार की गाड़ी आसानी से चलेगी।'

'नहीं दीदी, उन्हें पढ़ना चाहिए' मैं सातवीं तक पढ़कर आगे नहीं पढ़ सकी।'

'अरी बुधिया, एक बात सुन। तू दो घरों का काम छोड़ दे। मेरे घर में ज्यादा समय काम कर। तुझे चार सौ रुपए-तनख्वाह दूँगी।'

बुधिया के कुछ न बोलने पर अड़तालीस नंबर वाली मालकिन ने चारा डाला, 'देख, मैं समाजसेवा करती हूँ' हमारा एक एन.जी.ओ. है। हमारे एन.जी.ओ के लिए दुकानों से मुफ्त कपड़े लाती हूँ दरिद्रजनों में बाँटने के लिए। अवश्य हमारे एन.जी.ओ की सदस्याएँ पसंद के अच्छे कपड़े अपनों में बाँट लेती हैं। उनमें से कभी-दो-चार साड़ियाँ तू ले जाना अपनी माँ के लिए।

'दीदी, छोड़ सकूँ तो अच्छा ही था' मुझे कोई-छोड़ना नहीं चाहता। भले, आप एक काम करने वाली लड़की भी रख सकती हैं।'

अड़तालीस नंबर की मालकिन यह अच्छी तरह जानती है कि बुधिया जैसी फुर्तीली और ईमानदार लड़की मिलना मुश्किल है।

कपड़े धोकर बुधिया ने बालकनी के डंडे पर डाल दिए।

'अच्छा निकलती हूँ दीदी। आज नौ नंबर में मेहमान आने वाले हैं। मकड़ी-जाला हटाना, ड्राइंग रूम साफ करना कई काम हैं।'

इतना कहकर वह नौ नंबर की तरफ भागी। दोपहर डेढ़ बजे तक टिंकु की बस पहुँचती है। चौराहे तक जाकर उसे लाना पड़ता है। दोपहर का समय वह टिंकु को देती है। उसे खिला-पिलाकर, नहा-धोकर दोपहर का खाना खाती है। मालकिन बड़ी अच्छी है। फ्रिज में ताला नहीं लगाती है। खाने-पीने में कोई बाधा नहीं देती।

तीन बजे ही उसे दूध लाने के लिए जाना पड़ता है। लौटते समय चौदह नंबर के लिए बताई गई सब्जी लानी पड़ती है।

बाजार से लौटते समय तीस नंबर के ड्राइवर से आमना-सामना हुआ। वह उसे नजरअंदाज करना चाहती है। कमबख्त ड्राइवर की दृष्टि उसकी बीस साल की देह पर लटकी रहती है। उसके मुहँ से शराब की बू भी आती रहती है। वैसी स्थिति में वह बहाना बनाकर गोरखा दरबान के पास जाकर इधर-उधर की दो-चार बातें करती है। तब तिरछी नजर डालकर वह खिसक जाता है।

दूध और सब्जी देकर वह फिर पाँच नंबर में आती है। टिंकु को सोते समय छोड़ जाते वक्त लगाए जाने वाला ताला खोलती है। शाम को छह बजे मालकिन के आने पर वह घर जाती है। सात नंबर की गाड़ी से

जाने पर वह अपनी बस्ती के पास उतर सकती है। उसे खर्चा भी अधिक हो जाता है।

बुधिया की शादी का समाचार पाकर फ्लैटों की मालकिनों को जितनी खुशी हुई, उससे अधिक उन्हें तनाव होने लगा। बुधिया जैसी इतनी फुर्तीली, हँसमुखी और विश्वासी नौकरानी मिलती नहीं मिलेगी। दो दिन काम करके बत्तीस नंबर की मालकिन के घर से आभूषण चुराकर एक नौकरानी चंपत हो गई थी। दो-चार-पार्ट-टाइमर भी अनियमित हैं। दो दिन आकर चार दिन गायब रहती हैं। सामान्य रुपया बढ़ा देने पर दूसरे घरों में काम करती हैं। परंतु इस मामले में बुधिया बेजोड़ है। उसकी माँग है, पर लोभ नहीं। उसके काम करने वाले घरों में कोई सामान इधर-उधर नहीं हुआ है।

तीन दिन तक बुधिया नहीं आई। उसके काम करने वाले फ्लैटों की मालकिनों की समय-सारिणी में गड़बड़ होने लगी। पाँच नंबर के टिंकु को बस पर चढ़ाने के लिए न चाहने पर भी उसके पिता को सुबह जगना पड़ता था। घर का सारा काम निबटाकर मालकिन को तैयार होकर निकलने में देर होने लगी। चौदह नंबर की मालकिन को दूध-सब्जी लाने के लिए खुद बाजार जाना पड़ा। नौ नंबर, तेईस नंबर और अड़तालीस नंबर की मालकिनों को विरक्त होकर अनभ्यास कामों को लाचारी से करना पड़ा। दो-एक ने काम करने वाली बाई की तलाश तो की पर बुधिया जैसी नौकरानी इतनी-जल्दी पाना संभव नहीं था।

चौथे दिन जब पाँच नंबर घर में बुधिया पहुँची तब बैंक में काम करने वाली मालकिन घर में ताला लगा रही थी। आँखों के सामने बुधिया को देखकर विश्वास ही न कर पाई।

'शादी का क्या हुआ बुधिया।'

'टूट गई दीदी।'

'अब तो बात करने का समय नहीं है। शाम को सुनेंगे। तू टिंकु को लाकर खाना-पीना करना। इन दिनों गोरखा उसे लाकर बारह नंबर में रखता था। मेरे न लौटने तक वह वहीं रहता है'

पाँच नंबर की मालकिन ताले की चाबी उसे थमाकर चली गई।

नौ नंबर की मालकिन ने पूछा, 'तेरी शादी का क्या हुआ?'

'टूट गई।'

'बड़ा अच्छा ही हुआ' तेरे न रहने पर एक हाथ टूटा जैसा लगा।'

अड़तालीस नंबर की मालकिन ने साफ कह दिया, 'तेरे नागा दिनों के पैसे नहीं मिलेंगे।'

बुधिया उसकी सहज हँसी के साथ काम में जुट गई।

बुधिया ने सोचा था कि इन मालकिनों की तरह उसका भी अपना एक संसार होगा। धीरे-धीरे वह अपने घर को सजाती। कभी-पति के साथ सिनेमा देखने जाएगी। पैसे जोड़ कर एक टी.वी. लेगी। देश-दुनिया के बारे में जान सकेगी। एक मायामय संसार में वह खो जाएगी, 'भरापूरा अपना परिवार होगा। वह व्यस्त हो जाएगी। फिर भी वह अपना संसार होगा'

तेईस नंबर की मालकिन की आवाज से वह चौंक उठी। एक कप हाथ से गिरकर टूटने की तरह उसका सपना टूट गया।

तेईस नंबर की मालकिन के सिर पर हेना लगाती हुई वह कहती गई, 'लड़के को पिता जी ने ही पसंद किया था। कपड़ा मिल में काम करता है।'

'तब तो खराब नहीं था। क्या तुझे देखा था?'

'माता-पिता के साथ देखने आया था।'

'उसके बाद क्या हुआ?'

'उनको एतराज था, दूसरों के घर काम करना बंद करना चाहिए। इसमें मान-सम्मान नहीं रहता है।'

'शादी होने पर तो तेरा अपना एक संसार होगा। लोगों के घर में काम कैसे करेगी?'

'परंतु पिता जी इस पर राजी नहीं थे। माँ बीमार है। किसी प्रकार दो घरों में काम करती है। ठेला चलाकर पिता जी घर का खर्चा ही देंगे या भाई-बहन को पढ़ाएँगे? उन लोगों ने कहीं और लड़की तय कर ली है।'

'बुधिया, तुझे अफसोस करने की जरूरत नहीं है। तेरी तरह लड़की पाना भी भाग की बात है, समझी।'

बुधिया खिलखिलाकर हँस पड़ी। एकाएक उसकी दृष्टि घड़ी पर पड़ी। डेढ़ बजने के लिए दस मिनट बचे है। टिंकु को लाने के लिए जाना पड़ेगा।

वह दौड़-भाग कर चौराहा पहुँची। थोड़ी देर में बस आई। टिंकु उसे देखकर हड़बड़ी में भागता हुआ

भाषा ISSN 0523-1418

उससे लिपटते हुए कहा, 'बुधिया दीदी; तुम कहीं और चली न जाना।'

'न जाऊँगी टिंकु। तुम्हें इसी तरह लाती-पहुँचाती रहूँगी, तुम पढ़-लिखकर बड़े आदमी बनोगे। नौकरी करोगे। गाड़ी खरीदोगे' तुम्हारी गाड़ी पर चढ़ने से कितना मजा आएगा।'

बारह नंबर में जाकर बुधिया ने उसके आने की सूचना दी। टिंकु ने भी जोश से कहा, 'आंटी, बुधिया दीदी आ गई।'

दो महीने ठीकठाक गुजरे। बुधिया पूर्व जैसे पाँच घरों में काम करती है। सुबह आती है और शाम को लौट जाती है एक दिन बुधिया को घर पहुँचने पर पता चला कि दोपहर ठेला चलाते समय उसके पिता को पीछे से गाड़ी ने कुचल दिया। कंपनी के लोगों ने उन्हें अस्पताल में दाखिल कराया। तीन दिनों तक अचेत रहे। सिर पर चोट लगी है। पैर और दाएँ हाथ की हड्डियाँ टूटी हैं।

पूरे परिवार पर बज्राघात हुआ।

गुदाम के ठेकेदार ने अस्पताल में दाखिल करवाकर ही छुट्टी पा ली। तीन दिनों तक परिवार के लोगों को तनाव रहा कि बचेंगे या नहीं। बुधिया की माँ को पाँच सौ रुपये थमाकर ठेकेदार चला गया। अस्पताल में पूछने भी नहीं आया।

पति के पास रहने के कारण माता ने काम छोड़ दिया था। भाई-बहन के साथ जाकर बुधिया ने मंदिर में पूजा-अर्चना की थी। अंततः उसके पिता को होश आया। ईलाज कराने के लिए अधिक पैसों की जरूरत थी।

बुधिया ने आकर उसके काम करने वाले घरों से कुछ अग्रिम पैसों की मांग की थी। अड़तालीस नंबर की मालकिन ने दो टूक जवाब दिया, 'तेरे जात का क्या भरोसा है? सच कहा है या झूठ हमें कैसे पता चलेगा? मेरी साफ बात है कि काम करने से ही पैसा मिलेगा। फिजूल एक रुपया भी नहीं दे सकती।'

तेईस नंबर की मालकिन ने कहा, 'बाजार में तो आग लगी हुई है, हम मुश्किल से गुजारा कर रहे हैं। तुझे कहाँ से रुपए दूँगी? किसी भी हालत में अग्रिम नहीं दे सकती।'

नौ नंबर की मालकिन ने तनख्वाह से पाने वाले सौ रुपए के अतिरिक्त एक रुपया भी नहीं दिया।

पाँच नंबर और चौहद नंबर की मालकिनों ने कुछ पैसा दिया। टिंकु ने अपने डिब्बे से बचाए रखने वाले मुट्ठीभर पैसे निकालकर देते हुए कहा, 'दीदी, इन पैसों से तुम अपने पिता को सेब खिलाना।'

बुधिया ने टिंकु के पैसों को पुनः डिब्बे में रख दिया। उसे गले लगाकर प्यार किया। टिंकु की माँ ने उसे एक हजार रुपया दिया। अग्रिम नहीं। रोगी को दवा-पथ्य खिलाने के लिए।

बुधिया सुबह ही काम पर आती है। उसकी माँ अस्पताल जाती है। घर की रसोई का काम बहन करती है।

दवा और खिलाने-पिलाने के लिए आवश्यक खर्चा जुटाने का काम उसे ही करना पड़ता है। बुधिया और दो घंटे अधिक काम करने लगी।

पहले का हँसमुख चेहरा अब बुझा हुआ लगता है। बाप स्वथ्य हो भी जाए पर काम कर नहीं सकेगा। माता की श्वास की बीमारी बढ़ रही है। बुधिया की गति धीमी पड़ जाती है। तीस नंबर के ड्राइवर से आमना-सामना होने पर भी अब वह कोई उत्तेजना का अनुभव नहीं करती है। हठात् उसके शरीर को शीत-प्रवाह जकड़ लेता है। उसे लगता है कि उसके मन के सारे हरे पत्ते पीले हो गए हैं। एक दिन गिर भी पड़ेंगे।

बुधिया अब और अधिक फुर्ती से काम करती है। सात घरों को संभालना पड़ता है। घर-बाहर अब उसके सामने काम ही काम है। कई चेहरे उसके सामने तैर जाते हैं। रोगी पिता, श्वास बीमारी से परेशान उसकी माता, पढ़ रहे भाई-बहन सब उसकी ओर आशा लगा कर बैठे रहते हैं। दायित्व का बोझ बढ़ने के साथ-साथ उसकी हँसी हवा के झोंके से उड़ने वाले मेघ की तरह गायब हो गई है।

नौ नंबर घर में मेहमान आएँगे। खाने-पीने की तैयारी चल रही है। मालकिन ने कहा, 'बुधिया, जरा मसाला पीस दे। तेरे हाथ का मसाला बड़ा महीन होता है। डाइनिंग सैट निकालकर धोना और धूप में डाल देना।'

चौदह नंबर की मालकिन सो रही है। सिर दर्द, उसने कहा, 'बुधिया, जरा सर पर मालिश कर देना, सर फटा जा रहा है। तेरा हाथ लगने पर दर्द कम हो।'

नित्य कामों के अतिरिक्त अन्य काम करने पर बुधिया को समय निकालना कष्टप्रद होता है। फिर भी वह अपने शरीर के प्रति ध्यान दिए बिना सभी को संतुष्ट करना चाहती है।

अड़तालीस नंबर के दरवाजे पर कालिंग बेल बजाने पर मालकिन ने अधखुले दरवाजे को पकड़कर डाँटती हुई कहा, 'बुधिया, अब क्या समय हुआ? क्या यह आने का समय है? पैसा लेते समय तो कोई कोताही नहीं, परंतु ठीक समय पर काम करने नहीं आ सकती।'

'दीदी, तेईस नंबर की मालकिन पाँच मिनट के लिए कहकर किसी सहेली से मिलने गई, परंतु लौटी घंटाभर बाद।'

'तब जा, वहीं बैठी रह। मेरे यहाँ काम करने की कोई जरूरत नहीं है।' मालकिन ने उसके सामने ही खटाक् से दरवाजा बंद कर दिया।

समाज-सेविका दीदी का ऐसा रूप देखकर बुधिया कुछ देर तक मौन खड़ी रही। उसके बाद वह दूसरे घर के लिए आगे बढ़ गई।

16, सतीर्थ पथ, मथुरा नगर, डाक: असम सचिवालय, गुवाहाटी, असम - 781006

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

तेलुगु कहानी

पिता के लिए एक भेंट

कोतापल्लि उदय बाबु

अनुवाद : श्रीपेरंबुदुरू नारायण राव 'श्री नारा'

अटेंडेंट के आकर बताने से कि उनसे मिलने कोई आए हैं तो हाथ के काम को बीच में ही रोक कर विज़िटर्स रूम में आ गया श्रीवास्तव।

उसे देखते ही उठ खड़ी हुई वह महिला। नीचे से ऊपर तक, मस्तक से एड़ी तक कभी किसी खोए हुए अमूल्य वस्तु को देखने की खुशी से उसे बारीकी से परिशीलन करने लगी।

कौन हैं आप? कौन चाहिए आपको? पूछा श्रीवास्तव ने।

'मुझे राजशरज़ जी चाहिए बाबू। उन्हें एक बार देखकर बात करनी है।'

'मुझे जहाँ तक पता है, आपकी आयु के उनके कोई बंधु नहीं है ना'

'वे मुझे मंगलसूत्र से बाँधे मेरे पति हैं।'

'मतलब आप...'

'हाँ बाबू जी। मैं ही..... 'जयंति' हूँ कहा। 'तुम्हारी माँ हूँ....' कहती-कहती रुक गई।

'हूँ। इतने सालों के बाद यह बेटा और मेरे पिता जी याद आए हैं। वे आप से नहीं मिलेंगे। वे समझ रहे हैं कि आप मर गई हैं। आगे, मेरी दृष्टि में ग्लानि पैदा करने वाला शब्द यदि कोई है तो वह है- 'माँ' शब्द। उस नाम को रखकर मेरे सामने खड़ी आप कृपया फिर न आइए। यूँ आप से बात करने का मतलब है कि यह हमारे पिता जी द्वारा सिखाया गया संस्कार। अब आप जा सकती हैं'- कटुता से लाल-पीले हुए मुख से कहा श्रीवास्तव ने।

आँखों में डबडबाते आँसू- वे होनहार बेटे को देखने से आए आनंदाश्रु हैं, या कलेजे को चीरते हुए बतियाए उसकी बातों से घायल करने से स्रवित दुखाश्रु हैं पता नहीं- आँचल से पोंछ लिया उस महिला ने।

'बाबू जी। चलिए पिता जी से बात नहीं करूँगी । एक बार दूर से ही देखकर चली जाऊँगी। इस ज़िंदगी की बची हुई एक ही आखिरी ख्वाहिश है, उनके चरणों को मेरे आँसुओं से धोकर मौन ही प्रणाम कर चली जाऊँगी। इस एक ख्वाहिश को न मत करना' कहा उन्होंने खुशामद करने की तरह।

'हूँ! माँ के रूप में आप से किए गए द्रोह के लिए आपको न दिया जाने वाला मौक़ा भी वही है। आप अवसरवादी हैं। कहीं भी कैसे भी जी सकती हैं। हमें जीवच्छव करने की तरह और किसी को मत कीजिए। 'जाइए' कहकर उस महिला के जवाब तक भी न रूककर वहाँ से चला गया श्रीवास्तव।

उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ।

कलेजा फूलने की तरह सिर पकड़े रोती भी नहीं बैठीं।

नम होती आँखों से आँखों को बार-बार दबाती हुई हाथ में स्थित थैली से कुछ सफ़ेद कागज़ और कलम निकालकर वहीं बैठी लिखने लगीं।

लगभग एक घंटे तक लिखना पूर्ति कर थैली से कवर निकालकर, लिखित काग़जों को उसमें रखकर गम से चिपकाकर ऊपर श्रीवास्तव का नाम व पता लिखकर ऑफिस पोस्ट बॉक्स में डालकर वहाँ से निर्लिप्त निकल गईं।

* * *

श्रीवास्तव अपनी सीट पर आकर बैठ गया। बहुत ही विस्मित-सा है वह 'माँ- है-माँ!' उम्र की ज़रूरत को पूरा करने के लिए शादी और बच्चे। ऐसे लोग 'माँ' शब्द के लायक नहीं होते।

पगले ख्यालों से उसका सिर फटा जा रहा है।

काम पर एकाग्रता भंग होती गई।

'मन ठीक न होने पर किए जा रहे काम को उसी पल रोककर आँखें मूँदे प्रशांतता से अपने इष्ट देव पर मन लग्न कर लो'- पिता जी की बातें याद आई।

प्रशांत मन से आँखें मूँद ली।

माँ के रूप में 'बाबू' कहे जैसा... वही दीन रूप ...

'माँ' कितना कमनीय है उनका रूप। पके हुए पान के पत्ते-सी पार्वती देवी की हू-ब-हू!

लगभग उसने यत्न किया चार-पाँच बार। हर बार वही रूप! आखिरी बार उनका रूप क्रमशः परिवर्तित होकर 'राजराजेश्वरी' के रूप-सा रूपांतरित होने से स्वस्थता प्राप्य मन से पिता को फ़ोन किया।

उधर से 'हलो'-सुनाई देते ही-

'पिता जी! मैं हूँ! वासू हूँ! क्या भोजन किया आपने?'

'हाँ!'

'दवाइयाँ ली हैं?'

'हाँ बेटा।'

'आप को एक बात बताने के लिए फ़ोन किया मैंने'

'बताओ बेटा!'

'डर लग रहा है कि आप कहीं क्रोधित न हो जाए!'

उस छोर से गंभीर हँसी!

'तुम्हें? कुछ नहीं कहूँगा कहो'

'आपकी पत्नी जीवित है। एक पल मौन'

'वासू! क्या बेटे, क्या कह रहे हो तुम। जयंति... जयंति जीवित है? किसने कहा तुम से?'... उनकी बातों में उद्विग्नता ने उसे तड़प दी।

'आप आवेश में न आइए पिता जी। सावधानी से सुनिए। वे अभी-अभी मेरे ऑफिस में आई हैं। आखिरी बार आपको एक बार देखने की मांग कर रही थीं। 'संभव नहीं है'- कहा मैंने। चली गईं।'

'बेटे! वह तेरी माँ है रे!' वेदना भरी आवाज़ से कहा उन्होंने।

'क्या मुझे और आपको बेरहमी से छोड़ दिया उन्होंने? मैं और आप कितना कुपित हुए। उस क्षोभ को प्रकट करने के लिए ही मैंने इतनी रुष्टता से बात की। क्या मैंने ग़लती की?'

पिता जी ने गला सँवारा।

'फाँसी की सज़ा सुनाने के साथ ही कैदी से आखिरी ख्वाहिश पूछते हैं। उसके उस ख्वाहिश के व्यक्त करने पर भी पूरा न करने वाले बेटे हो गए हो तुम! 'माँ के मन' को घायल किया तुमने। उसे भेजने से पहले एक बार मुझे बताते तो? सब मेरी बद-किस्मती है।' उन्होंने फ़ोन रख दिया।

पिता जी हमेशा से ऐसे ही हैं। पिनपाइंटेट बात करते हैं। अनंतभाव को अल्प अक्षरों में व्यक्त करते हैं।

'तो मैंने ग़लती की! एकबार उन्हें पिता जी के दर्शन करने देने चाहिए थे' हाथों से कनपट्टियाँ दबा ली श्रीवास्तव ने।

सायंकाल घर पहुँचने के बाद पिता जी के उस प्रस्ताव को न लाने से राहत का अनुभव प्रतीत होने पर भी गलती कर ने की भावना उसके मन में कराहती ही रही।

* * *

अगले दिन अपनी टेबल पर आए एक लिफ़ाफ़े को फाड़ कर देखा। उसे उन्होंने लिखा जानकर फाड़ देना चाहा श्रीवास्तव ने।

'फाँसी की सज़ा सुनाने के साथ ही कैदी से...' कहे पिता जी की बातें याद आई उसे।

न जाने क्यों किसी भी काम को आवेश के साथ बिना सोचे ही करने को उद्यत होते ही पिता जी तर्जनी से सावधान कर रहे हैं ऐसा लगता है उसे।

बहुत ही सावधानी से एकाग्रता से वह उस पत्र को पढ़ने लगा।

उस में...

'चिरंजीव श्रीवास्तव को,

'माँ' तहेदिल से आशीष देती लिख रही हूँ-

'माँ' नामक शब्द के प्रति, तुम्हारे ग्लानिपूर्वक स्थिर अभिप्राय के बनने में मेरा भी हाथ है बेटे!

मेरा जीवन शासित करने वाले सभी पुरुष ही हैं। उनको मानते हुए जैसे कि मैंने ही कोई ग़लती की, संप्रदाय, रीति-रिवाज के नाम से मुझ जैसी बंदी बनाई सह-स्त्रियाँ उन पुरुषों के हाथों की गुलाम ही देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी आज तक नब्बे प्रतिशत परिवारों में 'स्त्री के लिए स्वेच्छा' की प्राप्ति नहीं हुई बेटे!

तब तुम अच्छे-बुरे की बात न जानने वाले पाँच वर्ष के शिशु थे। तुम्हारे पिता जी के संग जाते-जाते फूट-फूट कर जाते हुए तुम मेरे पास 'माँ' कहते पुकारते आने से, दिलभर कर मेरे बेटे को सीने से भी न लगाने देते कर्कश संप्रदायों के परिवार में एक बंदी हूँ। यदि उन बातों को समझना चाहते हो तुम्हें कुछ प्रमुख बातों का पता चलना चाहिए।

मैंने भी साधारण लड़कियों की तरह डिग्री पूरी कर ली थी। मैं जब इंटर में थी तब रिश्ते के एक जीजा की आर्मी में नौकरी लग गई। तीन साल बाद वह घर वापस आए। आकर उसने मुझे पसंद किया। मेरे निर्णय को बताने के पहले ही 'उसे क्या पता' जैसी व्याख्याओं के साथ मुझे उसकी पत्नी बना डाला। शादी होकर सप्ताह भी नहीं हुआ कि अगले पल ही ड्यूटी में ज्वाइन करने का आदेश मिला उन्हें अपने अधिकारियों से।

उसी दिन हमारी सुहागरात थी। उसके होने से पहले ही उन्हें अपनी नौकरी पर जाना पड़ा।

हमारे घर में बड़ा मर्द जो कहे वही वेद होता है। कि वह जो भी करते हैं वही सही है। उनके घर की सारी स्त्रियाँ जल कर भस्म हो जानी चाहिए मगर उनके सामने कुछ कहने की जुर्रत नहीं कर सकती। उनकी अनुमति के बिना दहलीज पार करने का मौका ही नहीं।

दो वर्ष बीत गए।

पाकिस्तान से हुए युद्ध में उनके मृत्यु का समाचार आया।

उस समाचार के सुनते ही मेरी माँ- 'किसी भी शुभ कार्य के बिना मेरी बेटी का सौ बरस का जीवन सर्वनाश हुआ'- के ग़म से महीने भर में स्वर्ग सिधार गई। पिता जी से यह बर्दाश्त न हुआ तो वे हमारे ससुर से हाथ-पैर पड़कर दंडवत हो प्रणाम करते हैं कि मेरा पुनर्विवाह कर दे'। फूट-फूट कर रोए भी।

गाँव के बड़े आदमी थे मेरे ससुर जी अपना कहा कोई भी मान लेगा के अधिकार से गाँव में अध्यापक का काम करते तुम्हारे पिता जी को बुलवा भेजा। घटित बातें उन्हें खुल्लम-खुल्ला बता दी गई।

विशाल भावयुक्त राजशेखरम जी ने दिल से मुझे स्वीकारा। सादर मुझे अपने साथ ले आए।

शिला सदृश मुझे उन्होंने अपने सांगत्य में अहल्या बना दिया।

तब तक ज़िंदगी में अनुक्षण कई बार निरादर का शिकार बनकर, लगभग एक गुलाम सी, उसमें स्त्री गुलाम-सी यंत्रवत काम करते जाने के सिवाए किसी एक छोटी-सी ख्वाहिश तक प्रकट न कर सकने की मेरी अशक्तता को जानते हुए आदर सम्मान व प्रेम से दुलारा उन्होंने। मैं तो अपने आप को भूल-सी ही गई थी। उनके हाथों बाँसुरी बनकर अपने आप को समर्पित कर दिया।

हमारे अन्योन्य दांपत्य फल से तुमने जन्म लिया।

पाँच साल तुम्हारे लालन-पालन में कितना मातृत्व का अनुभव किया मैंने उतना ही अनुराग पाया उनसे। उस बलबूते ही मैं इतने वर्ष जीवित रही।

उस मद-मस्ती में रहते समय तुम्हें और मुझे लेकर आने के लिए घर पर बुलाया हमारे पूर्व ससुर ने, तुम्हारे पिता जी को ख़बर भेजते हुए। अप्रत्याशित इस आह्वान से बात क्या होगी का अंदाजा लगाते हुए हम वहाँ पहुँचे।

हमारे अंदर क़दम रखते ही दरवाजें बंद कर दिए गए।

ससुरजी के बाजू एक व्यक्ति मलिन दाढ़ी-मूँछ से, एक टाँग पर खड़ा हुआ था। वह मेरे प्रति कितनी भूख और आशा से देख रहा था। मैं उसे पहचान कर डर के मारे दो क़दम पीछे हटकर तुम्हारे पिता जी के पीछे आलंबन के लिए उनकी भुजा कस कर एक हाथ से और तुम्हें दूसरे हाथ से मैंने थामा।

हमारे ससुरजी के इशारे से उनके तैनात मनुष्य ने बलपूर्वक ले जाकर, मुझे हमारी सास के हवाले कर दिया। हमारी ननदोई मुझे जबर्दस्ती घसीटते हुए ले जाकर उस लंगड़े व्यक्ति के सामने गिरा दिया।

वह कोई और न था। मेरा प्रथम पति था।

'यह कै किया हुआ भात मुझे नहीं चाहिए पिता जी! मेरी पत्नी मुझे चाहिए-' कहा अपने पिता से, मेरे पूर्व पति ने।

अपनी प्यारी वस्तु को किसी के उठा ले जाने पर होने वाला क्रोध था उसकी आँखों में, नीचे पड़ी हुई मैं उठकर खड़ी हो गई।

तुम्हारे पिता जी की ओर देखा मैंने। उन्होंने लाचारगी से मेरी ओर देखकर सिर झुका लिया। अणु-अणु बबूल के काँटो के चुभने की बाधा उनके चेहरे पर द्योतिक हुई मुझे।

'तुम्हारे मरने की खबर पाते ही मेरा नाता तुम से टूट गया। मुझे नया जीवन दिया है इन्होंने। इनसे मुझे कोई अलग नहीं कर सकता'- कहा मैंने।

कहकर तेज़ी से दौड़ी, तुम्हारे पिता के आगे आकर खड़ी हो गई मैं।

'तुम्हें जाना ही होगा जयंति' कहा उन्होंने निर्जीव स्वर से।

'क्यों जी?' कहा मैंने फूट पड़ते आँसुओं से।

'अपने विवाह होने के बाद कभी किसी दिन भाग्यवश तुम्हारे पति वापस आएँगे तो तुम्हें उनके हवाले करना होगा के समझोते पर ही तुम्हारा मेरा विवाह हुआ जयंती-' आगे भी कुछ कहना चाहते थे तुम्हारे पिता जी।

मेरे ननद के पति आकर- 'सुन लिया न। अब चलो अंदर'- गरज पड़े मुझ पर।

'तुम कौन होते हो मुझे कहने वाले'- कहा मैंने तीव्रता से।

हमारे पूर्व ससुर खड़े हो गए मेरे सामने एक राक्षस बनकर।

'मैं कह रहा हूँ। चलो अंदर'-कहा उन्होंने।

'मेरे पति और बेटे को छोड़कर मैं नहीं जाने वाली'- कहा मैंने

उन्होंने खींचकर एक तमाचा धर दिया मुझे।

उसे देखकर 'अम्मा' कहते हुए तुम मेरी ओर दौड़ आने लगे थे।

तुम्हें पकड़कर तुम्हारे पिता जी को सौंपते हुए- 'इसी पल गाँव छोड़कर चले जाओ। यह रहा तुम्हारे तबादले का आर्डर' कहते हुए तुम्हारे पिता जी को एक लिफ़ाफ़ा थमा दिया।

मैं खूंठ सदृश हो गई।

तुम्हारे शाश्वत रूप से दूर हो जाने के गम से होंठ फटकर खून बहते रहने पर भी- 'उन्हें यहाँ से भेजा गया अगर तो मैं खुदकुशी कर लूँगी सुनिए, आप यहाँ से मत जाइए' कहती हुई अपने लौह मुट्ठियों के बीच कसकर पकड़ रखे आदमियों को पूरी ताक़त से मैंने खींच दिया।

निस्सहाय माँ कहते हुए तुम्हारे पिता जी तुम्हें अपनी भुजाओं में लेकर बाहर निकल गए।

तुम और तुम्हारे पिता जी के जाते ही तुरंत ही दरवाज़े बंद कर दिए गए।

मैंने कभी नहीं सोचा कि जिंदगी में तुम पिता-पुत्र को कभी देख पाऊँगी।

एक दिन मौक़ा पाकर मैं घर से फ़रार होकर तुम्हारे पिता जी के गाँव चली आई। लेकिन तुम और तुम्हारे पिता जी के पास पहुँचने के पहले ही बाँध कर ससुर जी के पाँवों के पास ले जाकर पटक दी गई। मुझे इतनी यातनाएँ दी कि कह नहीं सकती। अपने मिलिट्री वाले सारे हथकँडों का मुझ पर प्रयोग किया। मर्द किसी औरत पर इतनी राक्षसी प्रवृत्ति से पेश आ सकता है के स्तर पर मुझ पर हिंसा ढाते गए। औरत मर्द को सुख देने का यंत्र मात्र है के स्तर पर उस एक सूत्र पर जिया उसने। जीने दिया मुझे। उसके समर्थन में खड़े सभी बड़े एक-एक कर गुज़र गए।

आखिरी दशा में उसे लकवा मार गया। पहले निश्चय किया था कि उसे छोड़-छाड़ कर चली आँऊ। लेकिन तुम्हारे पिता जी के पढ़ाए मानव सेवा ही माधव सेवा के भाव से उसकी सेवा की मैंने। आखिर वह भी स्वर्ग सिधार गया।

बेटे! मैं अब तक एक ही बात न जान सकी।

औरत क्यों कर पुरुष को खिलौना लगती है। इतनी कि प्रतिस्पर्धा भूल पड़ी रहने वाली क्यों लगती है। केवल लिंग भेद के सिवाय सभी विषयों में बराबर रहती औरत को मर्द अपने बराबर के दर्जे का क्यों नहीं मानता? शिक्षा के चलते सीखे संस्कार, अनुभव के पढ़ाए विलक्षण ज्ञान को पाकर भी औरों के प्रति कितनी ही उदारता दिखाने वाला मर्द औरत के विषय में स्वार्थ भाव से ही क्यों सोचता है?

भाषा ISSN 0523-1418

'निस्सहाय और अबला स्त्री' के नाते ही सही इज्ज़त देने के बजाए स्त्री को दोषी सा देखना कहाँ तक सही हैं?

ये सारे एक गुलाम की तरह स्त्री को देखने वाले पुरुष से ही पूछे जाने वाले प्रश्न हैं मेरे।

राजशेखर जी जैसे लोगों से नहीं।

मैंने सुना है कि तुमने अब तक शादी नहीं रचाई। क्या औरत जात के प्रति कमतर भाव? या 'माँ' भी औरत ही है, कल तुम्हारी पत्नी 'माँ' कहलाएगी को न सुन पाने के कारण?

मुझ पर तुम्हारा क्रोध होना स्वाभाविक ही है

अपने पिता जी से पूछो कि उसमें मेरा रत्ती भर भी दोष है क्या?

दोष यदि नहीं है का पता चला तो तुरंत मेरे इस पते पर आ जाओ।

मेरा अणु-अणु परमेश्वर सा भरा हुआ उन्हें देखने के लिए तुम्हारे पर्मिशन की मुझे जरूरत नहीं है। तुम्हें माँ का अनुराग व जरूरत प्रतीत कराने के लिए ही मेरा यह सारा प्रयत्न था।

फिर भी उन्हें एक बार देखने की आशा। परमेश्वर को देखने की साधारण भक्तिन की आशा।

फिर इसी दिन तक शायद तुम्हारी यह माँ तुम्हें न दिखाई दे। मौका आने पर इस्तेमाल न करना मूर्खत्व ही होगा चाहे कितना ही विज्ञ क्यों हो।

इस पत्र का कोई वाक्य तुम्हें बाधा दे तो मुझे माफ़ करना। तुम कहीं भी रहो, स्वास्थ्य से आनंद से चिरकाल जीवित रहो।

यही इस माँ की आखिरी ख्वाहिश है। मेरे भगवान को प्रणाम कहो-

तुम से अणु-अणु पर तिरस्कृत

माँ

* * *

पत्र पढ़ते ही श्रीवास्तव का हृदय भारी हुआ। पत्र को दूसरी बार पढ़ने पर वह स्थित ख्यालों में डूबते ही भारी हृदय के अंतर तहों में कलकल शुरू हुआ। उसके अंतरंग को हिला देने से अश्रु उदधि में परिवर्तन हुआ। एक-एक वाक्य एक-एक तरंग सा बदलकर उसे तन-बदन को परेशान करने लगा। बरस-बरस कर धरा में प्रच्छन्न हुआ उसका मन अब।

'पिता जी, आपके लिए एक भेंट'

अपने पीछे छिपाए भेंट को दर्शाने की आड़ से हटते हुए कहा श्रीवास्तव ने 'जयंती', अप्रयत्न ही उनके होंठों से अस्पष्ट रूप से उसका नाम उच्चारित हुआ। अशक्त तन में शक्ति को भरते हुए हाथ पसारकर खड़े रहे राजशेखर जी के हृदय पर जयंति पुष्पमाला सी सट गई। उस अलिंगन में दो सागरों के संगमित की प्रशांतता। आकाश और धरा के एक होने की भावना।

कितनी-कितनी बातें करना चाहकर भी एक बात न फूटने के अंतरंगों का जंग- फिर भी कभी उन्हें विच्छेद न करने की जुस्तजू।

उन्हें उस हालत में छोड़कर अपने कमरे में आ गया श्रीवास्तव।

इतने काल तक 'माँ' नामक शब्द असह्य लग रहा था। माँ के मन को पढ़ने के बाद, 'माँ' का अर्थ समझने के बाद इस संसार में कोई भी अमृत नहीं तुलता, अतुल्य व्यक्ति 'माँ' ही है लगता है। "सृष्टि का निर्माण कर-करके थककर खुद विश्राम करने को खुदा ने माँ ने अंक का सृजन किया" कहीं पढ़े हुए वाक्य माँ के उसे दिलभर कर सहलाते हुए चूमकर क्षमा किया तब से सुवर्णाक्षर बनकर मन में मुद्रित हुए। माँ के सिवाय इस संसार में ग़लती करने वाले को कौन क्षमा कर सकता है? माँ का मूल्य जानने के लिए माँ को दुत्कारने वाले हर मर्द को, स्त्री का तिरस्कार करते हर मद मत्सर पुरुष पशु को स्त्री का महत्व दर्शाने की लालसा है। गंगाजल से हज़ारों अभिषेक किए शिवलिंग के पीठ सा प्रशांतता से, पवित्रता से है उसका अंतरंग।

- प्लॉट नं: 96, म.नं: 10-167, गायत्री होम्स, तेलंगाना, हैदराबाद-500097

❑❑❑

नथरोई दी वादी

पद्मा सचदेव

कोहरै चा सिर चुक्का दे
देआरें दे घने बूटे बंदोन लगे न
कुतै-कुतै प्हाड़िया चा
उस्सरा दा धूं
शमाना बल्ल जा' रदा ऐ
धूआँ-धूआँ मेरे अल्ल़ औग्गा
तुगी दंदियाँ झकाग
शमानै अल्ल जाग्गा
खिचड़ी खलांग
धूएँ गीं खिचड़ी मती प्यारी ऐ
अक्खीं च धूं पौंदे गे
म्हाला ने अपनी अक्ख
बिंदक गुहाड़ी ऐ
ओह्दे इक्कै साह् कन्नै
धूं खिल्लरी गेआ ऐ

सारी वादी नथरोई आई ऐ
जियां सनआरे दे
नसादरै आह्ले पानिया चा
चमकिएँ सुन्ने दी
टुक्करी निकली होऐ
मन आखदा ऐ
इस्सी अपनी गोदा च लैं
अपनी बाह्में च नूही लैं
ए निक्के जागतै आह्ला लेखा
अजें बे-बस ऐ
दिन चढ़दे गै इस्सी
सुरत फिरनी ऐ
ते फ्ही इन्ने छडुत्त कीते दे
मेरे हत्थै चा निकली जाना ऐ

– बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

निथरी हुई वादी

अनुवाद : कृष्ण शर्मा

कोहरे में से सिर निकाल
देवदार के घने वृक्ष
झाँकने लगे हैं
किसी-किसी पहाड़ी से उठता धुआँ
जाने लगा है आकाश की ओर
'धुआँ-धुआँ' मेरे पास आओगे?
तुझे चिढ़ाऊँगी
खिचड़ी खिलाऊँगी
तुम्हें खिचड़ी बहुत पसंद है न?
आँख में धुआँ लगते ही
हिमालय ने आँख
ज़रा-सी खोल दी है
उसकी एक ही साँस से
धुआँ बिखर गया है
सारी वादी निथर गई है
जैसे सुनार का
नौसादर वाला पानी छू कर
सोने की डली
चमक उठती है
मन चाहता है
गोद में ले लूँ धूएँ को
बाहों में भींच लूँ
नन्हे शिशु की मानिंद
अभी तो असमर्थ है यह
दिन निकलते ही इसमें
प्राणों का संचार होगा
बड़ी फुर्ती से तब
छूट जाएगा यह मेरे हाथ से.....

– 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

❑❑❑

दोहा से दोहा- ग़ज़ल तक

डॉ. मधुसूदन साहा

भारतीय वाङ्मय में दोहा प्राचीनतम काव्य-विधा है। आदिकाल से अब तक इस विधा में अनेक कवियों ने समयानुसार स्वानुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अपभ्रंश से लेकर हिंदी तक की इस यात्रा में इस छंद ने कई पड़ाव बदले, कई भावभूमियों पर विचरण किया और कई प्रकार की भावाभिव्यक्तियों को अपना आधार बनाया। इसीलिए सामासिक, सांस्कृतिक चेतना को अत्यंत प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने वाला यह छंद सदैव कवियों को आकर्षित करता रहा और पाठकों को आनंद विभोर करता रहा। सच कहा जाए तो आज के काव्य लेखन में दोहा और ग़ज़ल ही सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। आज जो दोहे लिखे जा रहे हैं अथवा हिंदी ग़ज़लें कही जा रही हैं, उनमें एक साथ अभिव्यक्ति की अनेक संभावनाएँ दृष्टिगत होती हैं। सूक्तिधर्मिता को बरकरार रखते हुए आज के दोहे भाव समग्रता और कथ्य वैविध्य के इतने आयामों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं कि गागर में सागर भरने वाले इस छंद के नए स्वरूप को देखकर पाठक विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं। संप्रेषणीयता का यह सामर्थ्य संभवत: दोहा के सिवा शायद किसी और काव्य-विधा में नहीं है। इसीलिए उर्दू के बड़े-बड़े शायर भी हिंदी में दोहा लिख रहे हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि उर्दू का शेर दोहा छंद से ही निकलता है। हकीक़त तो यह है कि दोहा का छंद (13-11, 13-11) उर्दू बहर का ही एक रूप है। इस छंद में दोहा भी लिखा जाता है और ग़ज़ल भी कही जाती है। छंद अर्थात् बहर की इस समानता के कारण जो लोग दोहा लिखते थे वे आसानी से ग़ज़ल भी लिखने लगे। दोहा और ग़ज़ल के कथ्य एवं शिल्प के साम्य पर दृष्टिपात करते हुए स्वयं 'दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक' की यात्रा करने वाले ज़हीर कुरेशी कहते हैं कि "यूँ भी मेरी भावना यही रही है कि शेर और दोहा ही 'डेंस पोइट्री फॉर्म्स' हैं। शेर और दोहा दोनों ही दो पंक्तियों में एक पूरी बात कहते हैं यानी दोनों की दो पंक्तियाँ बराबर एक कविता। दोनों काव्य-रूपों में उद्धरणशीलता होती है। दोनों काव्य-रूप लोगों की स्मृतियों में जीवित रहते हैं। उचित समय पर, व्यक्ति लंबी बात करने की जगह शेर या दोहा उद्धृत करना अधिक उपयुक्त समझता है। शेर और दोहे की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण शायद यह भी है।" इतना ही नहीं दोहे की सबसे बड़ी ताकत है उसकी अभिव्यक्ति क्षमता छोटे-छोटे शब्दों में बड़े से बड़े अर्थ को समायोजित करने की क्षमता के कारण दोहा सदैव पाठकों के आकर्षण के केंद्र में रहा। चाहे यह शैशवकाल में हो अथवा प्रौढ़ावस्था में इसका आकर्षण कभी कम नहीं हुआ। दिन प्रतिदिन इसमें निखार आता गया। कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम, बिहारी आदि प्राचीन कवियों से लेकर भारतेंदुयुगीन कवियों में भी दोहा के प्रति समान रूप से निष्ठा बनी

दोहों से दोहा-ग़ज़लों तक/ लेखक : जहीर कुरेशी/ समन्वय प्रकाशन, के. बी 97 (प्रथम तल), कविनगर गाजियाबाद - 201002/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ कुल पृष्ठ : 124/ मूल्य ₹.250/-

भाषा ISSN 0523-1418

रही। कबीर सुधारवादी संत कवि थे इसलिए उनके दोहों में नीतिपरक तथ्यों का आधिक्य है। रहीम की मार्मिकता, रसखान के कृष्ण प्रेम, जायसी और तुलसी के रहस्यवाद एवं भक्तिवाद, बिहारी की शृंगारिकता और सौंदर्यानुभूति के प्रस्तुतीकरण ने दोहा छंद की अभिव्यक्ति को कौशल के चरम बिंदु पर पहुँचा दिया। तत्पश्चात् लगभग ढाई तीन सौ वर्षों तक काव्य का रुझान मुक्त काव्य को छोड़कर प्रबंध काव्य और महा काव्य की ओर अधिक हो गया। आधुनिक काल में आकर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने दोहा छंद को सुसुप्तावस्था से उठाकर जागृत अवस्था में लाने का प्राणपन से प्रयत्न किया और सामयिक भावभूमि पर पुनर्प्राणप्रतिष्ठा करने की भरपूर कोशिश की। किंतु उनका यह प्रयास समकालीन अन्य काव्य प्रवृत्तियों के कारण रंग नहीं ला पाया। द्विवेदी कालीन कवियों से लेकर छायावादी तथा छायावादोत्तर कवियों तक दोहा के प्रति आकर्षण की कमी बरकरार रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पुनः एक बार यह झोंका उठा और देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', दिनेश शुक्ल, पालभसीन, विश्व कुमार दीक्षित, सूर्यभानु गुप्त, निदा फ़ाजली, यश मालवीय, हस्तीमल, कैलाश सेंगर, हरीश निगम, ज़हीर कुरेशी आदि अनेक कवियों ने काव्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ दोहा छंद को पुनः अपनाया और अभिव्यक्ति के नए क्षितिज पर ले जाने का भरपूर प्रयास किया। आज का दोहा-लेखन इसी समवेत प्रयास का प्रतिफल है।

इस सामर्थ्यवान छंद की सार्थकता और उपयोगिता के बारे में हरे राम समीप ने एक साक्षात्कार में स्पष्ट रूप से कहा है कि "दोहा ने लगभग डेढ़ हजार सालों से बार-बार यह साबित किया है कि उसे अपने समय के साथ चलना आता है। रासो, अध्यात्म, भक्ति, प्रेम, शृंगार, नीति, राष्ट्रीय चेतना, सांप्रदायिक सामंजस्य और अब यथार्थ की मुखर अभिव्यक्ति-यात्रा करते हुए उसने अपने सामर्थ्य की असीम संभावना के प्रति हमें आश्वस्त कर दिया है। आज जो दोहे की लोकप्रियता के नए क्षितिज खुल रहे हैं, ये उसकी अंतर्शक्ति का प्रमाण है। अतः दोहे की प्रासंगकिता निर्विवाद है। काव्य की अन्य विधाओं से दोहे का कोई मुकाबला नहीं है, इसीलिए दोहा छंद साहित्य के नए क्षितिज तलाशने हेतु मुक्त गगन में नई उड़ान पर निकल चुका है।" इसी उड़ान का सबसे ताजा और नया क्षितिज है ज़हीर कुरेशी की सद्यः प्रकाशित कृति - 'दोहों से दोहा- ग़ज़लों तक' जिसमें समसामयिक सामाजिक परिवेश, आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, बाज़ारवाद, शाश्वत सत्य, मिथक, राजनीति, स्त्री-पुरुष संबंध, प्रवृति, पर्व, आतंकवाद, युद्ध दर्शन अध्यात्म और देश-प्रेम पर कुल मिलाकर चार सौ उनसठ दोहे और तीस दोहा-ग़ज़लें संकलित हैं। दोहा से दोहा-ग़ज़ल की इस यात्रा के पीछे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शेर और दोहा दोनों में ही दो पंक्तियों में एक पूरी बात कहने की काव्य-कला है। दोनों पूर्वापर संबंधों से स्वतंत्र हैं। यदि प्रत्येक दोहा अपने आप में भाव संप्रेषण की दृष्टि से पूर्ण होता है तो ग़ज़ल का प्रत्येक शेर भी दो-दो पंक्तियों में ही अलग-अलग पूर्ण भावों को संप्रेषित करता है। दोहा मात्रिक छंद है और शेर वर्णिक छंद। दोनों को मापने का अपना अलग पैमाना है तथा अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप कहन-भंगिमा है। दोहे की बेबाकी और शेर की सांकेतिकता दोनों के संप्रेषण कौशल को बड़ी खूबसूरती से दर्शाती है यह कहन-भंगिमा है। दोहा-छंद में ग़ज़ल कहने का प्रयास एक ऐसे शब्द शिल्पी के हाथों हुआ है जो एक कुशल दोहाकार के साथ-साथ लब्धप्रतिष्ठित ग़ज़लगों भी हैं। दोनों काव्य विधाओं के कुशल कलाकार हैं ज़हीर कुरेशी, जिन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि आधुनिक दोहा और सांप्रतिक हिंदी ग़ज़ल समसामयिक सामाजिक सरोकारों से पूरी तरह संबद्ध हैं। दोनों काव्य विधाओं में समय की सारी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने की समान शक्ति सन्निहित हैं। ज़हीर जब दोहा लिखते हैं तो तमाम दोहाकारों में उनकी कहन-भंगिमा सबसे अलग होती है। वे अपने दर्द के साथ-साथ दूसरों के दर्द को भी खूब भलीभाँति समझते हैं- "इनकी अपनी पीर है, उनकी अपनी पीर, दुनिया भी की पीर को, समझे सिर्फ ज़हीर।"

दुनिया भर की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझना सबके बस की बात नहीं होती। हर इंसान को जिंदगी जीने के लिए मुश्किलों के बीच रहकर जिजीविषा के लिए जद्दोजहद करने की जरूरत पड़ती है। पारिवेशिक परिस्थितियाँ, सामाजिक विसंगतियाँ, सियासी षडयंत्र, पारिवारिक संत्रास, मजहबी संकट और पर्यावरणीय मजबूरियाँ आज के इंसान को हर कदम पर बेबसी और

बेदिली की उस घाटी में धकेल देती हैं जहाँ बंदूकों की खेतियाँ होती हैं और पत्थरों की फ़सलें उगाई जाती हैं। साक्ष्य हैं ज़हीर के ये दोहे-

बंदूकों की खेतियाँ, करते हैं जो लोग,
उनके ही वंशज करें, दंगों के उद्योग।
पढ़-लिख कर भी देश की, युवा-शक्ति बेकार,
कुछ करने के नाम पर, फूँके मोटर-कार।
उस बस्ती में एक भी, वृक्ष नहीं छतनार,
पहले जो-चार थे, उन पर चली कुठार।
दो बेटों ने खींच ली, आँगन में दीवार,
किंतु, किसी दीवार से, बँटे न माँ का प्यार।

रिश्तों के बीच दीवारें खड़ी करने वाले परिवार, लूटपाट और धोखाधड़ी में लिप्त समाज तथा बंदूकों की खेती करने वाली राजनीति चाहे जितनी भी कोशिश कर लें न माँ के प्यार को बाँट सकती है न इंसान के दिलों से मुहब्बत को मिटा सकती है। क्योंकि जिस इंसान की चाहत छोटी होती है और सोच बड़ी, वह अपनी चादर से अधिक पैर कभी नहीं फैलाता, अपने आप को सीमित साधनों से संतुष्ट रखता है। प्रत्येक इंसान की आखिरी जरूरत होती है सिर्फ दो गज ज़मीन। इस शाश्वत सत्य को ज़हीर कुरेशी ने अपने एक दोहे में जिस कबीरी अंदाज में अभिव्यक्त किया है वह अपने आप में एक मिसाल है-

सिर पर नीलाकाश है, पैरों तले ज़मीन,/ दोनों को इंसान से, कोई सका न छीन।

इस छोटी- सी जरूरत की पूर्ति के लिए आदमी ज़िंदगी भर किस प्रकार हाय-तोबा मचाए रहता है, उल्टे-सीधे काम करता है, अपने जज़्बात को गिरवी रखता है और ईमान को बेच डालता है तथा औरों के लिए जाल बुनते-बुनते एक दिन खुद अपने बुने हुए जाल में इस कदर फँस जाता है कि सीधा-सरल जीवन भी जंजाल बन जाता है-

आजीवन बुनती रही, मकड़ी खुद ही जाल, वो जाला ही बन गया, जीवन का जंजाल।

कहते हैं कि सांकेतिकता ग़ज़ल की विशेषता होती है दोहा सपाट बयानी और दो टूक कहने में माहिर होता है किंतु ज़हीर के दोहे भी शेर सांकेतिकता के हुनर से लैश होते हैं- एकाध उदाहरण प्रस्तुत है-

सीढ़ी दर सीढ़ी नहीं, चढ़ते हैं अब लोग/ ऊपर जाने के लिए, करें 'लिफ्ट' उपयोग।

'लिफ्ट' शब्द का यह सांकेतिक प्रयोग कितनी आसानी से इस तथ्य को उजागर कर देता है कि जो शीघ्रातिशीघ्र शीर्ष पर पहुँचना चाहता है वह सीढ़ियों के बजाएँ 'लिफ्ट' यानी किसी 'गॉड फादर' की गोद तलाशता है।

यह अलग बात है कि कबीर ने साहित्य साधना के शीर्ष पर पहुँचने के लिए सहारे की जरूरत महसूस नहीं की और धीरे-धीरे अनुभव की एक-एक सीढ़ी को पार करते हुए इतनी ऊँचाई पर जा पहुँचे कि आज तक उनसे बड़ा न कोई संत हुआ न साधक, न साहित्यकार हुआ न दोहाकार। कबीर ने अपनी सधुक्कड़ी एवं फक्कड़ी भाषा में स्वानुभवों एवं स्वानुभूतियों के आधार पर ऐसे-ऐसे दोहों का सृजन किया जो सामान्य जन मानस में सदियों से रचे-बसे हैं। अद्वैत दर्शन, मजहबी बाह्याडंबर की कटु आलोचना, व्यावहारिक जीवन का यथार्थ ज्ञान, सत गुरु की महिमा का बखान आदि जीवन के ऐसे अनेक आयाम हैं जिन पर केंद्रित कबीर के दोहे भारतीय वाङ्मय के धरोहर हैं। ज़हीर ने अपने एक दोहे में इसे अभिव्यक्त करने का बड़ा अच्छा प्रयास किया है-

दोहे कहकर आज तक, जिंदा संत कबीर/ उस पथ पर ही चल पड़े, दोहाकर ज़हीर।

संत कबीर के पथ पर चलने का संकल्प लेकर जब ज़हीर ने दोहा प्रारंभ किया तो अनेक दोहे स्वयं लेखनी की नोक से कागज के पन्नों पर उतर आए जो कहावतों और मुहावरों की भाँति जन-जन की जुबान पर चढ़कर बोल रहे हैं। उनमें से कुछ दोहे साक्ष्य स्वरूप यहाँ प्रस्तुत हैं-

हर मनुष्य ने गढ़ लिए, अपने-अपने तर्क,
सबके अपने स्वर्ग हैं, सबके अपने नर्क।
कुआँ कभी जाता नहीं, खुद प्यासे के पास,
लोग कुएँ के पास ही, लेकर आते प्यास।
तिरिया-हठ के सामने, सारे हठ बेकार,
जब-जब तिरिया हठ करे, काँपे घर-संसार।
तिल-सी विपदा भी उन्हें, लगती ताड़ समान,
जिन महलों को आज तक, हुआ न दुख का भान।

प्रेम जीवन का शाश्वत तत्व है, इश्क और

भाषा ISSN 0523-1418

मुहब्बत शायरी की जान है और स्त्री-पुरुष का संबंध रोमानियत की सच्ची पहचान। ज़हीर ने कबीरी दोहों के साथ-साथ 'रूमान' के भी बड़े मोहक एवं मनोरम दोहे लिखे हैं जिनमें नारी की पीड़ा भी है और पुरुष की बेरहमी भी, पत्नी का समर्पण भी है और पति का शोषण भी, यौवन की खुली किताब भी है और लज्जाशीला का सांकेतिक जज़्बात भी। इन दोनों में दोहाकार ने सौंदर्यबोध के साथ-साथ समाज में हो रहे बाल विवाह और बेमेल विवाह की पीड़ा को भी बड़ी मार्मिकता से दर्शाने की कोशिश की है-

बूढ़े को ब्याही गई, एक कली कचनार,
चिंगारी से पूछ मत, तन का हाहाकार।
फूलों जैसी देह पर, पर्वत जैसा भार,
खुश होकर अभिसारिका, कर लेती स्वीकार।
जब भी आया मोम-तन, चिंगारी के पास,
बेलगाम होने लगी, तन की आदिम-प्यास।
वस्त्रहीन होकर घुसे, करने लगे किलोल,
जबरन ही पढ़ने लगे, नदिया का भूगोल।
खुलकर भी, खुलते नहीं, नारी के जज़्बात,
प्रणय-सेज पर भी करे, संकेतों में बात।

आतंकवाद और युद्ध की धमकियाँ आज का बिल्कुल ज्वलंत सवाल है। पड़ोसी रोज़ इन मुद्दों को उठाते रहते हैं और बाहरवालों के साथ-साथ घरवालों को भी पत्थरबाज़ी का पाठ पढ़ाते रहते हैं। ज़हीर कुरेशी जैसा सजग रचनाकार इस मुद्दे को कैसे नज़रअंदाज कर सकता है? उन्होंने और दोहा-ग़ज़लों में इस सवाल को सही संदर्भों में उठाने और सुलझाने का सार्थक संकेत दिया है-

सिर पर मँडराने लगे, नए-नए आतंक,
इस युग में भयभीत हैं, क्या राजा, क्या रंग।
लूटमार, धोखाधड़ी, युद्ध कुटिल षड्यंत्र,
धीरे-धीरे बन गए, इस कलयुग के मंत्र।
वे ही देते हैं हवा, दंगों को दिन-रात,
लपटों में जलते नहीं, जिन लोगों के हाथ।

हकीकत तो यह है कि आजकल दंगे होते नहीं बल्कि करवाए जाते हैं क्योंकि राजनीति का मूलमंत्र है आपस में वैमनस्य बढ़ाओं और जलते तवे पर अपनी रोटी सेंको-

राजनीति करती रही, फूट डाल कर राज, इस छोटी-सी बात को, समझा नहीं समाज।

यदि समाज इसे समझ पाता कि सारी समस्याएँ आपसी संवाद से सुलझ सकती हैं, यदि दीप से दीप जलाने की कोशिश की जाए तो आदमी के बीच का अँधियारा आसानी से मिट सकता है, बस इसके लिए दोनों दीपों को कदम-दर-कदम आगे बढ़ने के लिए पहल करने की जरूरत है, कबीर के ढाई आखर की सोच को अपने अंदर बड़ी गहराई तक उतारने की आवश्यकता है; तभी तो ज़हीर कुरेशी कहते हैं-

कितना अच्छा हो अगर, जलें दीप से दीप, यह संभव तब हो सके, आएँ दीप समीप।

ज़हीर कुरेशी की काव्य-साधना सचमुच दीप को दीप के समीप लाने की साधना है, चाहे दोहा हो या दोहा-ग़ज़ल उनकी सोच की नदिया सदैव सद्भावों एवं सद्वृत्तियों के समंदर में स्वयं को समर्पित करने के लिए अग्रसर होती रही है। दोहों से दोहा-ग़ज़लों के इस सफर में भी उनका सरोकार इसी सोच को साकार करने में सक्रिय प्रतीत होता है। निम्न पंक्तियाँ इस कथन के प्रमाण हैं-

होते आखातीज पर, लाखों बाल-विवाह,
कानूनों की दुर्दशा, संविधान से पूछ।
सबके सम्मुख दान से, बढ़ता है अभिमान,
सच्चे सुख का रास्ता, गुप्त-दान से पूछ।

× × × × ×

मजबूरी का फायदा, खूब उठाते लोग,
पतिता के उद्धार में, खुद गिर जाते लोग।
राजनीति ने धर्म की, फैलाया उंमाद,
लोग अचानक हो गए, वहशीपन के साथ।

दोहे की देह में ग़ज़ल की आत्मा का यह कायिक प्रवेश ज़हीर कुरेशी का एक प्रयोगधर्मी प्रयास अवश्य है किंतु ग़ज़ल का बदला हुआ रूप शायद उन्हें खुद भी रास नहीं आया, इसीलिए मात्र तीस-पैंतीस दोहा-ग़ज़ल कहने के बाद पुनः अपनी पारस्परिक हिंदी ग़ज़लों की दुनिया में लौट गए। उन्हें खुद ही यह महसूस होने लगा कि दोहा, दोहा होता है और ग़ज़ल होती है, दोनों के मिज़ाज में काफी अंतर है। दोहा छंद का बेबाकीपन अगर उसकी अपनी विशेषता है तो ग़ज़ल के अशआर

की सांकेतिकता उसकी अपनी अस्मिता। दोनों काव्य विधाओं की अपनी-अपनी विशिष्टताओं के बाजवूद डॉ. राही मासूम रजा का मानना है कि "दोहा छोड़कर दो लाइन के फार्म की कविता भारत को छोड़कर दुनिया में कहीं नहीं है और ग़ज़ल दो लाइनों के फॉर्म में लिखी जाने वाली कविता-शैली है। ऐसे में हम जब दोहा-ग़ज़ल लिखते हैं या कहते हैं तब न केवल हम ग़ज़ल के इतिहास की ओर प्रकारांतर से जाने की कोशिश करते हैं, बल्कि ग़ज़ल के फॉर्म को भी मात्र दो शब्दों में समझा देने की पहल करते हैं। वास्तव में, ग़ज़ल अपने स्वरूप में विकासगत थोड़ी भिन्नता लिए दोहा-गुच्छ ही तो है।" जो लोग दोहा-ग़ज़ल को लेकर शिविरबद्ध हैं, उन्हें डॉ. राही मासूम रजा के उक्त कथन पर सवाल उठाने के पूर्व दोहा छंद के विकास और प्रयोग की परंपरा को खँगालने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए।

– सौरभ सदन, डी/90, कोयल नगर, राउरकेला, ओडिशा - 769014

❑❑❑

श्लेषालंकार स्वरूप और विस्तार- एक परिचय

डॉ. रंजना अरगडे

विमर्शों के घटाटोप में शुद्ध शास्त्रीय ग्रंथ की रचना अपने आप में एक कौतुक है। यह उतना ही आश्चर्यजनक है जैसे चारों तरफ उठते बेहिसाब शोर के बीच कोई ध्यान लगाए बैठा हो। यही भाव मेरे भीतर आया जब डॉ. मथुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ की पुस्तक 'श्लेषालंकार स्वरूप और विस्तार' मेरे पढ़ने में आई। फिर पुस्तक भी कोई छोटी-मोटी नहीं, 504 पृष्ठों की बी-3 अथवा कहें डायरी आकार की है। यह उनकी छठी पुस्तक है। अपनी भूमिका में उन्होंने जानकारी दी है- "सर्वप्रथम 1975 में 'स्वभावोक्ति' शीर्षक से मेरी पहली पुस्तक सामने आई थी, जिसे प्रकाशक ने 1980 में पुनः नए रूप में प्रस्तुत किया। उसके उपरांत 'अर्थांतरन्यास अलंकार' और 'वक्रोक्ति अलंकार' 1978 में प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा 2002 में 'यमकालंकार' और 'अनुप्रासालंकार' प्रकाशित हुईं। प्रथम तीन पुस्तकें आकार में 200 पृष्ठ से कम ही थीं और उनमें हिंदी काव्य का व्यावहारिक विश्लेषण कम ही हो पाया था। यमक और अनुप्रास से संबंधित ग्रंथों में व्यावहारिक विश्लेषण को समुचित स्थान दिया गया है। इसी कारण इन ग्रंथों की पृष्ठ संख्या 400-400 है।" वह क्या बात है जो इस पुस्तक के विद्वान लेखक को इतनी दृढ़ता से यात्रा-रत रखता है? इसके पूर्व डॉ. नगेंद्र अथवा मार्क्सवादी आलोचक डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय का नाम याद आता है जिन्होंने काव्य शास्त्र के शास्त्रीय विवेचन को इतनी गंभीरता से अपने अध्ययन का विषय बनाया। ऐसा नहीं है कि काव्य शास्त्र पर और पुस्तकें नहीं आई हैं। पर वे प्रायः विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के छात्रों और अध्यापकों के लिए संदर्भ पुस्तकों के रूप में उपयोगी पुस्तकों की सूची में शामिल की जा सकती हैं।

इस पुस्तक में डॉ. कुलश्रेष्ठ जी का आशय मुख्य रूप से काव्य शास्त्र विनोद है। ऊपर उल्लिखित पुस्तकों के अलावा काव्य शास्त्र एवं अन्य पुस्तकें भी आपने लिखी हैं- 'यथास्वाभाविकता और आधुनिक हिंदी काव्य', टिलियर्ड का 'वक्रोक्ति सिद्धांत', अज्ञेय का 'अंतः प्रक्रिया साहित्य', 'अनुपस्थिति रचनाकार की' तथा अन्य निबंध अनुकरण सिद्धांत और काव्य। यूँ कुल 11 पुस्तकों में प्रायः नौ पुस्तकें काव्य शास्त्र की ही हैं। यह साधना है जो विमर्शों के दौर में लेखक को विचलित नहीं करती। विमर्शों के दौर में विशुद्ध काव्य शास्त्र का अनुसंधान करने का साहस उसी साधक में हो सकता है जिसमें उत्साह का स्थायी भाव हो। विमर्शों ने शुद्ध काव्य शास्त्र को इतना क्षीण और लगभग अदृश्य कर दिया है कि साहित्य चर्चा कई बार साहित्येतर हो गई लगती है: क्योंकि देरिदा के बाद तो साहित्य-चर्चा की विशुद्ध गंभीरता एकदम लुप्त-सी हो गई है। अंतरविद्यालयी अध्ययन का अपना महत्व है, इसमें दो राय नहीं है परंतु यह लगभग ऐसा ही है जैसे छंद मुक्ति

श्लेषालंकार स्वरूप और विस्तार- एक परिचय/ लेखक : डॉ. मधुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ/ ब्रजकिशोर कुलश्रेष्ठ प्रकाशन/75/70, मानसरोवर, जयपुर-302020/ प्रकाशन वर्ष : 2017/ कुल पृष्ठ : 504/ मूल्य : ₹.1500/-

की आड़ में कविता के नाम पर कुछ भी कहने की स्वतंत्रता मिल जाने पर कोई भी कवि बन जाए, यह सहज संभाव्य हो गया है। अ-कवियों तथा अ-साहित्यकारों की जनमेदिनी से समाज का पेट भरा पड़ा है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि जब यह दौर भी गुज़र जाएगा तो यह प्रश्न बना रहेगा कि साहित्य के संदर्भ में हमारे पास अपनी परंपरा का वह कौन-सा शास्त्र उपलब्ध है जो दिशा दर्शक हो सकता है। भारतीय काव्य शास्त्र की परंपरा (दो भागों में) के प्रथम खंड में डॉ. नगेंद्र ने संस्कृत काव्य शास्त्र के आचार्यों का अनुवाद उपलब्ध कराया है। इससे आगे बढ़कर डॉ. कुलश्रेष्ठ ने काव्य शास्त्र विवेचन के जो ग्रंथ लिखे उनमें विस्तार से समझाया तो है ही पर साथ ही चूँकि उन्हें अंग्रेज़ी तथा संस्कृत का समुचित ज्ञान है अतः उसका मौलिक विश्लेषण भी किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का महत्व अपनी विषयवस्तु के कारण तो है ही। लेखक ने भूमिका में लिखा है- "श्लेष पर लिखी गई प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी संस्कृत के श्लेष काव्य का समुचित विश्लेषण तो है ही, साथ ही इसमें चित्रकला और मूर्तिकला को भी स्पर्श किया गया है। सामग्री और विवेचन की दृष्टि से इस पुस्तक के अध्याय अपेक्षाकृत पर्याप्त समृद्ध हैं। कुछ इस कारण भी कि विषय अत्यंत गंभीर है और इस कारण से भी कि श्लेष अलंकार अन्य अलंकारों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है और अनेक काव्यशास्त्रीय गुत्थियाँ प्रस्तुत करता है।" मुझे इस पुस्तक की एक विशेषता यह भी लगी कि इस पुस्तक का अध्यायीकरण एक शास्त्रीय पुस्तक का, एक मुकम्मल प्रबंधत्व का उदाहरण है। भूमिका, कुल छह अध्याय, उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची है । इन अध्यायों में एक ऐसा प्रबंधत्व है जो इस पुस्तक के आंतरिक सौंदर्य का कारण बनता है। पहला अध्याय श्लेष पद्धति का स्वरूप और विस्तार है, दूसरा- संस्कृत काव्य शास्त्र में श्लेषालंकार का विकास, तीसरा अध्याय- श्लेषालंकार का स्वरूप निर्धारण व प्रयोग, चौथा अध्याय- हिंदी काव्य शास्त्र और काव्य में श्लेषालंकार, पाँचवें अध्याय में श्लेष तथा अन्य अलंकार, छठे अध्याय में श्लेष पद्धति का मूल्यांकन फिर उपसंहार और संदर्भ ग्रंथ सूची। इन अध्यायों में एक परस्परनिबद्धता है।

भूमिका में जिन आठ बिंदुओं की ओर निर्देश किया गया है उन्हें उपसंहार से जुड़ा हुआ देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए भूमिका में इस बात का उल्लेख है कि यह एक शुद्ध शास्त्रीय ग्रंथ है और बिना किसी पूर्वाग्रह के तटस्थ विवेचन है। उसी को आप उपसंहार के इस कथन से जोड़ सकते हैं कि "काव्यगत निर्णय अनुभूतिगत यथार्थ के आधार पर ही होते आए हैं।" काव्यगत निर्णय विचारधाराओं या विमर्शों के आधार पर नहीं होते। आज विचारधारा और विमर्श-अध्ययन में साहित्य जगत ने बाल की खाल उतार दी है, पर काव्यगत निर्णय में कहीं बहुत पिछड़ गए हैं। पहले अध्याय में श्लेष पद्धति का स्वरूप और विस्तार है तो छठे में श्लेष पद्धति का मूल्यांकन है। दूसरे अध्याय में संस्कृत काव्य शास्त्र में श्लेष का विकास दिखाया तो चौथे में हिंदी काव्य शास्त्र तथा काव्य में श्लेष को दिखाया है। तीसरे की निबद्धता पाँचवें से है जिसमें क्रमशः श्लेषालंकार का स्वरूप निर्धारण एवं श्लेष को अन्य अलंकारों के साथ रखकर देखा है। अर्थात् यह एक सुविचारित एवं सुगठित पुस्तक है। जैसे एक कोष्ठक पूर्ण हो जाता है। पुस्तक का प्रारंभ और अंत एक दूसरे के साथ श्लिष्ट स्वरूप में दिखाई पड़ता है। पुस्तक के प्रत्येक अध्याय की संरचना भी विशिष्ट है। अध्याय के शीर्षक का पृष्ठ, प्रत्येक अध्याय की विषय सूची और अंत में अध्याय का निष्कर्ष। इससे पाठक को सुविधा हो जाती है कि वह संदर्भ के लिए निश्चित और इच्छित अंश को पढ़ सकता है। पुस्तक के संदर्भ में इन बातों का उल्लेख इसलिए आवश्यक लगता है कि इस प्रकार से पुस्तकें अब नहीं लिखी जाती। यह इस बात को भी निर्दिष्ट करती है कि अगर लेखक की विषय वस्तु सुनियोजित हो तो पुस्तक की संरचना भी सुनियोजित होती है।

लेखक ने अपने पहले अध्याय में ही श्लेष अलंकार और श्लिष्ट पद्धति में अंतर करते हुए लिखा है कि काव्य में चमत्कार हेतु दो विषयों के बीच श्लिष्टता ही होती है। समग्र सादृश्य विधान, ध्वनिशास्त्र हो या व्यंजना और लक्षणा शक्तियाँ सब इसी श्लिष्टता के कारण ही संभव होती हैं। लेखक ने इस अध्याय में श्लेष पद्धति और उसकी व्यापकता, संधान, काव्य परंपरा, उन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का उल्लेख जिनमें

इसकी बात कही गई है, रूपक कथात्मक नाटक, काव्येतर कलाएँ तथा श्लिष्ट शब्दों की सार्वभौमिकता का विवेचन किया है। यह ग्रंथ है श्लेष अलंकार पर, किंतु श्लेष में जो श्लिष्टता का तत्व है वह अलंकार से परे जाता है। उन्होंने यूनानी मूर्तिकला के जो उदाहरण दिए हैं उन्हें पढ़कर ध्यान आता है कि सुररीयल चित्रों तथा ऑब्जेक्ट्स में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। इस अध्याय में और एक तरह से समग्र पुस्तक में, लेखक ने संदर्भ के और उदाहरण के रूप में विषय संबंधी सूचियाँ अत्यंत विस्तार से दी हैं। यह एक तरह से पाठक को अतिरिक्त अध्ययन के लिए सुविधा प्रदान करता है। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि जहाँ भी द्वयर्थकता या अनेकार्थकता के तत्व को रेखांकित किया है कि "श्लेषालंकार की कल्पना यद्यपि संसार की सभी साहित्यिक भाषाओं में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है परंतु संस्कृत काव्य शास्त्र में इसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण और उदाहरण सहित ऐसा प्रतिपादन प्राप्त होता है जो एक ओर तो काव्य में भाषा के व्याकरणगत प्रयोग की महिमा को उद्घाटित करता है और दूसरी ओर काव्य की शब्दार्थ रूपी महिमा का उद्घाटन करता है।" इसीसे संबंद्ध छठे अध्याय में लेखक ने श्लेष पद्धति का मूल्यांकन किया है। यह अध्याय महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि लेखक ने इस बात पर विचार किया है कि इस श्लेष पद्धति का काव्य रचना में क्या मूल्य है। एम्पसन की Seven types of Ambiguity का उल्लेख करते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि भारतीय दृष्टि में श्लेष का प्रयोग कवि के मानस में एकदम स्पष्ट होता है वह किसी अनिश्चित और विभाजित मानसिकता से श्लेष का प्रयोग नहीं करता। चमत्कार काव्य का प्राणतत्व मानते हुए लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि "श्लेष के चमत्कार को ग्रहण करने के लिए सहृदय की कल्पना और प्रतिभा का उपयोग भी अपेक्षित है।" श्लेष संरचना जितनी कवि प्रतिभा की अपेक्षा करती है उससे कहीं अधिक उसकी आस्वाद प्रक्रिया सहृदय प्रतिभा की अपेक्षा करती है। यों भी अधिकांश आचार्यों ने, श्लेष को अर्थालंकार की कोटि में रखा है। इस अध्याय में लेखक ने हिदी के उदाहरण देते हुए यह स्पष्ट किया है कि संस्कृत की अपेक्षा हिंदी के छायावादी काव्यों में श्लेष के कारण ही रसपरकता आ पाती है। इसके अलावा सामासिकता का भी महत्व है। यमक की तुलना में श्लेष में सामासिकता के कारण वह एक ही बिंदु पर फैलता है, कथा रूप में आगे नहीं बढ़ता। उन्होंने सुबंधु के वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादंबरी की तुलना करते हुए यह बताया है कि श्लेष पद्धति के कारण कादंबरी एक बेहतर रचना है। यह दोनों ही गद्य कृतियाँ हैं। श्लेष पद्धति काव्य, कथारूपक और गद्य रूपों- सभी की गुणवत्ता में वृद्धि लाती है। श्लेष पद्धति प्रबंधगत सार्थकता लाने का काम भी करती है। हिंदी और संस्कृत काव्यों की तुलना करते हुए लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि हिंदी की प्रकृति वियोगात्मक है और संस्कृत की प्रकृति संयोगात्मक- अतः जहाँ संस्कृत का कवि सोच समझकर संपूर्ण विषय को चेतना में संजोकर श्लेष की रचना करने के विचार से श्लेष-काव्य लिखता है वहाँ हिंदी का आज का कवि श्लेष रचना के प्रति आग्रहशील न होकर अपने कथ्य के प्रति आग्रहशील है। इसका कारण यह है कि श्लेष के प्रयोग सदैव एक से नहीं होते। वे तत्कालीन काव्य विषयक दृष्टिकोण तथा भाषा की प्रकृति पर आधारित होते हैं।

दूसरे अध्याय में संस्कृत काव्य शास्त्र में श्लेषालंकार के विकास का विस्तृत लेखा जोखा है भामह ले लेकर पंडितराज जगन्नाथ का उल्लेख है। पर इसमें कुंतक का उल्लेख नहीं है। हालाँकि आगे चलकर पृ. संख्या 431 पर उन्होंने कुंतक के मतों को दिया है, पर विकास परंपरा में उल्लेख नहीं हुआ है। यह अध्याय अत्यंत विस्तृत है और लेखक ने स्थान-स्थान पर अपने मतों को भी प्रस्तुत किया है। इसीसे संबंद्ध चौथा अध्याय महत्वपूर्ण है क्योंकि लेखक ने यह जानते हुए भी कि श्लेष अलंकार हिंदी में संस्कृत की तुलना में अल्प है, फिर भी संस्कृत की तुलना में वह कहाँ बेहतर स्थिति में दिखाई देता है उसका विश्लेषण किया है। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि लेखक ने परंपरागत दृष्टि से तुलना करते हुए जहाँ संस्कृत के आचार्यों और कवियो का विश्लेषण किया है वहीं आज की तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करते हुए संस्कृत तथा हिंदी श्लेष अलंकार के प्रयोगों का भी विश्लेषण किया है वहीं अन्य कलाओं के साथ तुलना करके यह अंतर्विद्याकीय अध्ययन को भी हल्के से स्पर्श करती

है। इस तरह यह तुलनात्मक अध्ययन की श्रेणी में भी आ जाती है। इस पुस्तक की यह लक्ष्णीय विशेषता कही जाएगी। हिंदी में केशवदास के यहाँ पाँच संख्या तक की अनेकार्थकता पाई जाती है। लेखक का मानना है कि जहाँ तक उदाहरण पक्ष का प्रश्न है केशवदास दंडी और भोज से अधिक समृद्ध हैं।

अध्याय तीन और पाँच परस्पर संबंद्ध है। अध्याय तीन में श्लेषालंकार का स्वरूप-निर्धारण तथा प्रयोग की चर्चा है और अध्याय पाँच में श्लेष तथा अन्य अलंकारों की चर्चा की है जिनका संबंध श्लेष से है। यह जानना बहुत रोचक है कि पूर्व के कवियों का बहुभाषा पर अधिकार होने के कारण वे रचनात्मक स्तर पर उसका कितना चमत्कारी उपयोग करते थे। इस पुस्तक में लेखक ने अत्यंत रोचक उदाहरण दिए हैं और उनका विश्लेषण बहुत बोधगम्य पद्धति से दिया है। यह इस पुस्तक का अत्यंत सकारात्मक तथा आश्वस्त करने वाला पक्ष है। इन दोनों अध्यायों में विपुल संख्या में उदाहरण दिए हैं और वह भी औचित्य से पूर्ण कि इससे पुस्तक की पठनीयता बढ़ जाती है।

लेखक ने सही कहा है- "यद्यपि श्लेष अलंकार का मूल चमत्कार-प्रदर्शन में है परंतु उसकी सार्थकता उसकी रसपरकता है। जिस प्रकार नग्नता को सौंदर्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती उसी प्रकार अभेद्य आवरण भी सौंदर्य की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। वहीं श्लेष, जिसके आवरण को पार कर सहृदय सौंदर्य का साक्षात्कार कर सके काव्य में सम्मान और अलंकार की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।"

काव्य शास्त्र के एक गंभीर पक्ष पर बोधगम्य भाषा में लिखी गई इस पुस्तक के विषय में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि परंपरा सुरक्षा के साथ-साथ यह पुस्तक उन गंभीर पाठकों के लिए एक ऐसी सौगात है जो अध्ययनशीलता के किसी भी बिंदु पर उतनी ही ताज़गी भरी प्रतीत होगी। ऐसी पुस्तकें कम लिखी जाती हैं अतः इस अर्थ में भी यह एक मूल्यवान ग्रंथ है।

– विंडसर अरालिया, बिल्डिंग न.-2, फ्लैट नंबर-402, कोलार रोड, भोपाल - 462042

❑❑❑

जीवन-प्रवाह में हार-जीत के दोनों किनारों को छूती हास्य-व्यंग्य कहानियाँ

डॉ. रमेश तिवारी

मानव-जीवन को प्रायः विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। इनमें से अक्सर विद्वानों ने जीवन को संघर्ष का पर्याय माना है। जीवन की प्राप्ति भी मनुष्य की जद्दोजहद का ही परिणाम है। यह जद्दोजहद तमाम उम्र जारी रहती है। इसी मनोदशा को ध्यान में रखते हुए समकालीन साहित्यकार बलदेव त्रिपाठी ने 'पिअरका फुलवा' शीर्षक से हास्य-व्यंग्य कहानियों का संग्रह रचा है। इस संग्रह का प्रकाशन रश्मि प्रकाशन, लखनऊ ने किया है। संख्या की दृष्टि से देखें तो इस संग्रह में कुल सात कहानियाँ संकलित हैं। किंतु जो लेखक का कथ्य है वह भली-भाँति इन कहानियों में संप्रेषित है। जो लोग त्रिपाठी जी के लेखन से पूर्व परिचित हैं उन्हें यह मालूम होगा कि त्रिपाठी जी ने उपन्यास भी लिखा है। अपने उपन्यासों में त्रिपाठी जी ने जितना विस्तार दिया है, उसके मुकाबले में देखा जाए तो यह कृति हमें अपनी लघुता के कारण भी आकर्षित करती है। इस संग्रह की प्रायः सभी कहानियाँ लेखक की जीवन से जुड़ी दृष्टि को प्रमाणित करती हैं। लेखक का मन ग्रामीण जीवन की कथाभूमि के चित्रण में भली-भांति रमता है कई कहानियों को पढ़ते हुए पाठकों को ऐसा प्रतीत होगा मानो कहीं यह लेखक के जीवन की कहानी तो नहीं है। यह सच है कि हर रचनाकार पर युग-परिवेश का प्रभाव होता है। अतः इस आंशका को सीधे-सीधे दरकिनार तो नहीं किया जा सकता है। किंतु इतना अवश्य है कि कई बार जरूरी नहीं होता कि हर अनुभव लेखक ने जिया हो तभी वह उन पर लिखने का अधिकारी है। लेखक की प्रतिभा इस बात में है कि देश, काल, परिवेश को जीते हुए वह कई ऐसे मुद्दों को भी रचना में ढालने की सामर्थ्य से संपन्न होता है जिससे उसका कभी-कोई सीधा संपर्क नहीं रहा हो। यह सर्जक-दृष्टि ही लेखक को अन्य मनुष्यों से अलग करती है। देखते तो सभी हैं किंतु लिखते सभी नहीं हैं, लिख भी नहीं सकते। क्योंकि उसके लिए जो पात्रता चाहिए, वह सबके वश की बात नहीं है। इस दृष्टि से बलदेव त्रिपाठी का लेखन हमें पूरी तरह आश्वस्त करता है।

इस संग्रह को पढ़ते हुए जिस कहानी से पहले-पहल साक्षात्कार होती है, उसका शीर्षक है- 'मैं अपराधी हूँ।' गाँव की गरीबी भरे जीवन से मुक्ति की चाहत लिए रमेश गाँव से शहर काम की तलाश में जाता है और कई बरसों बाद जब वह वापस अपने गाँव आता है तो उसे अपना ही गाँव पराया-सा नजर आता है जब वह गाँव से शहर गया था तो गाँव में पगडंडी थी, पर जब कई बरसों बाद लौटा है तो काली चौड़ी सड़क उसका स्वागत कर रही है। सड़क बन जाने से उसके अगल-बगल कुछ चाय की दुकानें और मकान भी बन गए हैं। हालाँकि गाँव की अंदरूनी हालत अभी भी वैसी ही है जैसी आठ बरस पहले थी। अपने घर में पहुँचकर वह माँ-बहन-भाभी-भाई से मिलकर कभी खुशी-कभी गम

पिअरका फुलवा (कहानी संग्रह)/ लेखक : बलदेव त्रिपाठी/ रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, उत्तर प्रदेश/ प्रकाशन वर्ष : 2018/ कुल पृष्ठ : 78/ मूल्य : ₹. 100/-

वाली स्थिति में डूबता-उतरता रहता है। समय की रफ़्तार में बहन की शादी भी हो चुकी है, यह बात उसे वापस आने पर ही पता चलती है। इसकी खुशी या गम भारी है कि उसके ससुरालवालों ने दहेज़ के लोभ में उसे निकाल दिया है और वह किसी तरह अपने मायके में गुजर-बसर कर रही है। 'भाई ने बाद में घड़ी और अंगूठी देने का वादा किया था जो गरीबी के कारण नहीं दे पाया। (पृष्ठ 12) रमेश को याद आता है कि जो वंदना बहन उन दोनों भाइयों की लाड़ली थी, आज कुछ रुपयों के अभाव में उसकी यह हालत हो गई है। यह तो एक दुख है, धीरे-धीरे कहानी में आगे भी घर के दुख, भैया-भाभी, अम्मा की गरीबी के दुख और गाँव में दबंगों द्वारा उसकी पुश्तैनी खेती पर कब्ज़ा आदि का दुख ऐसा पहाड़ है जिससे उसे छुटकारा मिलना बड़ा ही मुश्किल दिखाई देता है। कहाँ तो वह घर से शहर इस उम्मीद में गया था कि रुपया कमाकर आएगा तो घर के लोगों की मदद कर पाएगा, बहन वंदना की शादी करेगा और सबके साथ चैन की जिंदगी जी सकेगा। किंतु ऐसा हो नहीं पाता सबकुछ अस्त-व्यस्त हो जाता है। इन परिस्थितियों में अपने परिवार की हालत देखकर रमेश को पीड़ा तो होती ही है। वह परिवार की इन सभी स्थितियों के लिए स्वयं को ही जिम्मेदार मानता है। रमेश चूँकि इस कहानी का केंद्रीय पात्र है और इस अपराध बोध की मनः स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ही लेखक ने उचित ही इस कहानी का शीर्षक दिया है- 'मैं अपराधी हूँ।'

अर्थप्रधान समाज में हमारा मानव समाज कैसे अर्थाधारित जीवन जीने को विवश है, इसकी मार्मिक परिणति कहानी में मौजूद है। एक तरफ गरीबी है और दूसरी तरफ भारतीय जनमानस में व्याप्त अमानवीय जाति व्यवस्था। पैसे के अभाव में बड़े भाई का बेटा स्कूल नहीं जाता और पूछने पर भाभी का जवाब मिलता है कि स्कूल में बच्चे तंग करते हैं, इसलिए अभी नहीं जाता। जबकि भाभी की साड़ी में लगे पैबंद और बच्चे के बदन पर फटी जांघिया धनाभाव की चुगली करता प्रतीत हो रहा है। जातिवादी सोच के प्रभावस्वरूप इस तरह के बयान पढ़ने को मिलते हैं- "हम ब्राह्मण हैं न! जो कभी कोई सोच नहीं सकता था, मेरा बेटा वही कर रहा है। चमार, तेली, अहीर और किसको बताऊँ, समझ लो सभी जातियों के लिए बालू, सीमेंट और ईंटा मेरा बेटा ढो रहा है। हम गरीब हैं, इसलिए यह भी करना पड़ रहा है।"(पृष्ठ 14)

गरीब और अशिक्षित होने के कारण ग्राम प्रधान राजमंगल उसके भाई से पुश्तैनी खेती की जमीन छल और बलपूर्वक छीन लेता है। हर्जाने के तौर पर पाँच सौ रुपया देकर किसी प्रकार भाई को रमेश उन गुंडों के चंगुल से बचा लाता है। इन सब परेशानियों की वजह वह अपने शहर जाने को ही मानता है। इसी कारण से वह स्वयं को अपराधी मानता है। पूरी कहानी धाराप्रवाह और सहज-सरल भाषा के साथ रची गई है। इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'पिअरका फुलवा' भी गाँव से शहर जाकर वहाँ से वापस अपने गाँव आने के बाद की कथा है। इस कहानी में कुछ ही दिनों मुंबई शहर रहकर वापस गाँव लौटने वाले केंद्रीय पात्र दुखहरन की कथा है। दुखहरन को शहरी मुंबईया भाषा इतना प्रभावित कर गई है कि वह अपने गाँव में घुसते ही इसी भाषा में बात करके ग्रामीणों पर अपना रौब जमाना चाहता है। दुखहरन गाँव के रिक्शे वाले से भी बात करते हुए अंग्रेजी भाषा के शब्दों के समावेश से अपना रौब जमाना चाहता है। 'क्यों रिक्शे वाले, तुम एक दिन में कितना मनी बना लेता है"। (पृष्ठ 28) माँ जब बेटे के आगमन की खबर सुनती है तो आकर उससे भोजपुरी में ही बातचीत करना चाहती है, "कब अइला बेटा? पानी-वानी पियला कि ना?" माँ के इन स्नेहिल सवालों के जवाब दुखहरन इतनी बेरुखी से देता है कि पाठक उसे कतई पसंद नहीं कर सकता।

वह कहता है- "तू तो हमारा इंसल्ट करा देगा" (पृष्ठ 29) पहले भी एक प्रसंग में लेखक ने दुखहरन की मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखा है कि "इन लोगों (ग्रामीणों) से बात करके अपन का स्टैंडर्ड लो होगा।"(पृष्ठ 29) इन प्रसंगों में एक उल्लेखनीय बात यह है कि लेखक ने भोजपुरी भाषा के वाक्यों के साथ-साथ कोष्ठक में हिंदी अनुवाद भी लिख दिया है ताकि पाठकों को अर्थग्रहण में बाधा न हो। इस प्रयास से जिनको भोजपुरी भाषा का ज्ञान न हो, वे हिंदी वाक्यों को पढ़ते हुए भी कहानी का भरपूर आनंद प्राप्त कर सकते हैं। इस कहानी का भाव यह है कि कैसे कोई व्यक्ति चार दिन शहर की चकाचौंध में पलकर अपने

आप को जिस गंवई मिट्टी से निकल कर गया है वहीं के लोगों के आगे भाव मारने लगता है। इस प्रकार की प्रवृति की पराकाष्ठा तब हो जाती है जब वह जीवन भर खेतों में देखे सरसों के फूल को भी आश्चर्य से देखते हुए अपनी माँ से पूछ रहा है "अच्छा मदर! बताओ वह जो पीला-पीला फूल दिखाई दे रहा है, किस चीज का फूल है?"(पृष्ठ 31) माँ इस सवाल को सुनकर परेशान है कि उसका बेटा अब गेहूँ, सरसों, मटर आदि को भी भूल गया है। उसे लगता है बेटे पर किसी ने जादू कर दिया है। वह काली माई से बेटे को ठीक करने की मनौती भी मान लेती है। आज जब हम 21वीं सदी की बात करते हैं तो आप सबको जानकर हैरानी होगी कि आज भी हमारे भारतीय गाँवों की जीवनचर्या कमोबेश ऐसी ही है। उसे आज भी हर रोग का इलाज झाड़-फूँक में ही दिखाई देता है। अच्छा हो या बुरा, सच यही है आज भी गाँवों का।

हालाँकि उसी गाँव में विष्णुकांत मिश्र जैसे पात्र भी है। जिनको इस तरह की प्रवृत्ति का इलाज करना बहुत अच्छी तरह आता है। जब दुखहरन उनसे भी इसी तरह की भाषा बोलता है तो पहले तो मिश्र जी का आदमी उसे सावधान कर चेतावनी देता है। किंतु जब दुखहरन उसकी बात सुनकर भी नहीं मानता, तो वह क्रोध में खींचकर दुखहरन को एक लाठी मारता है। लाठी की मार पड़ते ही दुखहरन भोजपुरी बोलने लगता है। "अरे बाप रे बाप! बड़ा जोर से मरले बा। अरे माई बचाव।" विष्णुकांत मिश्र अपने आदमी से कहते हैं कि एक लाठी और मारो, अभी पिअरका फुलवा भी पहचान जाएगा। इतना सुनते ही दुखहरन जवाब में कहता है, "माफ़ कर दीजिए काका! अब मत मारिएगा! हम पिअरका फुलवा पहचान रहे हैं, सरसों का फूल है, सरसों का।"(पृष्ठ 32)

इस प्रकार दुखहरन जैसे लोगों की बाह्याडंबरी प्रवृत्ति पर लेखक ने व्यंग्य-प्रहार और हास्य की फुहार करते हुए यह रचना लिखी है। इस प्रकार की आनंददायी भाषा और प्रसंगों के चित्रण में लेखक का मन खूब रमता है और उसके पास ऐसी भाषा को साधने का सामर्थ्य भी है। इन कहानियों की विशेषता यह है कि इनमें जीवन की संलग्नता के साथ-साथ मानवीय व्यवहारों से उत्पन्न विसंगतियों को रचना के मूल में रखा गया है। इन कहानियों को कोई पाठक जब पढ़ना शुरू करेगा तो बहुत जल्दी ही इनसे बंध जाएगा और फिर कहानी खुद ही समझ में आती जाएगी। कोई भी सहृदय पाठक एक बार यह संग्रह पढ़ना आरंभ करे तो इसको पूरा पढ़े बिना रुक नहीं पाएगा। यहाँ मैंने सिर्फ दो ही कहानियों के कुछ प्रसंगों को बानगी के रूप में रखा है। कहानी-संग्रह की कहानियों के रूप में एक-एक कर सभी कहानियों को पढ़ना निश्चय ही पाठकों के लिए एक अलग तरह का अनुभव होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। लेखक को इस कृति के प्रकाशन हेतु अनेक साधुवाद।

– 64-बी, फेस-II, डीडीए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

❑❑❑

जिंदगी को चाहिए दोनों ही-
'कुछ कोलाहल, कुछ सन्नाटा'

प्रवीण प्रणव

गद्य साहित्य और शोध प्रबंधों के संपादन में गुर्रमकोंडा नीरजा जाना-माना नाम है। यूँ तो नीरजा छुटपुट कविताएँ भी लिखती रही हैं, लेकिन परिलेखन प्रकाशन, नजीबाबाद से प्रकाशित कविता संग्रह 'कुछ सन्नाटा' उनकी कविताओं का पहला पुस्तकाकार प्रकाशन है। तीन खंडों में संकलित कविताओं में पहला खंड उनकी मौलिक कविताओं का है, दूसरे खंड में तेलुगु से हिंदी में अनूदित कविताएँ हैं और तीसरे खंड में हिंदी से तमिल में अनूदित कविताएँ हैं। नीरजा की मातृभाषा तेलुगु है लेकिन इस संग्रह के तीनों खंड दर्शाते हैं कि हिंदी, तमिल और तेलुगु तीनों पर उनका समान अधिकार है। मैं तमिल और तेलुगु से अनभिज्ञ हूँ तो मेरी समीक्षा उनकी मौलिक हिंदी कविताओं तक ही सीमित है।

पुस्तक की भूमिका में गंगा प्रसाद विमल लिखते हैं कि "अच्छी कविता की यही पहचान है कि वह अपने भाषिक जादू से थोड़ी देर विचलित कर फिर फुर्र हवा में न उड़ जाए।" देवी नागरानी ने भी भूमिका में डॉ. किशोर काबरा की पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए लिखा है "सच्ची कविता की पहली शर्त है कि हमें उसका कोई भार नहीं लगता। जिस प्रकार पक्षी अपने परों से स्वच्छंद आकाश में विचरण करता है, उसी प्रकार कवि स्वांतः सुखाय और लोक हिताय के दो पंखों पर अपनी काव्य यात्रा का गणित बिठाता है।" नीरजा की कविताएँ इन सभी पैमानों पर खरी उतरती हैं। बिना लच्छेदार भाषा का प्रयोग किए, बिना बिंब और प्रतीक में अपनी बात उलझाए, उन्होंने सरल और सहज भाषा में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है और यही वजह है बिना किसी आवरण में लिपटी ये भावनाएँ सीधे हृदय में उतरती हैं। कहीं ये भावनाएँ कोलाहल बन उद्वेलित करती हैं, कुछ करने को तो कहीं ये गहरे सोच में छोड़ जाती हैं, नीरव सन्नाटे की तरह।

मुझे बालस्वरूप राही की कविता 'कोलाहल के बाद' की कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं -

जब कोलाहल में बात नहीं खोती
वह घड़ी हमेशा रात नहीं होती

सन्नाटा नहीं, तोड़ती है जड़ता
वह चाहे भीतर हो या बाहर हो
रचना है ऐसा वातावरण हमें
काँटों का नहीं, फूल का आदर हो

हमको सूरज की तरह दहकना है
जब तक हर स्याही मात नहीं होती।

नीरजा की कविताएँ सिर्फ प्रकृति सौंदर्य वर्णन तक अपने को सीमित नहीं करती। ये कविताएँ उनकी आकुलता को, उनकी विवशता को, उनकी आकांक्षा को और उनके सपने को आवाज़ देती हैं। यह आवाज़ इतनी वास्तविक है, इतनी सरल भाषा में है और इतने गंभीर विषय पर है कि नीरजा की कविताएँ सिर्फ उनकी न रहकर पाठकों की आवाज़ बन जाती हैं और यही इनकी सफलता है।

कुछ कोलाहल, कुछ सन्नाटा (कविता संग्रह)/ लेखक : डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा/ परिलेख प्रकाशन, कोतवाली रोड, वालिया मार्केट, नजीबाबाद 246763/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ कुल पृष्ठ : 120/ मूल्य : ₹.150/-

'माँ' शीर्षक कविता में जब वे लिखती हैं-
आज वह मेरी राह देख रही है
मेरा माथा चूमने के लिए तरस रही है
आखिरी बार मुझसे बात करने के लिए
आँखों में प्रतीक्षा सँजोए।

मैं काले कोसों बैठी हूँ
सात समंदर पार,
लाचार।

मन तो कभी का पहुँच चुका उसके पास,
तन काट नहीं पा रहा
परिस्थिति का पाश।
उदास हूँ।
दास हूँ न?
स्वामी की अनुमति नहीं!

इन पंक्तियों में नीरजा सिर्फ अपने भावों की अभिव्यक्ति नहीं करती, वरन् न जाने कितनी महिलाओं की आवाज़ बन जाती हैं जो चाह कर भी अपने माता-पिता के लिए तब उपलब्ध नहीं हो पाती जबकि उन्हें सबसे ज्यादा जरूरत होती है।

नीरजा अपनी कविताओं में संबंधों और उनसे जुड़ी भावनाओं का ताना-बाना बुनती है। 'बेटी वाली माँ' कविता में तीन पीढ़ियों से एक सी ही समस्या को रेखांकित करते हुए वे लिखती हैं-

आज तक काट रही हो तुम
बेटी जनने की सज़ा
बिना उफ़ किए।
पर मैं कराहती हूँ कभी जब दर्द से
मुझे अपनी गोद में लेकर
सींच देती हो आँसुओं से मेरा माथा।
आँखों-आँखों में देती हो नसीहत-
'बेटी की माँ हो, कमजोर मत पड़ना!'

नीरजा अपने पिता से बहुत प्रभावित रही हैं। अपने पिता को समर्पित कविता में वे लिखती हैं-

काल को पीछे धकेलते
जिजीविषा से भरे
तुम ही तो हो सच्चे योद्धा
धरती के सुंदरतम पुरुष,
मेरे पापा।

नीरजा ने एक बेटी, एक माँ, एक पत्नी सबका धर्म निभाया है इसलिए इनकी कविताएँ भी इन सभी संबंधों को अपने अंदर आत्मसात करती हैं। समाज में छोटी बच्चियों के साथ हो रहे अनाचार पर 'माँ नीरजा' व्यथित होकर लिखती हैं-

जब कभी किसी नन्ही गुड़िया को देखते हैं
बेसाख्ता चीख उठतें हैं-
गुड़िया घर से बाहर न जा
यह समाज तेरे लिए नहीं बना है
बाहर न जा
तुझे नोचकर खाने के लिए गिद्ध इंतजार कर रहा है
तु बाहर न जा।

प्रेम के कई रंग होते हैं और नीरजा ने प्रेम के कई आयाम अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किए हैं। सबसे पहले तो प्रेम में होने की जो मधुर अनुभूति है उसे बड़ी खूबसूरती से बयाँ करते हुए अपनी कविता 'रेशमी स्पर्श' में लिखती हैं-

मेरी देह पर तैरती तुम्हारी उँगलियाँ
मन के तार को छेड़ गई
एक रेशमी स्पर्श ने जगा दी
रोमरोम में नई उमंग
तुमने जब-जब मुझको छुआ
तब-तब तन-मन में ऊर्जा का संचार हुआ
और मैं पागल हो गई।
लोक-लाज खो गई।।

जब प्यार होता है तो मन में प्यार धीरे-धीरे घुलता है और ये उन खामोशियों की जगह लेता जाता है जो वर्षों से मन में घर कर गई होती हैं और भावनाओं को खुलकर व्यक्त नहीं होने देती। अपनी कविता 'नि:शब्द' में प्यार में होने के खुशनुमा एहसास को आवाज़ देती हुई लिखती हैं-

उस अनुभूति को व्यक्त करने के लिए
शब्द नहीं हैं
मौन का साम्राज्य है चारों ओर
भीतर तो तुमुलनाद है
भीगी हूँ प्यार में

जब प्यार होता है तो साथ ही होता है उस प्यार में नोक-झोंक। ये नोक-झोंक कई बार प्यार को पटरी

से उतार देते हैं तो कई बार इनसे प्यार और मजबूत होता है। प्यार के नोक-झोंक में जरूरी है अहम् का न होना। नीरजा अपनी कविता 'संधिपत्र' के माध्यम से दिखलाती हैं कि नोक-झोंक के बाद वापस प्यार को पटरी पर लाने के लिए क्या किया जाना चाहिए।

चाहूँ तो तुम्हारी तरह मैं भी
कोस सकती हूँ सारी दुनिया को
पर ऐसा भी क्या गुस्सा
कि जीवन बीत जाए, गुस्सा न बीते।
इसलिए भेजा करती हूँ हर सुबह
तुम्हारे लिए दोस्ती के गुलाब।
तुम विजेता हो-चिर विजेता;
मैं पराजित हूँ- प्रेम में पराजित।
कभी तो मैं बनकर देखो.....

प्यार कई बार वह मोड़ लेता जो हम चाहते हैं। प्यार में होना जितनी सुखद अनुभूति है उससे कहीं ज्यादा दुखद है दिल का टूटना। प्यार में होना आवाज़ देता है भावनाओं को लेकिन दिल का टूटना भावनाओं का उबाल लाता है दिल के अंदर लेकिन जुबाँ खामोश रहती है। ऐसे में बहुत मुमकिन है टूट जाना लेकिन नीरजा अपनी कविता में दुहराती हैं कि दिल का टूटना अंत नहीं। अपनी कविता 'आशियाना' में वे इस टूटन के बाद के संकल्प को दर्शाती हैं ये कहते हुए-

उसके लिए मैंने सारी दुनिया से टक्कर ली
लेकिन उसने मुझे बैसाखियों के सहारे छोड़ दिया।
हवाओं से लड़ता रहा देर तक मेरा घोंसला
बिखर गया मेरा सपना।
पर मैं नहीं बिखरी। न बिखरूँगी।
एक-एक तिनका जोड़कर
फिर बनाऊँगी अपना आशियाना,
सजाऊँगी-सँवारूँगी।

नीरजा अपनी कविताओं को सिर्फ अपनी आवाज़ नहीं बनाना चाहतीं। उनकी कविताओं की ज़िम्मेदारी है कि वे उन सभी औरतों की आवाज़ बनें जो इन हालात से गुज़रती हैं और जब अपनी कविता 'तपिश' में वो लिखती हैं-

मेरी चाभी मुझे दे दो
रोक दो अब तो चाबुक
चाहती हूँ मैं
मैं बनकर जीऊँ
सदियों तक

सदियों तक जीने की कल्पना नीरजा की अपने लिए नहीं हो सकती, वे आज़ादी की तलबगर हैं सभी औरतों के लिए जो किसी बंधन में फँसकर अपनी आकांक्षाओं को दबा देती हैं, वे हर संभव प्रयास करती हैं कि खुद पर हुए जुल्म के बाद भी किसी तरह साथ बना रहे। लेकिन जुल्म सहने की भी एक सीमा होती है और इस सीमा के बाद होती है आज़ादी की ख़्वाहिश।

डॉ. पूर्णिमा शर्मा ने नीरजा के परिचय में लिखा है, उनके पिता साहित्यकार थे, उन्होंने कई पत्रिकाओं का संपादन किया। साथ ही वे आंध्र प्रदेश के लोकप्रिय नेता श्री एन. टी. रामाराव के. पी. आर. ओ. के रूप में कार्यरत रहे। नीरजा ने साहित्य और राजनीति का ये सम्मिश्रण बचपन से देखा और ये उनकी कविता में भी भी परिलक्षित होता है। अपनी कविता 'राजनीति' में नीरजा लिखती हैं-

लोग अकसर कहते हैं
राजनीति एक खेल है
पर मेरे पापा कहते हैं
यह एक कमर्शियल फिल्म है
और इसी कविता के अंत में लिखती हैं-
इस फिल्म के बारे में खूब सुना है
लेकिन देखने के लिए सेंसर का कहना है
- 'ओनली फॉर क्रिमिनल्स'।
- 'भले मानुषों का प्रवेश वर्जित'।

साहित्य में आने से पहले नीरजा ने विज्ञान की पढ़ाई की, माइक्रोबायोलॉजी में उन्होंने बीएससी किया और एक वर्ष तक अपोलो अस्पताल में कार्यरत रहीं। उनका ये अनुभव उनकी कविता 'दर्द' में दिखता है-

मैंने दर्द को दबाने की कोशिश की
वह गिद्ध बन
मेरा शिकार करता रहा
मैंने
उससे छुटकारा पाने के लिए
स्लीपिंगपिल्स लीं
ट्रैक्विलाइज़र लिए
और न जाने क्या-क्या लिया

पर वह इम्यून हो गया।
आज
मैं सोचती हूँ–
यदि सीने में यह दर्द नहीं होता
तो मेरा क्या होता।

नीरजा ने इस संकलन में कुछ अच्छे हाइकु भी लिखे हैं। सीमित शब्दों में विभिन्न विषयों पर लिखे हुए हाइकु प्रभावित करते हैं।

कन्या भ्रूण ने
लगाई है गुहार
मुझे न मार।

टेसू फूले हैं
बौराया यह मन
आया फागुन।

अलमारी में
किताबों का ढेर है
निद्रा में लीन

नुकीला काँटा
धँसा पाँव में मेरे,
रोऐ तुम थे।

कच्ची मिट्टी हूँ
आकार दो हाथों से
ढल जाऊँगी।

अपनी कविता 'सीखना' में उन्होंने अपने गुरुओं के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए लिखा है–

तुमसे सीख ही लिया मैंने
तुमुल कोलाहल के बीच सन्नाटे को जीना;
सन्नाटा जो कविता है–
कविता जो जीवन है!

लेकिन मेरी ख़्वाहिश है कि नीरजा न सिर्फ सन्नाटे को जीना सीखें बल्कि कोलाहल को भी अपनाए रखें। न तो सन्नाटे की कोई सीमा है, न की कोलाहल की, लेकिन जरूरी है कि हम इन दोनों में सामंजस्य बनाए रखें और इनसे सीखते रहें। मुझे राजेश रेड्डी की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं–

दरवाज़े के अंदर इक दरवाज़ा और
छुपा हुआ है मुझ में जाने क्या-क्या और
कोई अंत नहीं मन के सूने-पन का
सन्नाटे के पार है एक सन्नाटा और।

इस पहले कविता संग्रह के लिए गुर्रमकोंडा नीरजा को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।

– सीनियर प्रोग्राम मैनेजर, माइक्रोसॉफ्ट, बी-415, गायत्री क्लासिक्स लिंगमपल्ली, हैदराबाद

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, एन. जी.22, टाइप-5, नया गाँव, चक्कर गाँव, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान-744112
2. डॉ. रामनिवास 'मानव', डी. लिट्, 571, सेक्टर-1, पार्ट-2, नारनौल, हरियाणा-123001
3. डॉ. वी. रामकोटी, प्राचार्य, अभ्युदय प्राच्य सांध्य महाविद्यालय, जियागुडा, हैदराबाद-500001
4. डॉ. दादूराम शर्मा, महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी, मध्य प्रदेश-480661
5. डॉ. महाराजकृष्ण भरत 'मुसा', शारदा कॉलोनी, विद्याधर निवास, पटोली, ब्रह्मणा मुठी, जम्मू-181205
6. डॉ. अंबिली टी, सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, सरकारी कॉलेज, चिट्टूर, पालक्काट
7. प्रो. सविता कृष्णात पाटील, स. ब. खाडे महाविद्यालय, कोपार्डे तह. करवीर, जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र
8. डॉ. ऋचा शर्मा, 122/1 अ, सुखकर्ता कॉलोनी (रेलवे ब्रिज के पास) कायनेटिक चौक, अहमदनगर, महाराष्ट्र-414001
9. श्रीमती रहमतुन्निसा बेगम, हाउस न. 9-20-182/सी मुजाहिद नगर, मल्लापल्ली निजामाबाद, तेलंगाना-503001
10. श्री अंजुम शर्मा, डी-182, द्वितीय तल, नोएडा सेक्टर-61, उत्तर प्रदेश-201307
11. श्रीमती रंजीता साव, द्वारा दिनेश प्रसाद साव, दिनेश भंडार, 126/2/1, बेलिलियस रोड, हावड़ा, कोलकाता, पश्चिम् बंगाल-711101
12. डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण', पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667
13. श्री हरपाल सिंह 'अरुष', 95, श्रीहरिवृंदावन सिटी, फेज-I, जानसठ रोड, मुजफ्फरनगर-251001
14. शमा खान, 6/2, केवल विहार, सहस्रधारा रोड, देहरादून-248001
15. श्री सत्यनारायण भटनागर, 68, कालिंदीकुंज, पिपल्याहाना, इंदौर, मध्य प्रदेश-452001
16. डॉ. मोहन परमार, गोदावरी भवन, 148, काटजू नगर, रतलाम, मध्य प्रदेश
17. योगेश्वर कौर, साहित्य संगम, 239, दशमेश एंक्लेव, ढकौली, जीरकपुर निकट चंडीगढ़, पंजाब-160104
18. श्री कुल शइकीया, 02 दयाबाग कॉलोनी, जगनपुर बेला, नसेरा मोड़, खेल गाँव मार्ग, दयालबाग आगरा, उत्तर प्रदेश-282005
19. प्रो. महेंद्रनाथ दुबे, 02 दयाबाग कॉलोनी, जगनपुर बेला, नसेरा मोड़, खेल गाँव मार्ग, दयालबाग आगरा, उत्तर प्रदेश-282005

20. श्री भूपेंद्र राय चौधरी, 16, सतीर्थ पथ, मथुरा नगर, डाकः असम सचिवालय, गुवाहाटी, असम - 781006

21. श्री कोतापल्लि उदय बाबु, प्लॉट नंः 96, म. नं. 10-167, गायत्री होम्स, तेलंगाना, हैदराबाद-500097

22. श्रीपेरंबुदुरू नारायण राव 'श्री नारा', प्लाट न. 96, म. न. 10-167, गायत्री होम्स, तेलंगाना, हैदराबाद-500097

23. सुश्री पद्मा सचदेव, बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019

24. श्री कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001

25. डॉ. मधुसूदन साहा, सौरभ सदन, डी/90, कोयल नगर, राउरकेला, ओडिशा - 769014

26. डॉ. रंजना अरगडे, विंडसर अरालिया, बिल्डिंग न. 2, फ्लैट नंबर 402, कोलार रोड, भोपाल - 462042

27. डॉ. रमेश तिवारी, 64-बी, फेस-II, डीडीए फ्लैट, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

28 .श्री प्रवीण प्रणव, सीनियर प्रोग्राम मैनेजर, माइक्रोसॉफ्ट, बी-415, गायत्री क्लासिक्स लिंगमपल्ली, हैदराबाद

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

<u>भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र</u>

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम - 110066

ई-मेल chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. - 011 - 26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया

कृपया मुझे **भाषा** (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए / दस वर्ष के लिए / बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें । मैं पत्रिका का वार्षिक / पंचवर्षीय / दस वर्षीय / बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/ रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएं ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

मोबाईल/दूरभाष : .....

ई-मेल : .....

संबद्धता / व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	**शुल्क डाक खर्च सहित**
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट **निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए ।** कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें ।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट: कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें ।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-3-2020
700

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित